॥ ओ३म् ॥

श्रीमती इतरा देवी के सुपुत्र महर्षि महीदास ऐतरेय रचित

ऋग्वेदीय

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

सरल आर्यभाषा (हिन्दी) अनुवाद

अनुवादक तथा भूमिका-लेखक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,
पूर्व अध्यक्ष, वर्तमान मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्

प्रकाशक—

विश्व वेदपरिषद्
सी ८१७ महानगर, लखनऊ.
मूल्य ३०) तीस रुपये

❀ ओ३म् ❀

श्रीमती इतरा देवी के सुपुत्र महर्षि महीदास ऐतरेय रचित

ऋग्वेदीय

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

सरल आर्यभाषा (हिन्दी) अनुवाद

अनुवादक तथा भूमिका-लेखक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,
पूर्व अध्यक्ष, वर्तमान मन्त्री, विश्व वेदपरिषद्

प्रकाशक—
विश्व वेदपरिषद्
सी ८१७ महानगर, लखनऊ
मूल्य ३०) तीस रुपये

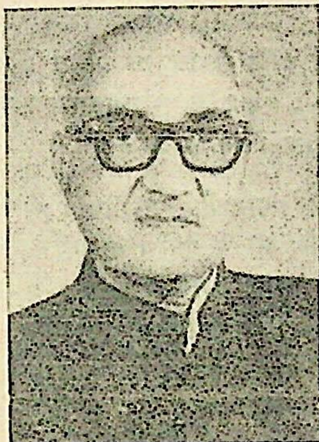
प्रकाशक —

विश्व वेद-परिषद्,
वेद-सदन
सी ८१७ सी, महानगर,
लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
सूची २२६००६
दूरध्वनि—८४१०१
× × × × × × × × ×
प्रकाशन-तिथि—
श्रावणी पूर्णिमा; २०४० विक्रम
२३ अगस्त १९८३ ईसवी
दयानन्दाब्द १५९
वेद-सृष्टि-संवत्—
१९६०८५३०८४
× × × × × × × × ×
विक्रय-केन्द्र—
गोविन्दराम हासानन्द,
आर्य पुस्तकालय,
४४०८ नयी सड़क, दिल्ली
× × × × × × × × ×
मूल्य ३०) तीस रुपये

प्रथम संस्करण ५०० प्रतियाँ

मुद्रक—
आदर्श प्रेस, लखनऊ

प्राक्कथन एवं धन्यवाद



लेखक— प० वीरसेन वेदश्रमी
अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्,
वेदसदन, महारानी पथ; इन्दौर म.प्र.

वेदों के अर्थ एवं रहस्यों को जानने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ अत्यन्त सहायक होते हैं। वेदोद्धारक प्रातः स्मरणीय महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी यजुर्वेद भाष्य में स्थान-स्थान पर लिखते हैं यह मन्त्र शतपथ में अमुक स्थान पर व्याख्यात है। जिस तरह यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ है उसी प्रकार ऋग्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय है।

ब्राह्मण ग्रन्थ यद्यपि मूल रूप से ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं परन्तु एतदर्थ उनकी एक प्रकार शैली है, प्रक्रिया है जिसे हम याज्ञिक प्रक्रिया अर्थात् कर्मकाण्डमय शैली कहते हैं, इस शैली या प्रक्रिया द्वारा यजमान को अनेक प्रकार के कर्मकाण्डमय यज्ञों का अनुष्ठान करना पड़ता है।

इस कर्मकाण्ड की प्रत्येक क्रिया का सम्बन्ध प्रधान रूप से आत्मविज्ञान, ब्रह्म-विज्ञान या सृष्टि के विविध विज्ञानों से होता है। सामान्य रूप से जो क्रियायें इन श्रौत यज्ञों में होती हैं वे अल्पज्ञ लोगों की दृष्टि में उपेक्षणीय प्रतीत होती हैं परन्तु आर्ष दृष्टि से उनका अत्यन्त वैज्ञानिक रहस्य है। यही गूढ़ रहस्य ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक प्रकार से प्रकट होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित यज्ञ, इष्टियाँ आदि वैज्ञानिक आधार पर ही हैं। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्म-काण्ड ब्रह्म की महिमा का दर्शन और ब्रह्म-प्राप्ति कराता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की शैली याज्ञिक है। यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। श्रेष्ठतम कर्म का फल भी श्रेष्ठतम होता है। श्रेष्ठतम ब्रह्म ही है। श्रेष्ठतम प्राप्ति मोक्ष ही है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड का फल ब्रह्म-प्राप्ति ही है। यज्ञों और इष्टियों में देवतोद्देश्य से कर्म होते हैं। देवता विभिन्न नामोंसे प्रकट किये जाते हैं। वे विभिन्न देवता-वाची नाम परमात्मा की विभिन्न शक्तियों, महिमाओं, सृष्टि-तत्त्वों से सम्बन्धित होने से सृष्टि-तत्त्वों के विभिन्न विज्ञानों को प्रकट करते हैं।

वेदों से लोकमें शब्द प्रयुक्त हुए तथा विभिन्न संज्ञायें बनीं ऐसी संज्ञायें कभी दृष्ट वस्तु प्रधान, कभी अदृष्ट तत्त्व बोधक समयानुसार होती रहीं। जब वेदप्रधान समय था तब उनसे परमात्मा का साक्षात् ज्ञान सुगमता से हो जाता था। जब वेदज्ञान-रहित समाज हुआ तो उनके शुद्ध स्वरूप का ज्ञान लुप्त हो गया। नाना प्रकार की अवैदिक तथा कल्पित शैलियों का उद्गम हुआ।

कालान्तर में वेद में प्रयुक्त शब्दों का सम्बन्ध व्यक्तिरूप में भी माना जाने लगा और इसी व्यक्ति-वाद में ऐतिहासिक यत्किंचित् झाँकियों का सम्बन्ध जोड़कर वेदों में इतिहास का भ्रान्ति से प्रतिपादन किया जाने लगा। परन्तु वेद इससे परे ही हैं। उनमें सृष्टि-विज्ञान के साथ ब्रह्म का विशाल दर्शन है।

वेद के समस्त मन्त्र एवं उनके देवता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं. अर्थात् कर्मकाण्ड में विविध देवतोद्देश्य से दी गयी आहुतियाँ अन्ततः परमात्मा के लिए ही हैं। परन्तु वे सृष्टि-विज्ञान, आत्म-विज्ञान के साथ ब्रह्म विज्ञान को भी प्रकट करती हैं। जिस के अङ्गभूत होकर सृष्टि-विज्ञान एवं आत्म-विज्ञान का दर्शन ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उनके कर्मकाण्ड से होता है। इस लिए वेद-मन्त्रों के रहस्य-ज्ञान को अवगत करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों का ज्ञान आवश्यक है।

प्रस्तुत ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ सर्व सामान्य जनों को तो सम्प्रति उपलब्ध नहीं था। अतः उसको आर्य-भाषानुवाद-सहित प्रकाशित करना अति आवश्यक था।

आचार्य श्री वीरेन्द्र मुनि जी शास्त्री एम.ए. ने अपनी कुशाग्र आर्ष बुद्धि के आधार पर इस का अत्यन्त परिश्रम पूर्वक अनुवाद किया है। अनेक स्थल इसमें ऐसे भी थे जिन का वैदिक सिद्धान्तों की दृष्टि से विरोध प्रतीत होता था। उन पर अपनी प्रखर अनुसन्धानात्मक दृष्टि से ज्ञान का प्रकाश किया गया है।

प्रभु की कृपा और आशीर्वाद से आचार्य श्री वीरेन्द्र मुनि जी ने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद और प्रकाशन अल्प समय में ही वेद-प्रेमी जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है. अतः वे धन्यावाद के पात्र हैं। प्रभु उन को "भूयश्च शरदः शतात्" की यशस्वी आयु प्रदान करें।

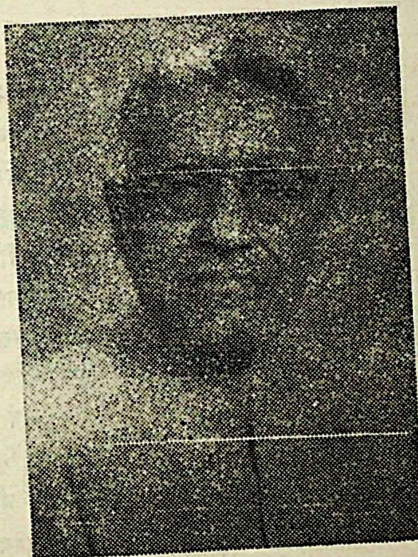
निवेदकः—
वीरसेन वेदश्रमी,
अध्यक्ष, विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ।

वेदसदन, महारानी पथ,
इन्दौर म. प्र. ४५२००७

ऐतरेय ब्राह्मण का समर्पण

आदरणीय गुरुवर
आचार्य प्रवर

६२ वर्षीय



पण्डित बिहारी लाल, शास्त्री, काव्यतीर्थ

की सेवा में
सादर समर्पण

आप ने ही पितृवर्य श्री हरि शङ्कर 'अग्निहोत्री के मित्र और सरस्वती विद्यालय बरेली में सह-शिक्षक-बन्धु होकर मुझ में वेद-अध्ययन के बीज वपन किये तथा वैदिक शिक्षा प्रदान की।

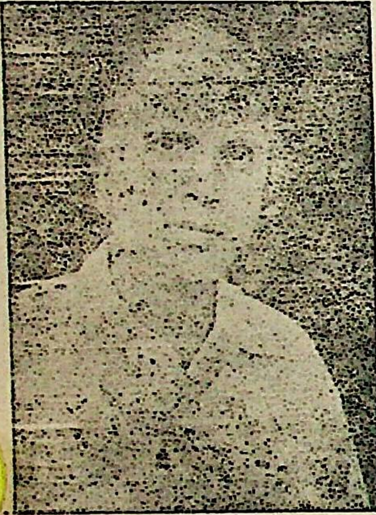
श्रावणी पूर्णिमा, वेद संवत् १९६०८५३०८४ — वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस ग्रन्थ के निर्माण में स्वर्गीय पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय के 'ऐतरेय' से सहायता मिली है तदर्थ कृतज्ञ हूं। अध्यक्ष पं० वीरसेन वेदश्रमी ने आवश्यक परामर्श और प्रेरणा दी तथा प्राक्कथन लिखा है तदर्थ उनका भी आभार प्रकट करता हूं। इसके मुद्रण कार्य में श्री चन्द्र भूषण सिंह जी ने सहायता की है उसके लिए उन्हें शुभ कामना है।

— वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

अनुवादक का संक्षिप्त परिचय



१. नाम— वीरेन्द्र। (जन्म-पत्र में अङ्कित राशि-नाम सिद्धीश्वर। प्रमाणपत्र में अङ्कित वीरेन्द्र अग्निहोत्री।

२. जन्मतिथि— आषाढ़ कृष्ण ५, संवत् १९७२ वि० गुरुवार, १.७.१९१५ ई०।

३. जन्म,स्थान— हाथरस, ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०

४. पूर्वजों का स्थान— उसहत, ज़िला बदायूँ उ. प्र. प्रपितामह— श्री हरलाल (काम्पिल्य से आये) पितामह— श्री मंगली लाल।

५. पिता— श्री हरिशङ्कर अग्निहोत्री, प्रधानाचार्य, सरस्वती विद्यालय, बरेली। 'अग्निहोत्री' उपाधि उन्हें आर्यसमाज, बिहारीपुर, बरेली ने दी।

६. माता—श्रीमती वसन्तीदेवी (देहान्त जब मैं दो वर्ष का था)। मातामह— श्री शिवचरन लाल, इंजीनियर, मथुरा। धर्मपत्नी— विमला शास्त्री

७. गुरुजन— (१) पंडित बुद्धदेव शास्त्री, (२) पं० बिहारीलाल शास्त्री, (३) पं० अयोध्याप्रसाद शास्त्री (४) पं० रामचन्द्र सिद्धान्तालङ्कार, (५) पं० विद्यासागर शास्त्री, वेदालङ्कार आदि।

८. शिक्षा— सम्पूर्ण अष्टाध्यायी और यजुर्वेद कण्ठस्थ किया। शास्त्री, साहित्याचार्य, एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी), काव्यतीर्थ, एल० टी०

९. सेवा-कार्य— अध्यापक, असिस्टेंट रजिस्ट्रार, गव० संस्कृत कालेज परीक्षा, बनारस, असिस्टेंट इंस्पेक्टर संस्कृत पाठशाला उ० प्र०, प्रिंसिपल और ज़िला विद्यालय निरीक्षक (बदायूँ से सेवा-निवृत्त १९७३)

१०. साहित्यिक कार्य— सम्पादक (१) 'संघ' १९३९ (२) वेदवाणी वाराणसी १९४८-४९, (३) संस्कृत देववाणी लखनऊ १९७७ (४) वेदज्योति, रायबरेली लखनऊ १९७७ से अबतक। लेखक—१. धर्मशिक्षा २. स्वास्थ्य-शिक्षा ३. सामवेद सरल हिन्दी अनुवाद ४. यजुर्वेद अध्याय ३१ पुरुष सूक्त, ५. अध्याय ४० ६. वैदिक धर्मशिक्षा ५ भाग, ६. सत्यार्थ-सार, ७. दीपावली-पर्व-परिचय, ८. श्राद्ध-तर्पण का स्वरूप, ९. संस्कृत-कलिका-विकास, १०. भारतवर्षस्य भूगोलशास्त्रम्, ११. संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः (विशिष्ट) १२. वैदिक छन्दःशास्त्र, १३. यज्ञ-सामान्य विधि। १४. अथर्व वेद भाष्य [प्रेस में] १५. ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद [प्रस्तुत]

११. विगत जीवन में सामाजिक कार्य— [१] आर्यसमाज की सदस्यता १९३३ से, आर्यसमाज बरेली के मन्त्री। [२] झांसी, वाराणसी, अल्मोड़ा, फतेहगढ़, रुद्रपुर, रायबरेली, बलरामपुर, उरई, अलीगढ़, बदायूँ, लखनऊ आदि में आर्यसमाज के प्रधान आदि रहे। [३] अधिष्ठाता शिक्षा वि०, आर्य प्र० सभा उ.प्र.। [४] मन्त्री सार्वदेशिक विद्यार्य सभा, नई दिल्ली। वर्तमान—उपप्रधान –जिला आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ। मन्त्री विश्व वेदपरिषद् लखनऊ।

१२. भाषण और लेखन— १५ वर्ष की आयु में शास्त्री होकर भाषण और लेखन कार्य प्रारम्भ किया।

१३. वेद-पारायण यज्ञ—महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा में सर्वप्रथम दस वर्ष की आयुमें यजुर्वेदपारायण यज्ञ में पिताजी ने चारों वेद देकर सम्मिलित किया। सौ से अधिक यज्ञ सम्पन्न कराये। अजमेरमें दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी पर चतुर्वेद पारायण में वेदपाठी ऋत्विज रहे जिसकी पूर्णाहुति पर शाहपुराधीश ने पैर छूकर चारों वेद आदि दक्षिणा में दिये।

१४. पिता जी का मृत्यु-सन्देश— "जीवन पर्यन्त वेद और आर्यसमाज का कार्य करते रहना"। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ की विषय सूची

—❋—

ब्राह्मण ग्रन्थ-परिचय

❀ ब्राह्मण का अर्थ ❀

ब्रह्म = वेद और वेद प्रतिपादित यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाला, और ब्रह्म = ब्राह्मणों = वेदज्ञों द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ 'ब्राह्मण' कहाता है । पुल्लिङ्ग ब्राह्मण शब्द ब्रह्म = वेदज्ञान प्राप्त किये हुए ब्राह्मण वर्ण का अर्थ रखनेवाला है । साहित्य में ब्राह्मण उस ग्रन्थराशि का नाम है जिसमें वेद और वैदिक यज्ञों की विधियों के रहस्य ऋषियों द्वारा बताये गये हैं । अतः वेद मूल संहिताओं- ऋग,यजु,साम और अथर्व का नाम है तथा ब्राह्मण एक प्रकार से अप्रत्यक्षरूप में ब्रह्म (ब्रह्मज्ञानी ऋषियों) द्वारा की गई व्याख्या है । वेद से सम्बन्ध रखने के कारण कुछ लोग इन्हें भी वेद कह देते हैं । वस्तुत:वेद और ब्राह्मण साहित्य अलग अलग हैं । वेद ईश्वरोक्त है, ब्राह्मण वेद का आधार लेकर किये गये उसके और वैदिक यज्ञों के व्याख्यान हैं ।

❀ उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थ ❀

प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं —

१-ऋग्वेद—[१] ऐतरेय
[२] सांख्यायन (कौर्षीतकि ऋषिका)
२-यजुर्वेद— [३] शतपथ (वाजसनेयी माध्यन्दिन)
[४] शतपथ (काण्व शाखा का)
[५] तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का)
३-सामवेद—[६] ताण्ड्य(पंचविंश महाब्राह्मण)
[७] (षड्विंश (अद्भुत)
[८] आर्षेय
[९] दैवत ।
[१०] मन्त्र उपनिषद्
[११] संहितोपनिषद् ।
[१२] वंश ।
[१३] जैमिनीय उपनिषद् ।
[१४] साम विधान ।
४ अथर्व वेद—[१५] गोपथ

अनुपलब्ध—भाल्लवि, शाट्यायन, काठक आदि ।

❀ ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय ❀

१— महर्षि जैमिनि ने मीमांसा दर्शन में बताया शेषे ब्राह्मण शब्दः (२.१.३३) ।

२—शबर स्वामी ने इसके भाष्यमें बताया है कि मन्त्र के लक्षण जिसमें न हों वह शेष बचा वैदिक साहित्य ब्राह्मण शब्दवाची है ।

३— वृत्तिकार उपवर्ष ने बताया कि 'इत्याह' (ऐसा है) के रूप में जिसमें 'इति' बहुत आदे और आख्यायिका का रूप हो वह ब्राह्मण है ।

इन श्लोकोंमें ब्राह्मण के दस लक्षण बताये हैं-

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना ॥
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु ।
एतद् वै सर्ववेदेषु नियतं विधिलक्षणम् ॥

४— ब्रह्माण्ड पुराण (१.३३.४७-४८) में इन में दूसरे श्लोक का उत्तरार्ध निम्न प्रकार है—
लक्षणं ब्राह्मणस्यैतद् विहितं सर्वशाखिनाम् ॥

५— वायु पुराण (उनसठवें अध्याय के १३२-१३३) में ये श्लोक व्याख्यासहित मिलते हैं ।

ये दस लक्षण निम्नलिखित हैं—

(१)हेतु—यज्ञकी विधि का कारण बताना, जैसे शूर्पेण जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियते (सूप से होम करता है क्योंकि उससे अन्न शुद्ध किया जाता है) शतपथ २.५.दो.तेइस

(२) निर्वचन (निरुक्ति)—'दधि' (दही) धारण करने से,'आज्य स्तोत्र' 'आजि'से(ताण्ड्य ७.दो.१) इसी प्रकार रथन्तर, बृहत् साम आदि की निरुक्ति बतायी गई है । (ताण्ड्य७,६.४.५)

(३) निन्दा— जुआ खेलना, अपात्र को विद्या, यज्ञ में माष (उड़द) के प्रयोग (अमेध्या वै माषाः- तै. तं.५.१.८.१) आदि की निन्दा की गई है ।

(४) प्रशंसा—अग्निष्टोम (तां. ६.३.८.६), यज्ञ, वायु (वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता- तै. सं. दो.१.१) आदि की प्रशंसा भरी पड़ी है ।

(५) संशय-- होतव्यम् गार्हपत्ये, न होतव्यम् (गार्हपत्य अग्नि में होम करना चाहिए या नहीं) इस प्रकार के संशय भी मिलते हैं।

(६) विधि— 'विधि' का अर्थ यज्ञ तथा उस के अंगों उपांगों के अनुष्ठान का उपदेश है। ताण्ड्य (६.७) में अनेक विधियाँ उपलब्ध होती हैं। उदाहरणार्थ वहिष्पवमान' के लिए अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान किया गया है। साथ ही साथ दो नियमों का पालन करना नितान्त आवश्यक होता है। ऋत्विजों को प्रसर्पण करते समय धीरे धीरे पैर रखने का नियम है तथा मौन रहने का भी विधान है। पाँचों ऋत्विजों में अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता प्रतिहर्ता तथा ब्रह्मा को एक दूसरेके पीछे इसी क्रम से पंक्ति बाँधकर चलने की व्यवस्था है। इस पंक्ति के टूट जाने पर अनेक हानि तथा अनर्थ की सम्भावना होती है। इस समय अध्वर्यु अपने हाथ में कुश को लेकर चलता है।

शतपथ ब्राह्मण विधि-विधानों की एक विशाल राशि प्रस्तुत करता है। आरम्भ के ही प्रथम कांड में दर्श और पौर्णमास इष्टियोंके मुख्य तथा अवान्तर अनुष्टानों का वर्णन यागक्रम से किया गया है तथा द्वितीय कांड में आधान तथा पुनराधान, अग्निहोत्र तथा उपस्थान, आग्रयण तथा दाक्षायण यज्ञ का वर्णन बड़े विस्तार पूर्वक पुंखानुपुंख किया गया है। विधि के साथ ही साथ हेतु लक्षण का सयुक्तिक निर्देश किया गया है। शतपथ के आरम्भकी कण्डिकामें ही सहेतुक विधि का निर्देश उपलब्ध होता है। पौर्णमास इष्टि में दीक्षित होने वाला व्यक्ति आहवनीय तथा गार्हपत्य अग्नियों के बीच में पूरब की ओर खड़ा होकर जल का स्पर्श करता है। इस जल के स्पर्श का क्या कारण है? जल मेध्य होता है अर्थात् यज्ञ के लिए उपयोगी पदार्थ होता है। झूठ बोलनेवाला यज्ञ के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अतः जल के स्पर्श करने से व्यक्ति पापों को दूर कर मेध्य बनता है। या जल पवित्र होता है। अतः जल के स्पर्श करने से व्यक्ति पवित्र होकर दीक्षित होता है।

यजमानेन सम्मिता औदुम्बरी भवति (वै.६.२.१०)
अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः (ऋ.भा.सू.)

(७) — परक्रिया (परकृति)— दूसरे के कार्य को देखकर अच्छा या बुरा बताना। जैसे– माषान्मे पचत (मेरे लिए उड़द पकाओ) शतपथ १:१.१.१०

यह उदाहरण कुलारिल के अनुसार परकृति के आधार पर है जिसने परकृति का अर्थ-- 'एक के द्वारा किया गया उपाख्यान' और पुराकल्प का अर्थ 'बहुतोंद्वारा किया गया आख्यान' बताया है।

(८) पुराकल्प (इतिहास)—जो पहले हुआ हो।

[१] जनककी सभामें याज्ञवल्क्य, गार्गी, शाकल्य आदि ने एकत्र होकर आपस में प्रश्नोत्तर रीति से संवाद किया था।

[२] उल्मुकैर्ह स्म पूर्वे समाजग्मुः (पूर्व जन अंगारों के साथ ही आये थे) (शाबर भाष्य)

(९) व्यवधारण-कल्पना (निश्चय करना)— यावतो अश्वान् प्रतिगृह्णीयाद् (तै. दो -३-१वारह) (जितने अश्वों का दान ले)

उपमा [आख्यान]

(१०) उपमा (उपदेश)– ब्राह्मणों में विधि अर्थवाद का वर्णन इतने विस्तार से कियागया है कि साधारण पाठकों को उद्वेग हुए बिना नहीं रहता, परन्तु इन उद्वेदक विषय–व्यूहों में से कभी कभी अत्यन्त रोचक आख्यान नितान्त आकर्षक तथा महत्त्वपूर्ण निकल आते हैं। तमिस्रा में प्रकाश की किरणों के समान तथा दीर्घ मरुभूमि में हरी भूमि की तरह ये पाठकों के उद्विग्न हृदय को शान्त तथा शीतल बनाते हैं। विधि-विधानों के स्वरूप की ही व्याख्या इन आख्यानों की जननी है, परन्तु कभी-कभी ये यज्ञ के संकीर्ण प्रान्त से पृथक् होकर साहित्य के सार्वभौम क्षेत्र में विचरने लगते हैं तो कर्मकांड की कर्कशता उन्हें रोक नहीं सकती।

आख्यान दो प्रकार के होते हैं – स्वल्पकाय और दीर्घकाय। स्वल्पकाय आख्यानों में उन कथाओं की गणना है जो सद्यः विधि की सयुक्तिकता प्रदर्शित करने के लिए उल्लिखित हैं।

आख्यान और कहानियाँ

ऐसे छोटे आख्यानों में कतिपय प्रधान ये हैं — वाक् का देवों को परित्याग कर जल और अनन्तर वनस्पति में प्रवेश [ताण्ड्य ६.५.१०-१२), स्वर्भानु असुर का आदित्य पर आक्रमण और अत्रि द्वारा उस अंधकार का विघटन (ताण्ड्य ६.६.८) यज्ञ का अश्वरूप में देवताओं से अपाक्रमण तथा दर्भमुष्टि के द्वारा उसका प्रत्यावर्तन (ता० ६.७-१८); अग्नि मन्थन के समय घोड़े को आगे रखने का प्राचीन इतिहास [शत० १.६.४.१५], असुरों तथा देवों के बीच नाना संग्राम (शत० २.१.६.८–१८) [ऐत० १.४.२३, ६.२.१]

इन छोटे आख्यानों में कभी-कभी बड़ी गम्भीर तात्त्विक बातोंका भी संकेत मिलता है जो ब्राह्मणों के कर्मकाण्डात्मक वर्णन से नितान्त पृथक् होता है तथा गूढ़ गम्भीरार्थ-प्रतिपादक होता है। प्रजापति की प्रार्थना उपांशु रूप से करने के निमित्त शतपथ ने जिस कथानक का उपक्रम किया है वह नितान्त रहस्यमय है। श्रेष्ठता पाने के लिए मन और वाक् में कलह उत्पन्न हुआ। मन का कहना था कि मेरे द्वारा अनभिगत बात वाणी नहीं बोलती है। मेरा अनुकरण करती हुई मेरे पीछे चलती है। (कृतानुकरा अनुगन्त्री) वाणी का कथन था कि जो तुम जानते हो उसकी विज्ञापना मैं ही करती हूं (मन के द्वारा ज्ञान या चिन्तित तथ्यों का प्रकटीकरण वाणी करती है) अतः मैं श्रेष्ठ हूं। दोनों प्रजापति के पास गये। उन्होंने अपना निर्णय मन के पक्ष में दिया। फलतः वाणी की अपेक्षा मन श्रेष्ठ माना जाता है। इस कथानक के भीतर मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशद संकेत है (शत० १,४.५.८.१२)

वाक् से सम्बद्ध अनेक आख्यायिकायें बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद हैं। गायत्री छन्द सोम को देवताओं के निमित्त ले जा रहा था कि गन्धर्वों ने उसका हरण किया। देवता लोगोंने वाक् को भेजा वाक् अपने साथ सोम को लेकर लौटी। अब वाक् के लौटने का उद्योग होने लगा। गन्धर्वों ने स्तुति तथा प्रशंसा से उसे अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा। उधर देवों ने गायन और वादन के द्वारा आवर्जन करना चाहा। वाक् देवों के कार्यपर रीझ कर उन्हीं के पास चली गई। इस कथा के प्रतीयमान उपदेश पर ब्राह्मण आग्रह दिखला रहा है कि यही कारण है कि स्त्रियां आज भी स्तुति की अपेक्षा संगीत से अधिक आकृष्ट होती हैं यह उनका स्वभाव ही ठहरा। (शत० ३.२.४.दो-६)

सृष्टि के विषय में अनेक आख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। पुरुष के द्वारा वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख तो पुरुष सूक्त में ही उपलब्ध है। ताण्ड्य ब्राह्मण में भी प्रजापति के अंग विशेष से वर्णों की तथा तत्तत् देवताओं की उत्पत्ति बतलायी है। प्रजापति के मुखसे ब्राह्मण एवं अग्नि की, बाहु से क्षत्रिय एवं इन्द्र की, मध्यदेश से वैश्य एवं विश्वेदेवाः की, पैरों से शूद्र की उत्पत्ति गुणों की समानता बताने हेतु बताई गई है।

किन्हीं आख्यानों में साहित्यिक सौन्दर्य तथा कल्पनाकी सुन्दर अभिव्यंजना मिलती है। रजनी के उदय के विषय में सुन्दर आख्यान मैत्रायणी संहिता में मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि रात्रि की उत्पत्ति यमी के विषाद को भुला देने के लिए की गई है। यम के परलोक चले जाने पर यमी उसके दुःख से इतनी दुःखित हुई कि वह सर्वदा विलाप किया करती थी। यम को किसी तरह भूलती ही न थी, उस समय दिन का ही राज्य था। दिनमें उसकी स्मृति भूलती ही न थी। प्रजापति ने दयावश रात्रि को जन्म दिया। अन्धकार से जगत् व्याप्त हो गया। तभी यम को भुला सकी।

पर्वतों के पक्ष सम्पन्न होने तथा इन्द्र से उनके पक्षभेदन की कथा भी इसी संहिता में उपलब्ध है। ये कहानियाँ सचमुच सुन्दर रोचक हैं।

बृहत्काय कहानियों में पुरूरवा एवं उर्वशी की कहानी (शत०) एवं शुनःशेप की कहानी [ऐत०] प्रमुख हैं। इनमें से अनेक कहानियों का आधार संहिताओं में अन्तर्निविष्ट है जिन्हें लेकर ब्राह्मणों एवं पुराणों ने अपनी पद्धति के अनुसार पल्लवन किया है (पुरूरवा उर्वशी का वर्णन ऋ: १०।९५)

न्याय दर्शन में स्तुति, निन्दा, परकृति पुराकल्प इन चारों को अर्थवाद बतलाया गया है। इसके साथ विधि एवं अनुवाद को भी ब्राह्मण का लक्ष्य बताया गया है। हेतु, संशय, व्यवधारण, कल्पना, का वर्णन उनमें नहीं प्राप्त होता है।

—❀—

ब्राह्मणों का महत्त्व

ब्राह्मणों के यागानुष्ठानोंके विशाल सूक्ष्मतम वर्णन को आजकल का आलोचक नगण्य दृष्टि से देखने का दुःसाहस भले ही करे, परन्तु वे एक अतीत युग की संरक्षितनिधि हैं, जिन्होंने वैदिक युग के क्रिया-कलापों का भव्य चित्र धर्म-मीमांसक के लिये प्रस्तुत कर रखा है। यह परिस्थिति के परिवर्तन हो जाने के कारण अवश्य ही धूमिल सा हो गया है, परन्तु धार्मिक दृष्टि से उपादेय,सग्रहणीय और माननीय हैं। भारतीय धर्म के इतिहास में श्रौत विधानों का एक विचित्र युग ही था। उस युग को अपने पूर्ण सौन्दर्य तथा सौष्ठव के साथ आज भी उपस्थित करने का श्रेय इन्हीं ग्रन्थों को है। समय ने पल्टा खाया है। युगों ने करवटें बदलीं हैं। भक्ति आन्दोलन की व्यापकता के कारण वैदिक कर्मकाण्ड का ह्रास हो गया। श्रौत यज्ञ विधान आज अतीत की एक स्मृति मात्र है। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड से लोगों की आस्था उठती गई। फलतः न कहीं श्रौत याग होते हैं और न कहीं उन अनुष्ठानों को साक्षात् करने का अवसर ही कभी प्राप्त होता है। यही कारण है कि ब्राह्मणोंके क्रिया कलापों को ठीक ठीक हृदयंगम करना एक विषम समस्या है; परन्तु इतना तो निश्चित है कि वे यज्ञ सम्बन्धी बकवाद नहीं हैं जैसा कि अधिकांश पश्चिमी व्याख्याता मानते आये हैं। उनके भीतर भी एक तथ्य है जिसे को खोलने की एक कुञ्जी है श्रद्धामय अनुशीलन तथा अंतरंग दृष्टि। बहिरंग दृष्टि वाले के लिये तो ये 'ब्राह्मण' उटपटांग अंडबण्ड के सिवाय और क्या हो सकता है?

❀ ब्राह्मण ग्रन्थ और मीमांसा ❀

ब्राह्मणों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि उस समय यज्ञयाग के अनुष्ठानों को लेकर विद्वानों में बड़ा शास्त्रार्थ होता था। मीमांसा जैसे शास्त्र की उत्पत्ति उस युग में हो गई थी जिसमें तर्क पद्धति के अनुसार यज्ञ के विषयों का विमर्शन होता था। मीमांसक ही हमारे प्रथम दार्शनिक हैं और मीमांसा प्रथम दर्शन। मीमांसा के लिये न्याय का प्रयोग इसीलिये उपयुक्त प्रतीत होता है। ब्राह्मणों में यज्ञीय विषयों के मीमांसक विद्वानों को ब्रह्मवादी संज्ञा दी गई है। उन के सामने यज्ञों की व्यवस्था के लिये आपाततः प्रतीत होनेवाले विरोधों को दूर करना आवश्यक था। अतः उन्होंने तार्किक बुद्धिका प्रयोग कर विधिवत् मीमांसा की। तांड्य ब्राह्मण [६.४.१५] में 'एवं ब्रह्मवादिनो वदन्ति' के द्वारा अनेक यज्ञीय समस्याओं के सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। शतपथ (१.१.१.७-१०) में ऐसे तार्किक विद्वानों के नाम भी मिलते हैं और उन के मतों की समीक्षा भी की गयी है। उदाहरणके लिये दीक्षा के पूर्व दिन भोजन करने अथवा न करने के प्रश्न पर सावयस अषाढ़ और याज्ञवल्क्य में मध्य गम्भीर मीमांसा मिलती है। अषाढ़ अनशन को ही व्रत मानने के पक्ष में थे किन्तु याज्ञवल्क्य ने सिद्ध किया कि भोजन करना चाहिये परन्तु खाया हुआ भी न खाये के समान हो, जैसे जंगली धान फल आदि।

ब्राह्मणों में 'मीमांसा' का प्रयोग बहुत मिलता है—

उत्सृज्याम् नोत्सृज्यामिति मीमांसन्ते। (तै. ७.५)

ब्राह्मणपात्रे न मीमांसेत। (तांड्य ६.५.९)

उदिते होतव्यमनुदिते होतव्यमिति मीमांसन्ते(कौ२.९)

ब्राह्मणों में निम्नलिखित अनेक बातें मिलती हैं—

[१] यज्ञों के नाना रूपों और अनुष्ठानों का परिचय।

[२] उन निर्वचनों से परिचय जो निरुक्त की निरुक्तियों का मौलिक आधार हैं।

[३] इन आख्यानों का मूल जिससे पुराण-कथाएँ बनीं।

[४] 'कर्म-मीमांसा' का आरम्भ और उत्थान।

[५] विविध शास्त्रों के उदय की कथा— कि यज्ञ की आवश्यकता की पूर्ति के लिये उत्पन्न हुए ये शास्त्र सार्वभौम क्षेत्र में अपना विकास करने लगते हैं।

ब्राह्मणों का देश-काल

ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध मौलिक विवरण से स्पष्ट होता है कि इनके उदय का स्थान है कुरुपाचाल प्रान्त तथा सरस्वती नदी का प्रदेश । ताण्ड्य ब्राह्मण में सारस्वत प्रदेश का परिचय बड़ा ही घनिष्ठ है । सरस्वती नदी के लुप्त हो जाने के स्थान का नाम 'विनशन' है तथा उसके पुन: उद्गम के स्थान का अभिधान 'प्लक्ष प्रास्रवण' है (ताण्० २५.१०.२१) यह स्थान विनशन से अश्व की गति से ४४ दिनों तक चलने की दूरी पर था । यमुना के बहने का प्रदेश 'कारपचव' नाम से अभिहित किया गया है । (ताण्०-२५.१०.२३) । इतना ही नहीं सरस्वती तथा दृषद्वती के बीच के प्रदेश तथा इनके संगम का भी निर्देश मिलता है । सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत है कुरुक्षेत्र को प्रजापति की वेदि मानना (एतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रम्—ताण्ड्य २५.१३.३)

प्रजापति के यज्ञ के प्रतीक होने से कुरुक्षेत्र यज्ञ की वेदि सिद्ध होता है अर्थात् इसी प्रदेश में ब्राह्मणों का संकलन किया गया तथा यज्ञयाग की पूर्ण प्रतिष्ठा इसी प्रान्त में हुई । मनुस्मृति में भी दृषद्वती तथा सरस्वती दोनों देव-नदियों के बीचका यही देव-निर्मित्त प्रदेश 'ब्रह्मावर्त' नाम से सुप्रसिद्ध हुआ [मनु० २.२२] यज्ञ-संस्कृति का यही केन्द्र तथा पीठ-स्थल है; जहाँ ब्राह्मणों की यज्ञ-क्रिया का पूर्ण विकास सम्पन्न हुआ, यहीं की भाषा-संस्कृति समग्र भारत की संस्कृति है ।

ब्राह्मणों के संकलन काल का अनुमान ज्योतिष सम्बन्धी उल्लेखों के आधार पर लगाया गया है । ब्राह्मण साहित्य से उपनिषदों का काल लगभग १००० वर्ष पीछे माना जाना चाहिए । स्वरों से युक्त होने से शतपथ अत्यन्त प्राचीन माना जाता है । इसके द्वितीय काण्ड में (जिसे कुछ लोग प्राचीन भाग स्वीकार करते हैं) एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्योतिष-घटना का वर्णन मिलता है । इसका आशय है कि कृत्तिकायें ठीक पूर्व दिशा में उदय होती हैं और वहाँ से प्रच्युत नहीं होतीं हैं । इस घटना की स्थिति प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित के गणनानुसार विक्रम पूर्व ३००० वर्ष होनी चाहिये । दीक्षित की इस गणना पर किसी यूरोपीय विद्वान् ने विशेष ध्यान नहीं दिया, परन्तु डा० विण्टरनित्स ने अपने इतिहास ग्रन्थ में किसी जर्मन ज्योतिषी (प्रो० ए० प्रे०) के गणनानुसार इस ग्रह स्थिति को ग्यारह सौ ई० पूर्व माना है । इस ज्योतिषी की व्याख्या है कि कृत्तिकायें अपने उदय के बाद तक पूरब में दिखायी पड़ती थीं और ऐसी दशा ग्यारह सौ ई० पूर्व ही सिद्ध होती है । परन्तु [एता: कृत्तिका: ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते] शब्दों की यह नई व्याख्या मानने की कोई आवश्यकता नहीं है । दूसरी विप्रतिपत्ति यह है कि 'वेदांग ज्योतिष' सर्वसम्मति से शतपथ से अर्वाचीन रचना माना जाता है । इसका काल चौदह सौ ई० पूर्व माना जाता है । डा० मैक्समूलर भी इसका समय ग्यारह सौ इक्यासी ई० पूर्व से कथमपि पीछे मानने के पक्ष में नहीं हैं । यदि शतपथ का यह नया काल माना जायगा, तो 'वेदाङ्ग ज्योतिष' के समय से उसकी पूर्ववर्तिता भंग हो जायगी जो कथमपि स्वीकार नहीं । मैत्री उपनिषद् में निर्दिष्ट ज्योतिष घटना के आधार पर इसका समय उन्नीस सौ ई. पूर्व माना गया है इस घटना को ध्यान में रख कर हम दीक्षित के मतानुसार मान सकते हैं कि शतपथ ब्राह्मण का रचनाकाल तीन सहस्र ई० पूर्व है तथा ब्राह्मण युग तीन सहस्र ई०पूर्व से लेकर दो सहस्र वर्ष ई० पूर्व तक मानना चाहिए । प्राचीनतम होने से शतपथ इसकाल के आदि में और अर्वाचीन होने से गोपथ इसके अन्तमें आता है (वैद्य—वैदिक साहित्य का इतिहास पृष्ठ अट्ठारह से चौबिस) ।

ब्राह्मणों की भाषा शैली

समस्त ब्राह्मणग्रन्थ गद्यमें ही निबद्ध किये गये हैं । ब्राह्मणों का गद्य बड़ा ही परिमार्जित, सरल और उदात्त है । दीर्घ समास का न तो कहीं दर्शन होता है और न कहीं अर्थ समझनेमें कोई दुरूहता । भगवती भागीरथी के भव्य प्रवाहके समान यह गद्य अपने प्रवाह को लिये प्रवाहित होता है । भाषा मन्त्रों की भाषा के समान ही है परन्तु वह प्राचीन शब्दों तथा धातुओं से वंचित होकर नये शब्दों तथा शब्द-रूपों को ग्रहण करने में पीछे नहीं रहती । वह संहिताओं और पाणिनि की भाषा को मिलाने वाली बीच की कड़ी है ।

ब्राह्मणों का धर्म, समाज

ब्राह्मण युग में यज्ञ का सम्पादन ही धर्म का मुख्य उद्देश्य था। सच तो यह है कि यज्ञ के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुष्ठानों के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है तथा इन विधियों के पूर्ण निर्वाह के लिए विशेष आग्रह दीख पड़ता है। अग्निकी स्थापना कब करनी चाहिए ? कैसे करनी चाहिए ? घी की आहुति अग्नि में कहाँ गिरे ? वेदि पर बिछने के लिए दर्भ का अग्रभाग पूरबकी ओर रहता है या उत्तर की ओर ?—आदि का वर्णन इतनी सूक्ष्मता तथा विस्तार के साथ किया गया है कि इसे पढ़कर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता है। समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम माना जाता था। (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म शत० १.७-३.५)। ब्राह्मणों में यज्ञकी इतनी महिमा तथा आदर है कि विश्व का सबसे श्रेष्ठ देवता प्रजापति भी यज्ञ का ही रूप है —

एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत् प्रजापतिः [श० ४.३.४.३]

विष्णु का भी प्रतीक यज्ञ है — यज्ञो वै विष्णुः। आकाश में दीप्यमान आदित्य भी यज्ञ रूप है —

स यः यज्ञोऽसौ आदित्यः। [शत० १४.१.]

समस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण इस विश्व में यज्ञ ही परम आराध्य वस्तु है। जगत् के जितने भी पदार्थ हैं, यहाँ तक कि देवों का जनक रूप प्रजापति भी यज्ञ का ही आध्यात्मिक प्रतीक है। यज्ञ (ईश्वर) से ही सृष्टि हुई, इस वैदिक तत्व का परिचय हमें पुरुष सूक्त से मिल जाता है। ब्राह्मण युग में यज्ञ की महनीयता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। अग्निहोत्र के अनुष्ठानसे प्राणी अपने सब पापों से छूट जाता है। [सर्वस्मात् पाप्मनो विमुच्यते य एवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति— शत २.३.] अश्वमेध से यज्ञ करनेवाला अपने सब पापों को दूर भगा देता है। शत. १३-५-४. । गोपथ में बड़ी सुन्दर उपमा के द्वारा इस पाप-निर्मोचन का तत्व समझाया गया है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुली से छूट जाता है तथा सींक मूंज से छूट जाती है उसी प्रकार शाकला का हवन करनेवाला समस्त पापों से छूट जाता है—

तद् यथा अहिः जीर्णायास्त्वचो निर्मुच्येत, इषीका वा मुञ्जात् एवं हवै ते सर्वस्मात् पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति ॥ [गोपथ उ. ४.६]

इतना उपादेय होने से ही यज्ञ के पूर्ण अनुष्ठान करने के लिए इतना आग्रहपूर्वक आदेश है।

यहाँ गौण देवताओं को मुख्यता मिल गयी है। जैसे विष्णु, रुद्र, प्रजापति को। ऐतरेय के आरम्भ में ही विष्णु के परम देव होने की सूचना है—

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः।

रुद्र के लिए महादेव शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। प्रजापति का पद तो देवों में अग्रस्थानीय है। जगत् के स्रष्टा प्रजापति ही हैं। प्रजापति देवताओं के भी सृष्टिकर्ता हैं। प्रजापति ही भूतल के पदार्थों के स्रष्टा हैं। वे ही देवताओं को उत्पन्नकर उनमें ऊर्ज का विभाग करते हैं और ऊर्ज विभाग से उदुम्बर वृक्ष का जन्म हुआ, इसीलिए प्रजापति की महिमा ब्राह्मणों में सर्वतो महीयान् है।

चार वर्ण

ब्राह्मणयुगीन समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों तथा इनके कार्यों की पूरी व्यवस्था और प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। वैदिक यज्ञ का सम्पादक तथा निर्वाहक होने के कारण इन ब्राह्मणोंका स्थान चारों वर्णोंमें अग्रतम था। ब्राह्मणों में वेद शास्त्रको पढ़नेवाला ब्राह्मण 'मनुष्यदेव' के महनीय अभिधान से मण्डित किया जाता था —

ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः। [शत० २.२.२६]

विद्वांसो हि देवाः। [श० ३.७.]

तैत्तिरीय संहिता [१.७.३.१] में ब्राह्मण प्रत्यक्ष देव कहा गया है — एते देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणाः। शतपथमें दो प्रकार के देवता माने गये हैं, अग्नि आदि हविर्भोजी देव और मनुष्य-देव ब्राह्मण दोनों के लिए यज्ञ के दो विभाग किये गये है। आहुति देवों के लिए और दक्षिणा मनुष्य-देवों के लिए होती है जिन के द्वारा वे प्रसन्न होकर यजमान का कल्याण करते हैं [शत० २।२।२।६] राजा अपने समग्र राज्य को दक्षिणा रूप में दे सकता है परन्तु ब्राह्मण की सम्पत्ति को छोड़कर ही दे सकता है।

अभिषेक के अवसर पर पुरोहित कहता है — यह मनुष्य तुम्हारा राजा है, हम ब्राह्मणों का राजा सोम है (सामोऽस्माकम् ब्राह्मणानां राजा)। शतपथ की व्याख्या के अनुसार इसका तात्पर्य यह है कि राजा के लिए समस्त प्रजा अन्न-स्थानीय है परन्तु ब्राह्मण नहीं, क्योंकि वह तो भौतिक राजा की प्रजा ही नहीं होता। वह सोमराजा की प्रजा है [शत० १३.३.५.३]। ब्राह्मण के लिए आदर्श है ब्रह्मवर्चसी अर्थात् वेदके अध्ययन से तेजस्वी बनना और इसीलिये ब्राह्मण में वही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जो वेद-ज्ञाता हो—

तद्ध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद् ब्रह्मवर्चसी स्यादिति ॥ [शत० एक ।९।३। सोलह]

यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः ॥ [शत० ४।६।६।५]

ब्राह्मण का बल उसके मुख में, वाक् शक्ति में ही होता है; क्योंकि उसकी सृष्टि मुख से हुई है—

तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति। मुखतो हि सृष्टः। [ता० ६। एक।६]

ऐसे अनूचान(वेदज्ञ) ब्राह्मण के वश में क्षत्रिय के रहने पर ही राष्ट्र का मंगल होता है और राष्ट्र में वीर पैदा होते हैं —

तद् यत्र ब्राह्मणः क्षत्रं वशमेति तद् राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते [ऐ०८।९]

क्षत्रिय राष्ट्र का रक्षक तथा वैश्य उसका वर्धक माना जाता था। पैर से धारक होने के कारणशूद्र का सेवा धर्म ही प्रधान धर्म था। इस प्रकार यज्ञ-प्रधान वैदिक समाज में वेदज्ञ ब्राह्मणों की महती प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक ही है।

नैतिकता

यज्ञ का सम्पादन बाह्य आचार के ऊपर होने पर भी वह आन्तर आचरण के ऊपर पूर्णतया अवलम्बित था। जिन पाश्चात्य आलोचकों ने ब्राह्मण ग्रन्थोंमें नैतिकता के अभाव की बात कही है उनका कथन कथमपि मान्य तथा प्रामाणिक नहीं है। उस काल का समाज पूर्णरूप से नैतिक आचारवान् था, और कल्याण के लिये सत्य के अनुष्ठान पर आग्रही था। केवल दीक्षित को ही नहीं, प्रत्येक को सत्यभाषी होना चाहिए। असत्य बोलनेवाला यज्ञके लिए उपयुक्त नहीं होता (अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति। शत. ३.१.३.१८) असत्य बोलना जल से अग्नि का सींचना और सत्य बोलना घी से सींचना है। असत्यवादी का तेज धीरे धीरे कम होजाता है। वह नित्यप्रति पापी होता जाता है। अतः सत्य ही बोले। इस प्रकार सत्य पर आग्रह करने वाले ग्रन्थ पर नैतिकहीनता का आरोप कदापि उचित नहीं।

तत्कालीन समाज पाप के आवर्तन-शील स्वभाव से अच्छी प्रकार परिचित था। वह जानता था कि जो मनुष्य एक बार पाप करता है वह अभ्यासवश उसके अनन्तर अन्य पाप का भी आचरण करता है, रुकता नहीं—

यः सकृत् पातकं कुर्यात् कुर्यादेनस्ततोऽपरम्। ऐतरेय ७.१.७

इसीलिए पाप को रोक कर पुण्य करने की आवश्यकता है। सत्य और श्रद्धा के आचरण से ही मनुष्य स्वर्ग(सुख) को पा लेता है। वाग्देवी के दो स्तन हैं— सत्य और अनृत। वह सत्य से रक्षा करती है और अनृत से मार डालती है—

वाचो वाव द्वौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते। अवत्येनं सत्यं नैतमनृतं हिनस्ति य एवं वेद। (ऐतरेय ४.१)

ताण्डय में असत्यको वाणी का छिद्र बताया है—

एतद् वाचश्छिद्रं यदनृतम्। (ता. ८. ६.)

इसका तात्पर्य है कि जैसे छेद के भीतर से वस्तु निकल जाती है वैसे ही असत्यवादी की वाणी से उसका सार निकल जाता है। वह सारहीन वाणी किसी पर प्रभाव नहीं डाल सकती।

शतपथ (२.२.२.) में इसके लिए सुन्दर उपमा का प्रयोग किया गया है। सत्य क्या है? अग्निपर घी डाल कर उसे उद्दीप्त करना। असत्य क्या है? जलती अग्नि पर पानी डालना। असत्य-वादी का तेजो बल शनैः शनैः कम होता जाता है। अत एव सत्य ही बोलना चाहिए—

स यः सत्यं वदति, यथा अग्निं समिद्धं तं घृतेनाभिषिञ्चेत्, एवं हैनं स उद्दीपयति, तस्य भूयो भूयः एव तेजो भवति, श्वः श्वः श्रेयान् भवति। अथ यो

अनृतं वदति यथा अग्नि समिद्धं तमुदकेनाभिषिंचेत् एवं हैनं स ह्रासयति, तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान् भवति, तस्मात्सत्यं वदेत् ।

ऐतरेय में श्रद्धा तथा सत्य की मिथुन-कल्पना बड़ी सुन्दर तथा रोचक है । "श्रद्धा पत्नी है । सत्य यजमान है । श्रद्धा तथा सत्य की जोड़ी बहुत ही उत्तम है । यजमान अपनी पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ के द्वारा स्वर्ग पाने में समर्थ होता है । उसी प्रकार सत्य और श्रद्धा के साथ संयुक्त होकर स्वर्ग-लोकों को जीत लेता है । "

श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः । श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम् । श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गांल्लोकान् जयतीति ।। (ऐ० ७ । दस)

समाज में दान तथा आतिथ्य की प्रतिष्ठा थी । जो मनुष्य न देवों को, न पितरों को, न अतिथियों को दान से तर्पण करता है, वह पुरुष 'अनद्धा' अनृत कहलाता है । सायंकाल में आए हुए अतिथि का किसी तरह निराकरण नहीं करना चाहिए । जो पुरुष अतिथिकी सेवा करता है वह मानो मोटा हो जाता है— प्रसन्न हो जाता है । उस समाज में आतिथ्य की बड़ी महिमा का पता इसी घटना से लग सकता है कि आतिथ्य यज्ञ का शिर माना जाता था, अतिथि की पूजा यज्ञके मस्तक की पूजा मानी जाती थी —

शिरो वा एतद् यज्ञस्य यद् आतिथ्यम्(ऐ०एक।२५)

नारी की महिमा

समाज में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान था । उचित भी ऐसा ही है । यज्ञ में पत्नी यजमान की सहधर्मचारिणी होती है । पत्नी शब्द की व्युत्पत्ति भी तो इसी विशिष्टता की ओर संकेत कर रही है । पत्नी से विहीन पुरुष यज्ञ करने का कथमपि अधिकार नहीं रखता —

(अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः तै० २।२।२।६)

पत्नी शरीर का आधा भाग मानी जाती है —

(अथा अर्धो वा एष आत्मनः यत्पत्नी (तै०३।३।३।५)

वेदि की रचना के प्रसंग में शतपथ ब्राह्मण स्त्री-सौन्दर्य के लिए एक महनीय आदर्श की ओर संकेत करता है । स्थूल जघन, कन्धों के बीच छाती का भाग स्थूल, कटि पतली— ये स्त्री की शारीरिक सुषमा के श्लाघनीय प्रतीक थे— एवमिव हि योषां प्रशंसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तरांसा मध्ये संग्राह्या । शतपथ १.२.५.१६ । ऐसी स्त्री के साथ विवाहित होकर पुरुष पुत्रोत्पत्ति को स्वर्ग-सुख का साधन समझता था । ऐतरेयमें पुत्रकी भव्य प्रशंसा समाज में वीर सन्तान के मूल्यांकन करनेमें पर्याप्त मानी जा सकती है । पितर पुत्र के द्वारा ही क्लेश को पार करने में समर्थ होते हैं । पुत्र आत्मा से जन्म लेने वाला स्वयं आत्मा ही होता है । वह अन्न से भरी नाव है जो इस संसार-सरित् को पार करने में समर्थ होती है । स वै लोकोऽवदावदः—पुत्र निन्दा के अयोग्य, स्वर्ग का प्रतीक है । ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन्, नापुत्रस्य लोकोऽस्ति— इत्यादि वाक्य पुत्रके सामाजिक मूल्यकी कल्पना के उदाहरण हैं ।

नारीके लिए पतिव्रत धर्मका पालन परम मंगलमय माना जाता था । शतपथ (२. ५. २.२०) के अनुसार जो स्त्री एक की होती हुई दूसरे के साथ संगति करतीहै वह वरुण्य=पाप करती है— वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति । वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति । (शतपथ १२.७.२.१७) समाज में किसी प्रकार का नैतिक स्खलन या शैथिल्य नहीं पाया जाता था ।

ऐसे नैतिक आदर्शपर चलनेवाले ब्राह्मणकालीन समाजका अवलोकन कर कोई भी विद्वान् उस पर अनैतिकता का आरोप नहीं लगा सकता ।

शांखायन ब्राह्मण

ऋग्वेद का यह दूसरा ब्राह्मण तीस अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक में पाँच से सत्रह तक खण्ड हैं। सब २२६ खण्ड हैं जिनमें लम्बे लम्बे गद्य हैं।

इसमें पैंग्य आचार्यके विरोध में कौषीतकि नाम आचार्य का मत ही मान्य ठहराया गया है। (देखो ८.९, २६.३) कौषीतकि के मत का निर्देश अन्य स्थलों पर भी है। (देखो २५.१५)

विषय की दृष्टि से यह ऐतरेय का ही अनुगामी है। इससे अनेक बातों का परिचय मिलता है—

१— उत्तर के लोगों का संस्कृत-ज्ञान प्रशंसनीय माना गया है। भाषा सीखने के लिए लोग उत्तर के प्रान्तों में जाते थे और लौटने पर आदृत होते थे— उदञ्च एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वै तत आगच्छति तं शुश्रूषन्ते (८.६)।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस कथन का मूल्य बहुत अधिक है। पाणिनि मुनि भी उत्तर के थे। उनका जन्मस्थान शालातुर तक्षशिला के पास था इससे उनका भाषा-ज्ञान विशेष श्लाघनीय था।

२— रुद्र की विशेष महिमा का वर्णन है— रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्(२५.१३)। छठे अध्याय में शिवके भव, पशुपति, उग्र, महादेव, रुद्र, ईशान तथा अशनि नाम दिये गये हैं। इनकी उत्पत्ति और व्रत का भी निर्देश किया गया है।

३— ७म अध्याय में अग्नि को प्रारम्भिक और विष्णु को अन्तिम माना है जैसा कि ऐतरेय में। यहाँ विष्णु का अर्थ यज्ञ है— यज्ञो वै विष्णुः।

४—मनुष्योंसे हिंसित पशुओंके विषयमें कहा है— उस लोक में पशु मनुष्यों को खाते हैं— अमुष्मिन् लोके पशवो मनुष्यानश्नन्ति। इससे सिद्ध है कि मांस-भक्षण के प्रति घृणा की भावना विद्यमान थी।

५— शक्वरी के सम्बन्ध में २३.२ में कहा है— इनके द्वारा इन्द्र वृत्रको मार सका अतः शक्वरी हैं

६— गोत्र का प्रचलन हो चुका था। २५.१५ में कहा है कि स्वगोत्री के साथ रहे—ब्राह्मणो समानगोत्रे वसेत् यन् समाने गोत्रे अन्नाद्यं तस्योपाप्त्यै।

सामवेदीय तांड्य ब्राह्मण

यह ताण्डि शाखा से सम्बद्ध होने से 'ताण्ड्य', पच्चीस अध्याय होने से 'पञ्चविंश, तथा विशाल होने से 'महाब्राह्मण' प्रसिद्ध है। एक दिन से लेकर हजार वर्षोंतक चलनेवाले यज्ञों और उनमें उद्गाता के कार्यों का इसमें वर्णन है। दूसरे-तीसरे अध्याय में त्रिवृत्-पञ्चदश-सप्तदश आदि स्तोमों की विष्टुतियों का, चतुर्थ-पञ्चम में एकवर्षीय गवामयन का, षष्ठ में ज्योतिष्टोम का, सप्तम में प्रातः-माध्यन्दिन सवन और रथन्तर-बृहत्-नौधस-कालेय सामों का, अष्टम-नवम में सायं सवन का, दशम से पञ्चदश तक द्वादशाह का, सोलह से उन्नीस तक एकाह यागों का, बीस से बाईस तक अहीन यागों का, तेईस से पच्चीस तक सत्रों का विशद वर्णन है।

इसमें सोमयाग और सामों का वर्णन मुख्य है। अनेक सामों के नाम उनके द्रष्टा ऋषियों के नाम से हैं जैसे वामदेव्य, द्यौतान, वैखानस, शार्कर आदि। वात्स साम का रोचक आख्यान है। वत्स और मेधातिथि दो काण्व ऋषि थे। पहले को दूसरे ने शूद्रा-पुत्र कहा। दोनों निर्णयार्थ अग्नि के पास पहुंचे। वत्स का रोआँ भी नहीं जला। तभी से वात्स साम क़ामनापूरक होने से 'कामसनि' प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार वीङ्क साम च्यवन का यौवन-दाता बताया है। [१४.६.६, १०]

इसमें विभिन्न आचार्यों के मत का खंडन कर अपने मतको पुष्ट क़िया गया है। व्रात्ययज्ञमें साम गान किस मन्त्र पर हो ? एक मत है—देवो वा द्रविणोदा...पर, दूसरा मत—अदर्शि गातुवित्तम...पर, यहाँ पहले का खंडन और दूसरे का मंडन किया है।

यज्ञ की ही श्रेष्ठता का साधन बताते हुए १८.१.६ में उल्लेख है कि इन्द्रने यज्ञ न करनेवाले यतियों को सियारों के लिए खाने को दे दिया था। लौकिकी समृद्धि पाने के लिए नागों ने भी यज्ञ किया था।

व्रात्ययज्ञ-वर्णन बहुत महत्त्व का है। आचारहीन जनोंके ४ भेद सायण-भाष्यमें बताये हैं। इनके वेश, आचार-विचार, दोष-मुक्ति-यज्ञ और उनमें देय दक्षिणा का रोचक वर्णन अ० १७ में मिलता है।

उष्णीष (पगड़ी), प्रतोद (पैना), फलक-विपथ (खड़खड़ा), कृष्णश वास (काली किनारी धोती), काला-सफेद भेड़-चर्म, रजत-निष्क (चाँदी-सिक्का) लाल किनारी की धोती, उपानह आदि (अ.१७.१)

इसका भौगोलिक क्षेत्र सरस्वती-कुरुक्षेत्र-मंडल निमिषारण्य तक है जो स्वर्ग-समान माना गया है। रोहितकूलीय साम की व्याख्या में भरतों के साथ विश्वामित्र का रोहित(रोहतक) के तट तक विजय तथा विनशन, प्लक्ष प्रास्रवण आदि का उल्लेख है।

षड्विंश ब्राह्मण

यह ताण्डचका २६वाँ अध्याय है जिसमें ५ प्रपाठक हैं। उनमें पाँचवें का नाम 'अद्भुत ब्राह्मण' है, क्योंकि इसमें विचित्र बातें हैं, जैसे भूकम्प-अकाल में फल-फूल होने, अश्वतरी के गर्भ, हथिनीके डूबने आदि उत्पातों की शान्ति का विधान है। आरम्भमें ही 'सुब्रह्मण्या' की व्याख्या है। ऋत्विज लाल धोती-पगड़ी पहनते थे— लोहितोष्णीषा लोहितवाससो निवीता ऋत्विजः प्रचरन्ति (३.८.२२)। सन्ध्या का समय दिन-रात-सन्धि बताया है—तस्माद् ब्राह्मणो अहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। (४.५.५)

आर्षेय ब्राह्मण

इसमें ३ प्रपाठक हैं जिनमें साम-गायक ऋषियोंके नाम-संकेत दिये हैं तथा मन्त्र और गान में भेद बताया है। यह साम-गान में सहायक है।

दैवत ब्राह्मण

इसमें केवल ३ खण्ड हैं जिनमें सामवेद के देवताओं-अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, सोम, वरुण, पूषा, सरस्वती, त्वष्टा, अङ्गिरस का और छन्द-निरुक्ति का प्रतिपादन है। इनमेंसे कुछ निरुक्तियाँ यास्क ने अपने निरुक्त में ली हैं। 'गायत्री' की स्तुति अर्थ की 'गै' धातु से बने गायत्र(ब्रह्मा)से उत्पन्न बताया है। ये निर्वचन भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे बड़े उपयोगी हैं। दूसरे खंडमें छन्दोंके देवता और वर्णों का वर्णन है।

मन्त्र उपनिषद् ब्राह्मण

इसमें दस प्रपाठक हैं—दो में ब्राह्मण और ८ में छान्दोग्य उपनिषद्। इसे श्री सत्यव्रत सामश्रमी ने कलकत्ता से प्रकाशित किया है। संस्कारों में प्रयुक्त मन्त्रोंका यह सुन्दर संग्रह है जिनका निर्देश गोभिल गृह्य सूत्र में है। शंकराचार्य ने वेदान्त-भाष्य में इस के उद्धरण देतेसमय इसे तांडचशाखा का बताया—

ताण्डिनां मन्त्रसमाम्नायः—देव सवितः ...

अस्ति ताण्डिनां श्रुतिः— अश्व इव रोमाणि....

ताण्डिनामुपनिषदि—स आत्मा तत्त्वमसि।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण

यह बहुत ही छोटा है, केवल पाँच खंड हैं, साम वेदके गायन से उत्पन्न प्रभाव का तथा साम और साम-योनि मन्त्रों के सम्बन्ध का इसमें वर्णन है। यह कभी बहुत ही प्रसिद्ध था। निरुक्त में—विद्या ह वै... आदि मन्त्र इसी का है। इसी का अनुवाद मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में है। इससे स्पष्ट है कि यह निरुक्त और मनुस्मृति से प्राचीन है।

वंश और साम विधान

वंश ब्राह्मण में सामवेद के आचार्यों के वंशों का परिचय है। यह इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। सामविधान नितान्त नवीन, असम्भव, कल्पित अभिचार, जादू-टोना, तान्त्रिक प्रायश्चित्तोंसे भरा पड़ा है। इसमें ब्राह्मणके लक्षण नहीं मिलते। इस में शत्रु को भगाने के लिए चिता-भस्म-प्रयोग और उसकी आटे की मूर्ति के गले तथा अङ्गों को काट कर आग में डालने आदि का विधान अवैदिक है।

जैमिनीय उपनिषद्

जैमिनि शाखा का यह ब्राह्मण महत्त्वशाली है। इसे डा० रघुवीर ने नागपुर से प्रकाशित किया था। जैमिनीय उपनिषद् गायत्र्युपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

—❋—

शुन:शेप का आख्यान, वेद में नरबलि नहीं

यद्यपि १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में कुछ यूरोपीय पादरियों ने भारत आकर संस्कृत भाषा और साहित्य को जानने का प्रयत्न किया तथापि वेदों के सम्बन्ध में कार्य १९ वीं शताब्दी से आरम्भ हुआ।

इससे पूर्व पादरी राबर्टो डि नाबिली ने नकली यजुर्वेद बनाकर भारतीयों और पाश्चात्यों को खूब ठगा। पादरी कालगेट ने वेद को जानने में अपनी शक्ति लगायी और हेनरी टामस कोलब्रुक ने वेदों पर ट्रैक्ट लिखकर वेदाध्ययन आरम्भ किया।

गत दो सौ वर्षों में सौ से अधिक पाश्चात्य जनों ने वेदों पर परिश्रम किया है जिनमें लगभग बीस ने तो पूरा ही जीवन अर्पण कर दिया।

इनमें अधिकांश ने वेदों की निन्दा ही की जिस का आधार उन्हें सायण, महीधर, उवट आदि के भाष्य मिल गये। फिर क्या था, निश्चिन्तता से वेदों पर आक्षेप किये जाने लगे।

यूगेन बरनूफ पैरिस में कालेज-डि-फ्रांस में वेद के प्रोफेसर थे। उनके शिष्यों में मैक्समूलर, राथ, गोल्डस्टकर आदि ने वेदों पर बड़ा तीक्ष्ण आक्रमण किया। विलसन, म्यूर, मेकडानल्ड, वेबर, ग्रिफिथ आदि ने भी वेदों पर बहुत चोट की।

मैक्समूलर महर्षि दयानन्द के समकालीन थे। इन्होंने सायणके आधार पर पशुओं और मनुष्यों का भी बलिदान माना और यहाँ तक कहा कि वेदों में अधिकतर बच्चों कैसे विचार हैं।

महर्षि कृत ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका को पढ़कर उनके अन्तिम काल के विचारों में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था अतः उनकी अन्तिम रचनाओं में वेदों के प्रशंसक उद्‌गार भी मिलते हैं।

नर-बलि की चर्चा बायबिल और कुरान में पायी जाती है। ईसाई विद्वानों ने वेदोंमें भी इसे मानना चाहा। ऐतरेय में शुनःशेप के इतिहास को देख कर उन्होंने भारतको भी नरबलि-देनेवाला जंगली सिद्ध करने का यत्न किया। निम्न लिखित विद्वानों के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि इस विषय में इन्होंने वेदों पर कैसा तीक्ष्ण प्रहार किया है—

१. विलसन (ऋग्वेद प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६०)
२. मोनियर विलियम्स(इंडियन विज्‌डम पृ.२८)
३. म्यूर (ओरि. सं. टेक्स्ट खंड १ पृष्ठ ४०३-७)
४. मैक्समूलर (संस्कृत लिटरेचर)
५. हार्डविक (क्राइस्ट ऐंड अदर मास्टर)
६. मैकडोनल्ड (वैदिक रिलीजन पृ. ४३,८८-९०)
७. मारिस फिलिप्स (टीचिंग्स आफ़ दि वेदाज़ रिलीजन आफ़ इंडिया आदि)
८. रोसेन ९. गोल्डस्टुकर १०. रोथ ११. हम्बोल्ट १२. वेस्टर गार्ड १३. हौग १४. वेबर १५. बार्थ

शुनःशेप-कथा का आधार ऋ. १.२४.१२,१३ और पाँचवें मंडल के दूसरे सूक्त का मन्त्र ७—ये ३ मन्त्र (पृष्ठ १४५,१४९) बताये जाते हैं। सत्य अर्थ न समझने के कारण ही यह भ्रान्ति हुई है। कुछ अन्तर के साथ यह कथा वाल्मीकि रामायण बाल कांड इकसठ-बासठ अध्याय, महाभारत; श्रीमद् भागवत स्कन्ध९ अध्याय ७ में भी आयी है। संकेत रूपमें मनुस्मृति (दशम अध्यायका एक सौ पाँचवाँ श्लोक), विष्णु पुराण, निरुक्त (३.४) तथा श्री शंकराचार्य के वेदान्त-भाष्य में उद्‌धृत है। किन्तु मुख्य आधार ऐतरेय, पञ्चिका ७, अध्याय ३ (पृष्ठ १४३ से १५० तक)है जिससे नरबलि सिद्ध करते हैं।

भारत के श्री राजेन्द्रलाल मित्र ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए अपने इण्डो-आर्यन्स नामक ग्रन्थ के ह्यूमन सैक्रीफाइस शीर्षक अध्याय में लिखा है—

यदि मैं कह सकता कि वेद के अनुसार मनुष्य का बलिदान नहीं होता था तो अति प्रसन्न होता, किन्तु क्या करूँ, इतिहास के विपरीत ऐसा नहीं कह सकता।

कह कैसे सकते ? जब पाश्चात्यों के दास बन

गये तो सत्य रहस्य कैसे प्रकट कर पाते ?

❀ पाश्चात्य विद्वानों के हेत्वाभास ❀

१. यदि इसे रूपक मानें तो कथा फीकी पढ़ जायगी।

२. यदि यह बात भयंकर न मानें तो कथा का कुछ अर्थ नहीं रहता।

३. यदि पुत्र-वध का संकल्प न होता तो पिता के द्वारा उसका टालना व्यर्थ था और यूप में बाँध कर उसे छोड़ क्यों नहीं दिया ?

४. रोहित का पिताके घर से भागना और सौ गायें देकर शुनःशेप क मोल लेना बताता है कि उसका वध अवश्य किया जाना था।

पाश्चात्यों का समाधान

१. रूपक अलङ्कार के मानने से कथा फींकी नहीं पड़ती, प्रत्युत और अधिक चमत्कारपूर्ण तथा मनोरंजक हो जाती है।

२. यह कथा वेद-मन्त्र के आधार पर लिखी गयी है अतः इसको वेदानुकूल ही होना चाहिए। जिन ३ ऋचाओं में शुनःशेप शब्द आया है वहाँ कहीं नर-मेध का वर्णन नहीं, अतः इस कथा में भी उसका वर्णन नहीं होना चाहिए। अब जो वर्णन मिलता है उसका भाव अवश्य आलङ्कारिक होना चाहिए अतः इस कथा में नर-बलि-रूपी भयङ्कर बात न मानने पर भी कथा का अभिप्रात सार्थक है।

३ वरुण के लिए पुत्रकी बलि देने का अभिप्राय पुत्र को ईश्वर, धर्म, विद्या-प्रचार के लिए और मेघ जल का समुद्र के लिए अर्पण करना है, पुत्र-वध नहीं। टालने से अभिप्राय उसके परिपक्व होने की प्रतीक्षा है। यह बताना भी है किमनुष्य अपना शुभ सङ्कल्प स्वार्थ में फँस कर भूल जाता है। विचारणीय यह है कि हरिश्चन्द्र ऐसे पुत्र से क्यों सन्तुष्ट हो और उसके लिए देवाराधन क्यों करे जिसे जन्म लेते ही देवता के लिए मारना पड़े। ऐसे पुत्रसे क्या लाभ था ? अतः पुत्र की बलि का अर्थ उसका वध नहीं प्रत्युत उसे शुभ कर्मों में नियुक्त करना है।

४. रोहित के घर से भागने का अभिप्राय यह है कि परिपक्वता केलिए संचरण आवश्यक है। यह भी बताना है कि जब मनुष्य प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता तो उसे मिली हुई वस्तु से भी संचित होना पड़ता है। रोहित (बल, रक्त, क्षात्रधर्म, मेघ) का संचरण —चलता रहना आवश्यक है। बालक को कम से कम ६ वर्ष की आयु तक भ्रमण अवश्यक है पुस्तकों का बोझ उसपर लादना उचित नहीं।

कथा–सम्बन्धी मत

❀ यास्काचार्य निरुक्त (३.४) में ❀

स्त्रीणां दान-विक्रयातिसर्गा विद्यन्ते न पुंसः।
पुंसोऽपीत्येके शौनःशेपे दर्शनात्।

अर्थात् स्त्री का दान-विक्रय-त्याग होता है, पुरुष का नहीं। काई कहते हैं कि ये पुरुष के भी होते हैं जैसा कि शुनःशेप की कथा में दिखाया है

यहाँ यास्क ने ऐतरेय की ओर संकेत किया है, ऋग्वेद की ओर नहीं। दान उत्तरदायित्व सौंपना है जैसे कन्यादान। विक्रय आवश्यक वस्तुएँ लेना और त्याग स्वपदार्थ को छोड़ना है,जैसे भूखे अजीगर्त ने किया। इनका वेद-मन्त्रों में वर्णन नहीं।

महर्षि मनुने (मनुस्मृति अ. दस श्लोक १०५ में) लिखा है—

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद् बुभुक्षितः।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीककारमाचरन्॥

श्री शङ्कराचार्य ने इस श्लोक को वेदान्त-भाष्य में उद्धृत किया है। भूखा अजीगर्त पुत्र को बलि (ज्ञानार्थ त्याग) के लिए तैयार हुआ। भूख का उपाय करते हुए वह पाप से लिप्त नहीं हुआ (चोरी आदि नहीं की। यह आपद्धर्म बताया कि अकाल में चाहे पुत्र त्यागना पड़े किन्तु पाप न करे। यह ऐतरेय की कल्पित कथा को ध्यान में रखकर कहा, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह सत्य घटना है।

श्री रमेशचन्द्र दत्त ऋग्वेद १।२४ की टिप्पणी में लिखते हैं—

...किन्तु ऐतरेय, रामायण, भागवत मनुस्मृति, विष्णुपुराण—ये सब ऋग्वेद के बहुत पश्चात् बने हैं।...ऋग्वेद के किसी स्थान में नरबलि का स्पष्ट उल्लेख नहीं। इस चौबीसवें सूक्तमें शुनःशेपके बलि

देने की कोई स्पष्ट कथा नहीं है। अतएव रोसेन विवेचना करते हैं कि ऋग्वेद-रचना के समय नर-बलि-प्रथा नहीं थी।...ऋग्वेद के समय नरबलि-प्रथा थी-यह हमें ज्ञात नहीं होता। क्योंकि जिस ग्रन्थ में सोम-घृत-अभिषव की कथा सहस्रों वार आयी है उसमें यदि यह उस समय प्रचलित होती तो इसका विशेष उल्लेख क्यों नहीं है?

मैक्समूलर यद्यपि वैदिक समय में नरबलि होने के समर्थनमें सर्वथा सन्देहयुक्त हैं तथापि ऐतरेय के आधार पर उन्होंने प्राचीन आर्यों को जंगली सिद्ध किया है।

मोरिस फिलिप्स ने बड़ी क्रूर दृष्टि से वेदों की आलोचना की है तथापि अपने 'दि टीचिंग्स आफ़ दि वेदाज़' में पृष्ठ संख्या २०० पर लिखा है कि वेद में यद्यपि नरमेध का मानना कदाचित् उचित न होगा और इसे अलङ्कार माना जा सकता है, किन्तु ऐतरेय नरमेध की सभी बातें प्रस्तुत करता है।

अब इनसे प्रश्न यह है कि यदि ऋग्वेद में आलङ्कारिक वर्णन है तो उसके ब्राह्मण ऐतरेय में क्यों नहीं? क्या आपकी समझ में न आने से, अथवा आपके पक्षपात और हठपूर्वक नरबलि सिद्ध करने के आग्रह-पूर्ण दृष्टिकोण से? वस्तुतः ऐतरेयकी कथा भी आलंकारिक आख्यान है; वास्तविक घटना नहीं।

❀ भ्रम में पड़ने के कारण ❀

१: वेद के अर्थों को ठीक से न समझना।
२. ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का आशय न समझना।
३. भारतकी जंगली जातियोंमें नरबलिका पाया जाना।
४. तान्त्रिक ग्रन्थों में नर-बलि का वर्णन।
५. वेद-विरोधियों का पक्षपात, हठ और दुराग्रह।
६. महीधर आदि तान्त्रिक भाष्यकारों के भाष्य।

वरुण का पाश क्या है?

ऋग्वेद १.२४ १५ में वरुण के पाश का वर्णन है। (पृष्ठ १४५) यह यजुर्वेद अ. बारह का बारहवाँ मन्त्र भी है। वरुण का पाश परमात्मा के न्याय का बन्धन है। यह किसीको बाँधने के लिए रस्सी का जाल नहीं। उत्तम, मध्यम, अधम पाश आत्मा, मन, शरीर के दुःख तथा आत्मिक,दैविक,भौतिक ताप, ये ही यूप हैं।

अथर्व वेद ४.१६.६ में ११ पाशों का वर्णन है—

ये ते पाशा वरुण सप्त सप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तम्
यः सत्यवादी अति तं सृजन्तु ॥

हे वरुण, आपके जो उत्तम-मध्यम-अधम भेद से ३ प्रकार के और फिर पाँच ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि —ये ×७ प्रकारके = इक्कीस हिंसक पाशहैं वे असत्यवादी को छिन्न-भिन्न करें और सत्यवादी को मुक्त करें।

इसी आधार पर शतपथ और कात्यायन श्रौतसूत्रके विनियोग को देखनेसे विदित होगा कि किस प्रकार इस का नाटक दिखाया है। यज्ञकर्ता अपने गले में इक्कीस दाने का आभूषण और ६ रस्सियोंका शिक्यपाश धारण करता है। ५ ज्ञानेन्द्रियाँ और १ अन्तःकरण— ये ६ रस्सियाँ हैं। उदुत्तमम्...मन्त्र पढ़कर गलेसे दोनों पाश निकाल दिये जाते हैं। क्या यहाँ भी यजमान का वध करने के लिए ऋत्विज उपस्थित है? यदि नहीं तो शुनःशेप के पाश भी वध के लिए नहीं माने जा सकते।

विवाह संस्कार में भी वरुण-पाश का वर्णन है—

प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्
येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवः।

कहीं पर वधूकी कमर में एक डोरी बाँध दी जाती है और कहीं पर उसके बालों को कई डोरों से बाँधा जाता है। फिर पति इस मन्त्र को पढ़कर उन्हें खोलता है। संस्कारविधि के अनुसार वह एकान्त में जाकर वधू के बँधे हुए केशों को खोलता है। वह कहता है—

मैं तुझे वरुणके उस पाशसे छुड़ाता हूं जिससे सविता ने तुझे बाँधा था।

यहाँ पर परमात्मा ने वधू का वध करने के लिए उसे वरुण के पाश से नहीं बाँधा था जिससे पति उसे छुड़ाए। किन्तु अभिप्राय यह है कि कौमार्य अवस्था में पिता के घर में जो बन्धन थे उनसे वधू को वर छुड़ाता है।

वृष्टि-विज्ञान में वरुण जल का अधिपति, पृथ्वी और आकाश का समुद्र तथा आक्सीजन है और उसके पाश जल-बन्धन अनेक तरह के मेघ हैं। उनमें बँधा जल उन्हें छिन्न-भिन्न कर देता है तब वे मुक्त हो कर बरसने लगते हैं।

शुनःशेप-कथा का रहस्य, ४ अर्थों का बोधक चित्र

ऐतरेय ब्राह्मण ने वेदके भाव को अलङ्काररूप में नाटक के समान दिखलाया है। रहस्य समझने के लिए कथा में आये शब्दों को यौगिक तथा पारिभाषिक मानकर उनका अर्थ व्याकरण, निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार समझ लेना आवश्यक है —

शब्द	आध्यात्मिक अर्थ (ईश्वरीय)	शरीरविज्ञान	राजनीति-विज्ञान	भौतिक वृष्टि-विज्ञान
१. हरिश्चन्द्र	सूर्य-चन्द्र गुणयुक्त जीव	तेजस्वी शरीर	प्रतापी सौम्य राजा	सूर्य-चन्द्र से उत्पन्न मरुद्गण
२. पर्वत-नारद	तर्क-वितर्क	वैद्य-चिकित्सक	परामर्शदाता	जल-प्रदाता विद्वान्
३. सौ पत्नियां	सौ वर्ष की आयु	...	प्रजा के सैकड़ों मनुष्य	सैकड़ों जल-धाराएँ
४. पुत्र	शुभ कर्म	दुःख-रक्षक बल	प्रजा-रक्षक शक्ति	दुःख-रक्षक वर्षक मेघ
५ वरुण	परमात्मा, आचार्य	कर्माधिपति ईश्वर	जलसेनापति, न्यायाधीश	जलस्वामी समुद्र, आक्सीजन
६. रोहित	वृद्धि-कारक बल	लाल रक्त	क्षात्र धर्म	ऊर्ध्वमुखी अवर्षक लाल मेघ
७. उदर-रोग	स्वार्थ	जलोदर, पेट का विकार	धन-सञ्चय, कर-वृद्धि	जल का संचय
८. अजीगर्त	सदा नवीन तृष्णा	अजीर्ण रोग	भूखी, गड्ढेमें गिरी जनता	अधोमुखी बरसाऊ मेघ
९. शुनःशेप	मध्यम प्राण, अल्पज्ञ जीव	निन्द्य भोग	साधारण मध्यम वर्ग	पृथ्वीको आनेवाली सीधी वायु
१०. गौएँ	वेद-वाणियाँ	इन्द्रियाँ सूर्य की किरणें	गौएँ आदि पशु, भूमि	सूर्य की किरणें
११. पाश	बन्धन-	काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-चिन्ता	पराधीनता दासता	आकाश में रुके मेघ
१२. यज्ञ	योग, समाधि	हवन, प्रकृति-चिकित्सा	युद्ध-यज्ञ, सभा समिति	वर्षा-यज्ञ जल की प्राप्ति
१३. वलि	समर्पण	त्याग, अन्न	देश पर वलिदान	जनता के लिए जल-अर्पण
१४. ऋत्विज विश्वामित्र	ईश्वर, सौषुम्न प्राण	आँख	सबका मित्र अर्थ-मन्त्री	सृष्टि का मध्य प्राण, होता
१५. ,, जमदग्नि	वेद-ज्ञान,	कान इळा में प्राण	गृह-रक्षा-मन्त्री	आग्नेय जठराग्नि, अध्वर्यु
१६. ,, वसिष्ठ	मन	घ्राण पिंगला में सौम्य उदान	प्रधानमन्त्री गुप्तचर विभाग	हाइड्रोजन उदान ब्रह्मा
१७. ,, अयास्य	मुख	नाभि-मध्यगत समान प्राण	कर-गृहीता गृह-विभाग	सृष्टि का प्राण उद्गाता
१८. प्रजापति	परमात्मा यज्ञ,	इन्द्रिय-स्वामी मन	राष्ट्र-पति	यज्ञ वायु
१९. अग्नि	मुख जिह्वा	शरीर का ताप जठराग्नि	नेता राज्यपाल संसद्-अध्यक्ष	अग्नि-तत्त्व
२०. सविता	प्रेरक विद्वान्	नेत्र प्रेरक अहंकार	विद्वान् आचार्य	सूर्य
२१ विश्वेदेवाः	समस्त दिव्य गुण	सब इन्द्रियाँ	सब विद्वान् सदस्य	सब प्राकृतिक शक्तियाँ
२२. इन्द्र	मन	जीवात्मा	न्यायाधीश	विद्युत्
२३. अश्विद्वय	अध्यापक-उपदेशक	प्राण-अपान	सभापति-सेनापति	हाइड्रोजन-आक्सीजन
२४. उषा	बुद्धि	उषाकाल	सभा-समिति	उषा तथा आगे मध्याह्न काल

❀ ब्राह्मणवर्णित शुनःशेप नाटक से शिक्षाएँ ❀

राजसूय यज्ञमें यह नाटक करना पड़ता है। इस से अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं—

१. पापी बद्ध होता है और शुभकर्मोंसे मुक्त होता है।
२. वरुण के समान मनुष्य बार बार प्रेरणा करे।
३. ईश्वरका न्याय टालनेवाले को भी नहीं छोड़ता।
४. निन्दित नामोंका भी मनुष्य पर प्रभाव होता है।
५. बृहदारण्यक में मध्यम प्राण को शिशु बताया है— अयं वाव शिशुः योऽयं मध्यमः प्राणः। इसे वश में करने से आत्मा को शान्ति मिलती है।
६. बालकों को ६ वर्षोंतक स्वतन्त्र रखकर फिर कड़े अनुशासन में रखकर विद्या पढ़ानी चाहिए।

शुनःशेप एकांकी नाटक के ४ दृश्य

ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के सिद्धान्त को काल्पनिक नाटक के रूप में मनोरजक बनाकर प्रस्तुत करते हैं — यह पहले लिखा जा चुका है। प्रस्तुत शुनःशेप नाटज के ४ दृश्यों का सार निम्न प्रकार है—

प्रथम दृश्य– मिथ्याभाषी हरिश्चन्द्र पर वरुण का न्यायपाश गिरता है, वह उदररोग से पीड़ित हो ईश्वरीय दण्ड भोगता है। पुत्र रोहित जंगलमें भागता है।

द्वितीय दृश्य– रोहित के स्थानपर शुनःशेपकी दर्शक टकटकी लगाकर देख रहे हैं। उसका पिता अनुशासन में रखता चाहता है। सब आश्चर्यचकित हैं, किन्तु पापी शुनःशेप अन्तःकरण से ईश्वर के निकट पहुंचता है और पश्चात्ताप करता है। धीरे-धीरे एकएक करके उसके तीनों पाश टूट टूट कर गिरने लगते हैं। वह मुक्त हो जाता है।

तृतीय दृश्य–अब शुनःशेप विश्वमित्र का पुत्र बनकर बड़े ऋषियों के साथ यज्ञ करवाता है।

इससे बढ़कर और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है?

चतुर्थ दृश्य– दण्ड भोगने के पश्चात् हरिश्चन्द्र रोग मुक्त हो सुखी हो जाता है।

कैसा सुन्दर, आदर्श वैदिक सिद्धान्तों का पोषक, अनेक रसों से परिपूर्ण, शिक्षाप्रद नाटक है।

कथा के ४ भाव

❀ १. आध्यात्मिक भाव ❀

जीवात्मा सौ वर्ष की आयु नियत होने पर भी जब शुभ कर्म नहीं कर पाता, तो तर्क वितर्क करता है। उस समय उसकी प्रार्थना पर परमात्मा उसे शारीरिक बल देता है, किन्तु वह उसे ईश्वर-भक्ति में न लगाकर स्वार्थ में फँस जाता है। शारीरिक बल की रक्षा करते हुए, वह भोग-विलास में मग्न विषयग्रस्त मध्यम प्राण को इन्द्रियों की सहायता से वेदमन्त्रों के द्वारा, परमेश्वर के लिए समर्पित करने को प्रस्तुत होता है। मध्यम प्राण इन्द्रियों, मन, जीवात्मा और अन्त में बुद्धिका आश्रय लेकर समस्त दिव्य गुणों के साथ, परमेश्वर की शरण में जाकर सफलता प्राप्त करता है और साधकजीवात्मा का शारीरिक बल परमेश्वर की प्राप्ति में सहायक होता है। वह समस्त रोगों तथा दुःखों से मुक्त हो जाता है।

❀ २. शरीर-सम्बन्धी भाव ❀

१०० वर्ष की नियत आयु वाला तेजस्वी, कान्तियुक्त शरीर भी दुःख-निवारक बल के अभाव में ईश्वर की भक्तिके लिए नवीन रक्त प्राप्त करके भी जब उसका सदुपयोग नहीं करता, तब जलोदर आदि पेट के विकारों से ग्रस्त हो जाता है। अपने शुद्ध रक्त की रक्षा के लिए वह सूर्य-किरणों का आश्रय लेकर, अजीर्ण रोग से उत्पन्न विषय भोगेच्छा को त्याग देता है और इन्द्रियों को वश में रखकर यज्ञ, सूर्य, जल, विद्युत्, प्राणायाम, उषाकाल तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियों की सहायता से जठराग्नि को ठीक (सम) रखते हुए वह परमेश्वर की भक्ति में सहायक होता है।

❀ ३. राजनीति-विज्ञान सम्बन्धी भाव ❀

प्रतापी और सौम्य राजा सैकड़ों मनुष्यों का पति होकर भी प्रजारक्षक शक्ति (क्षात्रधर्म) के अभावमें दुःखी होकर परामर्शदाताओं से परामर्श लेकर परमेश्वर की कृपा से शक्ति प्राप्त करता है, किन्तु फिर उस शक्तिको परमेश्वर के आदेशों का पालन करनेमें न लगाकर करवृद्धि द्वारा धनसंचय आदि में मग्न हो जाता है। किन्तु उसे जब ध्यान दिलाया जाता है तो वह भूख-प्यास से पीड़ित मध्यवर्ग की जनता को गौओं आदि धनका लालच देकर युद्ध आदि में अत्याचार पूर्वक नियुक्त करता है और उसमें अपने समस्त विभागों की सहायता लेता है। उत्पीड़ित जनता अपने राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, आचार्य,न्यायाधीश,सभापति,सेनापति आदि से प्रार्थना कर अन्त में सभा-समिति की सहायता से उत्पीड़न से मुक्त होती है, स्वयमेव परमेश्वर की आराधना में तत्पर होती है,और राजा भी संतापों चिन्ताओं, स्वार्थ से रहित होकर सुखी होता है।

❈ ४. भौतिक वैज्ञानिक भाव ❈

हरिश्चन्द्र (सूर्यचन्द्र से क्रियाशील) मरुद्गण(वायु-समूह) सैकड़ों सूक्ष्म जलधाराओं के होने पर भी पुत्र (वर्षक मेघ)को नहीं पाता। नारद(जलदाता विद्वान्) के बताये उपाय से वह वरुण (जल के स्वामी समुद्र) से रोहित(लाल रंग के अपक्व, अवर्षक ऊर्ध्वमुखी मेघ) को प्राप्त करता है। रोहित बादल अपरिपक्व होने से बरस कर वरुण (समुद्र) के अर्पित न हो सका, इधर-उधर आन्तरिक्ष के जलरूपी वन में भागता रहा, मरुद्गण को जलोदर हो गया [अर्थात् जल उसके अन्दर ही जमा हो गया]। इन्द्र [अन्तरिक्ष विद्युत्] रोहित मेघ को बरसने से रोकता है। रोहित मेघ अपने बदले अजीगर्त [बरसाऊ अति नीचे झुके अजगर के समान अधोमुखी] मेघ के ३ पुत्रों [वायु की तीन गतियों] में शुनोलांगूल [वायु की ऊपर की गति] शुनःशेप [वायु की मध्य में स्पर्शवाली गति] शुनोपुच्छ [वायु की नीचे के स्तर में गति] इनमें से शुनःशेप को बलि [बरसने] के लिए वेदि[वर्षण परिस्थितियों] में प्रयुक्त करता है और उसके साथ वरुण [समुद्र] से मिल जाता है। इस वृष्टि के ४ ऋत्विज हैं—

विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ और अयास्य। चारों अन्तरिक्षस्थ प्राण हैं।

शतपथ में ७.२.१.५ में प्राणा ऋषयः कहा है। ये ऋषि शरीर तथा सृष्टि के भी प्राण हैं।

शुनःशेप (मध्यस्थ वायु) ने प्रजापति, अग्नि,सविता वरुण, विश्वेदेवाः, इन्द्र,अश्वि (हाइड्रोजन-आक्सीजन) और उषा की शक्तियों का सम्पर्क कर मोक्ष (जल वर्षण से छुटकारा) पाया और विश्वामित्र (मध्यस्थ प्राण) की गोद में आश्रय लिया। उसके ५० पुत्रों (शक्तियों)को भाई (साथी)बनाया। अजीगर्त मेघ से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया।

यजुर्वेद में नरबलि

कुछ पाश्चात्यों ने यजुर्वेद के पुरुषमेध प्रकरण में पुरुषों की बलि दी जानी सिद्ध करने का दुःसाहस किया है। उनका आधार वाममार्गी महीधर और उवट का भाष्य है। सर्वमेध प्रकरण में जहाँ समस्त प्रकार के पशुओं, पक्षियों आदि का वर्णन करके विभिन्न विरूप मनुष्योंकी प्रदर्शनी का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है वहाँ 'आलम्भन' शब्द (अच्छे प्रकार प्राप्त करना) का अनर्थ (बलिदान) करके तान्त्रिक महीधर ने भयंकर बीभत्स कसाईखाने का दृश्य उपस्थित कर दिया,जिसमें पशुओंके साथ साथ उन बेचारे कुरूप मनुष्यों के बलिदान की भी व्यवस्था करने में उसे संकोच न हुआ। मन्त्र का भाव यह है कि राजा बहुत छोटे (बौने); बहुत लम्बे, बहुत गोरे, बहुत काले बहुत बाल वाले आदि विचित्र आकार-प्रकार के नरों का लभन(अच्छा उपयोग)करे किन्तु वाममार्गियों तथा तदनुवर्ती पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थ किया कि उनका वध करे। [यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र २२]

यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय [पुरुषाध्याय] तथा ऋ. के पुरुषसूक्त [१०.९०]के पन्द्रहवें मन्त्रमें देवों[प्राणों-इन्द्रियां] के यज्ञ [आध्यात्मिक उपासना] का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया गया है, इसमें भी पाश्चात्य विद्वानों को नरबलि की गन्ध आती है—

सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन् पुरुषम् पशुम्॥

अर्थ— इस आध्यात्मिक यज्ञ की गायत्री आदि ७ प्रकार के छन्द ७ परिधियाँ हैं और इक्कीस समिधाएं बनायी जाती हैं[प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पांच-पांच सूक्ष्म भूत, स्थूल भूत, ज्ञानेन्द्रियाँ,सत्त्व, रजस्, तमस्] जब यज्ञ का विस्तार करते हुए देवों [प्राणों-इन्द्रियों] ने द्रष्टा परमात्मा को हृदय में धारण किया।

इस मन्त्र के अन्तिम अंश का 'पशु के समान पुरुष को वधके लिए बांधा' अर्थ करने का हास्यास्पद प्रयत्न किया गया है, जो किसी प्रकार भी प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में किसी देव के आगे नर बलि दिये जाने का कहीं भी वर्णन नहीं है। जहाँ कहीं नरमेध शब्द है, वहाँ उनका अभिप्राय (१) परमेश्वर के बताये नियमों के पालनार्थ मनुष्य का आत्मसमर्पण, (२) दुष्टों के विरुद्ध युद्ध करने में मनुष्यों का आत्मत्याग और[३]जब मनुष्य मर जाये, तब उसके शरीर का विधि पूर्वक दाह कर अन्त्येष्टि संस्कार करना आदि ही है।

—❈—

ओ३म्

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

❀ भूमिका ❀

ऋग्वेद के २ ब्राह्मण ग्रन्थ मिलते हैं—१. ऐतरेय और २ सांख्यायन [कौषीतकि]। इनमें ऐतरेय मुख्य है। इसके रचयिता श्री महीदास ऐतरेय हैं। सायण ने अपने भाष्य में इन्हें इतरा शूद्राका पुत्र बताया है। पारसियों के अवेस्ता में 'एथ्रेय' का अर्थ ऋत्विज् है। दोनों शब्दों में समानता है।

ऐतरेयकी शैली ब्राह्मणग्रन्थोचित है। इसकी रचना में समानता है। आश्वलायन की तर्पण-विधिमें किसी महैतरेय ग्रन्थके नाम का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इस समय वह कहीं नहीं मिलता।

ऐतरेय में ४० अध्याय हैं, ५ अध्यायों की पंचिका होती है। प्रत्येक अध्याय में अनेक कण्डिका या खण्ड हैं। पूरे ऐतरेयमें ४० अध्याय, ८ पञ्चिका तथा २८५ कण्डिकाएँ हैं। ऐतरेय में यज्ञ के ऋग्वेदी 'होता' के कार्यों का वर्णन है। प्रथम २ पञ्चिकाओं में समस्त सोमयागों की प्रकृति 'अग्निष्टोम' का वर्णन है। ३य, ४र्थ में प्रातः, माध्यन्दिन, सायं सवनों में बोले जाने वाले शस्त्रों [मन्त्रों] का, और उक्थ्य, अतिरात्र, षोडशी नामक यागों का विवेचन है। ५म में द्वादशाह यागों का तथा षष्ठ में कई सप्ताहों तक चलनेवाले सोमयागों में होता और उसके सहायकों के कार्यों का वर्णन है। सप्तम का विषय राजसूय है जिसमें शुनःशेप का आख्यान दिया है। अष्टम पञ्चिका में इन्द्र के और चक्रवर्ती राजाओं के महाभिषेक का बड़ा ही रोचक वर्णन है। अन्तिम अध्याय में पुरोहित के महत्त्व का प्रतिपादन धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से नितान्त उपादेय है।

❀ ऐतरेय का महत्त्व ❀

धार्मिक दृष्टि से ऐतरेय की आलोचना हमें अनेक नवीन तथा प्रामाणिक तथ्यों का ज्ञान कराती हैं। इसका अनुशीलन हमें बतलाता है कि इसके युग में किस प्रकार विष्णु देवता की महिमा वैदिक समाज में विशेष स्थान कर रही थी। परन्तु शुनःशेप के आख्यान के कारण यह ऐतरेय वैदिक ग्रन्थों में चिर स्मरणीय रहेगा। शुनःशेप ऋग्वेद के ऋषि हैं तथा प्रथम मण्डल के अनेक सूक्तों (२४–३०) के द्रष्टा हैं। यह आख्यान साहित्यिक दृष्टि से भी पठनीय है। राजा हरिश्चन्द्र वरुण-कृपा से प्राप्त पुत्र को उन्हें ही समर्पित करना चाहता है। समय आने पर यह पुत्र रोहित वन में चला जाता है और पिता उदर-व्याधि का शिकार हो जाता है। पिता के रोग का समाचार पाकर रोहित वनसे घर लौटता हुआ अजीगर्त सौयवसि से उसके मध्यम पुत्र शुनःशेप को गायों की दक्षिणा देकर ले लेता है। वरुण के यज्ञ में अजीगर्त अपने पुत्रको देने के लिए तैयार हो जाता है, परन्तु देवताओंकी प्रार्थना द्वारा बच जाता है और विश्वामित्र उसे अपना पोष्य पुत्र बना लेते हैं। उनके जिन ५० पुत्रों को यह सहन नहीं होता उन्हे पिता के शाप से देश की प्रान्त भूमि में म्लेच्छ के रूपमें रहना पड़ता है।

ऐतरेय के कथनानुसार यह आख्यान १०० ऋचाओं पर आश्रित है [ऋक्शतगाथं शौनःशेपमाख्यानम्] किन्तु वस्तुतः ये ऋचाएं ९७ ही हैं जिनमें मनुष्य का इतिहास भी नहीं है। जर्मन विद्वान् हिलोब्रान्ट इसमें नर-बलि की प्रथा को वास्तविक मानते हैं परन्तु डा० कीथ ने अपने ऐतरेय अनुवाद की भूमिका में इसका खण्डन किया है।

राजा के अभिषेक के समय इस आख्यान का पुरोहित द्वारा कथन एक आवश्यक संकेत कर रहा है। राजा को प्रतिज्ञा निभाना आवश्यक धर्म है। हरिश्चन्द्र ने वरूण के सामने पुत्र के समर्पण की प्रतिज्ञा को निभाकर अपने सत्य-सन्ध होने की बात स्पष्टतः प्रमाणित की। रोहित को घर लौटने से इन्द्र ने रोककर चरैवेति-चरैवेति की जो शिक्षा दी है वह आर्य जाति के अभ्युदय का सम्बल है। कर्म की दृढ़ उपासना ही आर्य संस्कृति का मेरुदण्ड है। आर्य-धर्म कर्मण्यता का पक्षपाती और अकर्मण्यता का प्रतिद्वन्द्वी है।

यह आख्यान आर्यों के दक्षिण देशों में प्रसार के इतिहास तथा समय का पूर्ण साक्षी है। ऐतरेय के ही समय आर्य लोग अपनी अभ्यस्त सीमा के बाहरी प्रान्तों में जाकर निवास करने लगे थे। पौण्ड्र, आन्ध्र पुलिन्द, शबर तथा मूतिब आर्यों के सीमान्त प्रदेश में निवास करने वाली ऐसी ही जातियाँ हैं जिनके साथ आर्यों का उस युग में सम्पर्क टूट गया। पौण्ड्र से बंगाल का संकेत है। आन्ध्र तो आज अपने स्थान पर है। पुलिन्द तथा शबर मध्य-भारत को रहने वाली जंगली जातियाँ हैं।

ऐतरेय का भौगोलिक सम्बन्ध मध्यदेश से ही है, क्योंकि मध्य देश का उल्लेख बड़े अभिमान के साथ किया गया है। तथा वह ध्रुव और प्रतिष्ठ माना गया है। [ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि-ऐ० ८.१४] परन्तु ऋग्वेद के समान ही इसका प्रचार आजकल महाराष्ट्र में ही है। इसीलिए 'ड' के स्थान पर 'ळ' का प्रयोग इसमें अधिक मिलता है।

इस पर ३ व्याख्याओं का पता चलता है — १. सायण-कृत भाष्य, २. षड्गुरु-शिष्य-रचित 'सुखप्रदा' नामक लघु व्याख्या, ३. गोविन्दस्वामी कृत व्याख्या।

—ॐ—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में पहला अध्याय

सोमयागों में ज्योतिष्टोम याग के अग्निष्टोम याग में पहली दीक्षणीय इष्टि

सोम-याग

१. ज्योतिष्टोम(चतुष्टोम) २. गोष्टोम ३. आयुष्टोम

१.अग्निष्टोम(संस्था), २.उक्थ्य, ३.षोडशी, ४.अतिरात्र

१.दीक्षणीय २.प्रायणीय ३.उदयनीय ४.आतिथ्य ५ प्रवर्ग्य

ये पाँचों अग्निष्टोम याग संस्था की इष्टियाँ हैं।

खण्ड [कण्डिका] १

विधि१.— पुरोडाश बनाना

अग्नि निश्चय ही देवों में पहला है और विष्णु (सूर्य, यज्ञ) परम है। अन्य सब देवता उन दोनों के बीच में हैं। अतः दीक्षणीय इष्टि में अग्नि-विष्णु सम्बन्धी ११ कपालों पर पुरोडाश को बनाते हैं। इस लिए जो अग्नि-विष्णु सम्बन्धी पुरोडाश को बनाते हैं वे उस से ही सब देवों को समृद्ध कर देते हैं।

प्रश्न— पुरोडाश ११ कपालों पर बनता है और अग्नि-विष्णु २ हैं, तो इनका विभाग कैसे होगा?

उत्तर— अग्नि का पुरोडाश ८ कपालों पर बनता है क्योंकि अग्नि का छन्द गायत्री है जिसके १ चरण में ८ अक्षर होते हैं। विष्णु का पुरोडाश ३ कपालों पर बनता है क्योंकि विष्णु ने इस संसार की ३ क्रमों में रचना की। यह इन दोनों का क्रम और विभाग है।

विधि २—चरु का बनाना

जो अपनेको अप्रतिष्ठित [सन्तान-धनरहित] माने तो घी में पका चरु [बिना माँड निकाला भात] पकाए। जो प्रतिष्ठित नहीं होता वह इस सृष्टि में ठहर नहीं सकता। इस चरु में घी स्त्री (गाय) के दूध का है और जो चावल हैं वे पुरुष (बैल) के (बल से पैदा) हैं। यह जोड़ा हो गया। इस प्रकार वह चरु जोड़े से ही सन्तान और पशुओं से समृद्ध करता है। जो यह जानता है वह सन्तान-पशुओं से समृद्ध होता है।

❀ दीक्षणीय इष्टि का समय ❀

जो अमावास्या या पूर्णिमा को यज्ञ करता है वह देवताओंको प्राप्त करनेवाला हो जाता है। अमावास्या की हवि (यज्ञ) में या पौर्णमास की वर्हि (यज्ञ)में दीक्षा ले— यह एक प्रकार की दीक्षा है। [दूसरे प्रकार की दीक्षा दर्श-पौर्णमास के बिना भी हो सकती है।]

विधि ३ **सामिधेनी ऋचाएँ**

१७ सामिधेनी ऋचाओं को बोले [समिधाओं की आहुति दें] क्योंकि १२ मास और ५ ऋतुएँ [हेमन्त-शिशिर को १ मानकर] मिल कर १७ का १ संवत्सर प्रजापति [वर्ष]होता है।

जो ऐसा जान लेता है वह प्रजापति के आयतन वाली ऋचाओं से समृद्ध हो जाता है ॥ १ ॥

१— प्र वो वाजा अभि द्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।
देवान् जिगाति सुम्नयुः ॥ (ऋ० ३.२७.१)
२-३— इसी मन्त्र का फिर दुबारा तिवारा पाठ।
४— अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥(ऋ० ६.१६.१० साम १)
५— तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच् छोचा यविष्ठ्य ॥ (ऋ० ६.१६.११)
६— स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव वि वाससि।
बृहदग्ने सु वीर्यम् ॥ (ऋ० ६.१६.१२ साम ६६२)
७— ईळेन्यो नमस्यस् तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ (ऋ० ३.२७.१३)
८— वृषो अग्निः समिध्यते अश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईडते ॥ (ऋ० ३.२७.१४)
९— वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतम् बृहत् ॥ (ऋ० ३.२७.१५)
(७-९ साम १५३८-१५४०, अथ० २०.१०२.१-३ में हैं)
१०— अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ (ऋ० १.१२.१)
(साम ३, ७९० अथर्व २०.१०१.१)
११— समिध्यमानो अध्वरे अग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस् तमीमहे ॥ (ऋ० ३.२७.४)
[बीच में पढ़ी जानेवाली २ धाय्या ऋचाएं—]
१२— पृथुपाजा अमर्त्यो घृतं निर्णिक् स्वाहुतः।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ (ऋ० ३.२७.५)
१३— तं सबाधो यतस्रुचः इत्था धिया यज्ञवन्तः।
आचक्रुरग्निमूतये ॥ (३.२७.६)
१४— समिद्धो अग्ने आहुतः देवान् यक्षि स्वध्वरः।
त्वं हि हव्यवाडसि ॥ (ऋ० ५.२८.५)
१५— आ जुहोता दुवस्यत अग्निम्प्रयत्यध्वरे।
वृणीध्वम् हव्यवाहनम् ॥ (ऋ० ५.२८,६)
१६-१७— १५ वें मन्त्र का पुनः २ बार पाठ ॥
(ये १३ मन्त्र अन्यत्र भी आने के कारण २७ हुए।)

❀ १७ सामिधेनी ऋचाओं के अर्थ ❀

१-३. (हे मनुष्यो,) तुम्हारे चारों ओर प्रकाशमान वाज (अन्न, विज्ञान आदि) घृताची (रात) के साथ, हवियों (देने योग्य वस्तुओं) से युक्त हैं। सुख चाहने वाला मनुष्य देवों का उत्तम प्रकार से गुण वर्णन करता है।

४. हे अग्नि (परमात्मा, विद्वान् यज्ञाग्नि), तुम श्रेष्ठ गुणों की व्याप्ति के लिये और देने योग्य दान के लिये, प्रशंसित होकर हमें प्राप्त होओ तथा दाता होकर अपने योग्य स्थान(क्रमशः हृदय, सभा, यज्ञ)में विराजो। (साम ६६०)

५. अङ्गारों से प्रकाशमान भौतिक अग्नि, हम तुम्हें समिधाओं और घी से बढ़ाते हैं। हे बलशाली, तू बड़ी होकर प्रदीप्त हो। (साम ६६१ यजु,३.३)

हे बिजली के समान सदा युवा परमात्मा, हम विज्ञानों और प्रेम के साथ अपने अन्दर आपकी शक्ति बढ़ाते हैं। आप हमारे अन्दर अच्छी तरह प्रकाशित हों।

हे तेजस्वी विद्वान्, हम भोज्य पदार्थों और घी आदि से तेरी वृद्धि करते हैं। हे युवा के समान उत्साही, तू महान् होकर ज्ञान से प्रकाशित कर।

६. हे प्रकाशमान (परमेश्वर और भौतिक अग्नि), वह तू हमें विस्तृत ग्रहण करने योग्य, बड़े उत्तम बल को अच्छी तरह से प्राप्त करा।

७ स्तुति-योग्य, सत्कार-योग्य, अन्धकार(अज्ञान) को दूर करने वाला, दर्शनीय, सुख-वर्षक, अग्नि, परमात्मा और विद्वान् उत्तम विधि से प्रकाशित किया जाता है। (साम १५३८, अथर्व २०.१०२.१)

८. वृष्टिकर्ता, देवों (वेग आदि गुणों) को प्राप्त कराने वाला अग्नि(परमात्मा और विद्वान्), अश्व (व्यापक-शक्तिवाला) के समान (अश्व-शक्ति के माप से) प्रकाशित किया जाता है। हवियों (ग्रहण-योग्य वस्तुओं) से युक्त पुरुष उसके गुण वर्णन करते हैं।

९. हे बलयुक्त अग्नि(तथा परमात्मा और विद्वान् तुझ बलवान् सुखवर्षक को बलयुक्त हम अच्छी तरह) से प्रकाशित करें। तू विज्ञान को प्रकाशित करता है।

१०. सब पदार्थों को यथायोग्य पहुँचानेवाले, बल-दाता, सब को लाभ कराने वाले, इस यज्ञ को उत्तम सिद्ध करने वाले अग्नि को हम वरण करें।

११.हम अहिंसक यज्ञ में उत्तम प्रकाशमान, पवित्र स्तुत्य, केशों के समान तेजो-युक्त अग्नि का सेवन करें।

१२. विस्तृत-बल-युक्त, नाश-रहित, जल-शोधक आहुति दिया गया अग्नि यज्ञ के हव्यों को धारण करे।

१३, दुष्ट-नाशक, उद्योगी, स्रुक् आदि पात्र लेकर यज्ञकर्ता रक्षार्थ इस तरह बुद्धिसे अग्निका आदर करें।

१४. हे उत्तम अहिंसक, सत्कृत अग्नि, तू प्रदीप्त होकर देवों से मिलता है। तू हव्य-वहनकर्ता है।

१५-१७. प्रयत्न-साध्य यज्ञ में उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने-कराने वाले अग्नि को ग्रहण करो, कार्य में लगाओ और स्वीकार करो।

कण्डिका [खण्ड] २

ज्योतिष्टोम यज्ञ देवों के पास से चला गया, उसे इष्टियों से खोजने कीइच्छा की, उसे पा लिया, अत: इन्हें 'इष्टि' कहते हैं।

जो ऐसा जानता है वह यज्ञ पाकर समृद्ध होता है

आहुतियाँ वस्तुत: 'आहूतियाँ' [बुलावे] हैं, इनसे यजमान देवोंको बुलाता है, अत: ये आहुति कहाती हैं

ये इष्टि-आहुतियाँ वस्तुत: 'ऊतियाँ'[रक्षाएँ] हैं जिनसे देव यज्ञ में आते हैं। इष्टियाँ बड़े मार्ग और आहुतियाँ मार्ग के भाग हैं।

प्रश्न— अध्वर्यु आहुति दिया करता है उसे होता क्यों नहीं कहते ? अनुवाक्या [आहुति से पहले पढ़ी जानेवाली ऋचा] और याज्या[जिस ऋचा से आहुति दी जाती है; दोनों प्रत्येक याग में पृथक् पृथक् नियत रहती हैं] पढ़नेवाले को होता क्यों कहते हैं ?

उत्तर— क्योंकि वह देवों को बुलाता है इसलिए वह होता है। जो इस विधिको जानता है वह होता है।

खण्ड ३ संस्कार और शुद्धि

जिसको दीक्षित किया जाता है मानो उसका नया जन्म होता है अत: नीचे लिखी विधियाँ करते हैं—

विधि ४— जल-सिञ्चन। उसको जल से सींचते हैं। जल वीर्य है, जिस से उसे वीर्यवान बनाते हैं।

विधि ५—अभ्यंजन। सुगन्धित मक्खनसे उस मालिश करते हैं, क्योंकि यह गर्भोंके योग्य है। पित के लिए आयुत[आधा पिघला घी], सामान्य मनु के लिए जमा हुआ घी, और देवों के लिए 'आज योग्य होता है। मक्खन से मालिश करना यजमान उसके योग्य भाग से समृद्ध करना है।

विधि ६ — अञ्जन। उस की आँखों में अं लगाते हैं। अंजन आँखों का तेज है। उससे यज को तेजस्वी बनाकर दीक्षित करते हैं।

विधि ७—कुशों के २१ मुट्ठों से मार्जन करते हैं

विधि ८— उसको 'विमित' [विशेष निर्मित दे यजन-स्थान 'प्राचीन वंश'] में प्रवेश कराते हैं। विमित योनि के समान है। ऐसी योनि से ही गर्भ पै होते हैं। दीक्षित को उस से दूसरे स्थान में सूर्य उदय हो, न अस्त हो, और न लोग इसे बाहर ले कर कोई बात सुनावें।

विधि ९— उस को वस्त्र से ढँकते हैं। यह [झिल्ली] के समान है।

विधि १०— वस्त्र के ऊपर उसे काली मृग-च [या अभाव में चादर] उढ़ाते हैं, जो उल्व के जरायु के समान है।

विधि ११— मुष्टि-बन्धन। वह मुट्ठी बाँधता है क्योंकि गर्भमें बच्चा मुट्ठी बाँधे रहता और वैसा पै होता है। दीक्षित मुट्ठी बाँधकर यज्ञ और सब देवता को वश में कर लेता है।

सोमयाग में पहले ही दीक्षित हुए को संसव [पास में दूसरे के द्वारा किये यज्ञ के मन्त्रों की ध्व का टकराव] नहीं होता, क्योंकि वह यज्ञ व देवता को ग्रहण कर चुकता है। उसे बाद को हुए दीक्षित समान हानि नहीं होती।

विधि १२— फिर वह मृग-चर्म उतार कर स्ना करता है, जैसे बच्चा जरायु से बाहर आया हो। वस्त्र को लपेटे हुए ही नहाता है, क्योंकि बच्चा के साथ ही पैदा होता है ॥३॥

खण्ड ४ (आज्य की आहुतियाँ)

विधि १३—अनीजान [अभीतक यज्ञ न किये हु यजमान के लिए होता २ ऋचाएँ पढ़ता है। आज्य पहले भाग के लिए —

२८-२९. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्य: । त्वया यज्ञं वितन्वते ॥१॥(ऋ० ५.१३.४, साम १४०

हे अग्नि, तू विस्तृत, सेवनीय, होता और वरेण्य है। तुझसे यज्ञ का विस्तार किया जाता है।

इस प्रकार वह 'त्वया यज्ञं वितन्वते' के द्वारा मानो यज्ञ न किये हुए को यज्ञ देता है।

आज्य के दूसरे भाग के लिए—

३० सोम यास्ते मयोभुवः ऊतयः सन्ति दाशुषे।
ताभिर्नो ऽविता भव ॥ [ऋ० १.९१.९]

हे सोम, दानी के लिए जो तेरी सुखकारी रक्षाएँ हैं उनसे तू हमारा रक्षक हो।

ईजान [पहले यज्ञ किये हुए] यजमान के लिए होता अन्य २ मन्त्रों को जपता है—

३१-३२. अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम्।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥१॥
[ऋ० ८.४४.१२, साम १७११]

अग्नि पूर्व कर्म से अपने शरीरको शोभित करता तथा शब्द करता हुआ विप्रके द्वारा बढ़ता है।

मन्त्र में आये 'प्रत्न' शब्द से पहले किये यज्ञ-कर्म का संकेत है।

३३. सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धमाना वचोविदः।
सुमृडीको न आ विश ॥२॥ [ऋ० १.९१.११]

वृत्रों (दुष्टों) का वध हो

परन्तु इस विधि का आदर न करे। इनके स्थान में आगे बताये २ मन्त्र, जो वृत्रके मारने विषयक हैं, बोलने चाहिए—

३४-३७. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१॥
[ऋ ६.१६.३४, य ३३.९, साम ४, १३९६]

वह अग्नि वृत्रों को नष्ट करता है जो अच्छे प्रकार से प्रदीप्त, तेजस्वी, सुप्रयुक्त, विशिष्ट उद्यम से धन प्राप्त कराने वाला, धनयुक्त हो।

३८. त्वं सोमासि सत्पतिस् त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ २ ॥
[ऋ० १.९१.५]

हे सोम, तू सच्चा पति, राजा और वृत्र-नाशक है। तू कल्याणकारी कर्म करनेवाला है!

क्योंकि जो यज्ञ करता है वह वृत्र को मारता है अतः वृत्रकी हिंसा बतानेवाले २ मन्त्र बोलने चाहिए।

विधि १४— अग्नि-विष्णु के लिए आहुति की अनुवाक्या-याज्या ऋचाएँ ये हैं—

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानांसंगतानामुत्तमो विष्णुरासीत्।
यजमानाय परिगृह्य देवान् दीक्षयेदंहविरागच्छतं नः ॥
अग्निश्चविष्णो तप उत्तमं महो दीक्षापालायवनतहि शक्रा
विश्वैर्देवैर्यज्ञियैः संविदानौ दीक्षा मस्मै यजमानाय धत्तम्॥

देवताओं में अग्नि मुख्य प्रथम और विष्णु उत्तम है। वे यजमानके लिए देवोंको साथ लेकर आएँ और यह हवि लेकर हमें दीक्षित करें।

हे अग्नि-विष्णु, तुम्हारा तप-तेज उत्तम है, तुम समर्थ, दीक्षापाल होकर रक्षा करो और सब देवों के साथ मिलकर इस यज्ञकर्ता के लिए दीक्षा दो।

[ये २ मन्त्र ऋ० में नहीं हैं, उसकी आश्वलायन शाखा के हैं क्योंकि आ० श्रौत० पूर्व० ४-२ में हैं।]

ये मन्त्र 'रूप-समृद्ध' हैं। जो यज्ञकार्य किया जाय यदि उसका वर्णन या संकेत मन्त्रमें मिल जाय तो उसे 'रूप-समृद्ध' कहते हैं। इससे यज्ञ सफल होता है।

अग्नि-विष्णु दीक्षा के पालक-स्वामी हैं। जब उन के लिए हवि दी जाती है वे प्रसन्न हो दीक्षा देते हैं।

ये २ त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रिय-शक्ति देनेवाले हैं।

खण्ड ५

विधि १५— स्विष्टकृत् काम्य संयाज्य।

१— तेज और ब्रह्म-वर्चस् की कामना वाला २४ अक्षरों के २ गायत्री छन्द*(अनुवाक्या-याज्या) पढ़े क्योंकि यह छन्द तेज और ब्रह्म-वर्चस् है। जो ऐसा जानकर इन्हें बोलता है वह तेजस्वी ब्रह्मचारी होता है।

२—आयुकी कामनावाला २८ अक्षरके २ ॐ उष्णिक्

*४१ अग्निर्होता पुरोहितः अध्वरस्य विचर्षणिः।
स वेद यज्ञमानुषक् ॥ ऋ० ३.११.१

अग्नि होता, पुरोहित, यज्ञका द्रष्टा है। वह यज्ञ को जानता और प्राप्त कराता है।

४२-४३ स हव्यवाडमर्त्यः उशिग्दूतश्चनोहितः।
अग्निर्धिया समृण्वति। [ऋ० ३.११.२, य २२.१६]

वह हव्य को वहन करनेवाला, अमरणधर्मा, कमनीय दूत, हितकारी अग्नि (और विद्वान्) कर्म से चलता है।

ॐ ४४-४७ अग्ने वाजस्य गोमतः ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महिश्रवः॥१॥
४८-५० स इधानो वसुष्कविः, अग्निरीडेन्यो गिरा।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि॥ २॥
[ऋ० १.७९.४-५, य० १५.३५-३६, साम९९, १५६१-६२]

हे अग्नि, बल का रक्षक, धनयुक्त, अन्न-स्वामी; तू हमें बड़ा यश दे॥ साधन-युक्त, प्रदीप्त, स्तुत्य, वसु, कवि हमारे लिए विद्या और धन को प्रकाशित करे।

छन्द पढ़े, क्योंकि उष्णिक् आयु है। जो ऐसा जानकर उष्णिक् छन्दों को बोलता है वह सब आयु प्राप्त करता है।

३— स्वर्ग (सुख) की कामना वाला ३२ अक्षरों के अनुष्टुप् छन्द के कोई २ मन्त्र बोले ॐ। २ अनुष्टुपों में ६४ अक्षर होते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ — प्रत्येक में भू, भुवः, स्वः, मह, जन, तप, सत्य — ये ७–७ मिलकर २१ लोक हैं। उनमें १–१ अक्षर से चढ़ता हुआ यज्ञ-कर्ता ६३ लोकों पर चढ़ कर ६४वें अक्षर से स्वर्ग में ही प्रतिष्ठित हो जाता है। जो ऐसा जानता हुआ अनुष्टुपों को पढ़ता है वह प्रतिष्ठित होता है।

४— श्री और यश की कामना वाला ३६ अक्षरों के २ ॐ बृहती छन्दों को बोले। बृहती श्री और यश है। जो ऐसा जानकर कोई २ बृहती मन्त्र बोलता है वह अपने में श्री और यश को धारण करता है।

५— यज्ञ की कामना वाला (४०–४० अक्षरों के) २ छन्द पढ़े ॐ। क्योंकि यज्ञ पंक्ति से सम्बन्ध रखने वाला है। जो ऐसा जानता हुआ पंक्ति छन्द के २ मन्त्र बोलता है उसके आगे यज्ञ झुक जाता है।

६— वीर्य की कामना वाला (४४–४४ अक्षरों के) २ त्रिष्टुप् छन्द ॐ पढ़े क्योंकि त्रिष्टुप् ओज, इन्द्रिय-शक्ति युक्त और वीर्यवान् होता है।

७.—पशुओं की कामना वाला (४८-अक्षरों के) २ जगती छन्द बोले। क्योंकि जगती छन्द पशु-सम्बन्धी

ॐ ५१-५२. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१

हे अग्नि, तू वसु, रुद्र—आदित्यों और अच्छे अहिंसक यज्ञ-साधक, मननशील, तथा घी से सींचने वाले मनुष्य को यहाँ सङ्गत कर। ऋ० १.४५.१ साम ९६

५३. श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः।
तान् रोहिदश्व गिर्वणः त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २
ऋ० १.४५.२

हे वेगयुक्त वाणी-सेवित अग्नि, जो चेतन देव विद्वान् दानी के लिए अन्न और सुख देते हैं उनको और ३३ देवों को तू धारण कर।

ॐ ५४-५७ एना वो अग्निं नमसा ऊर्जो नपातमाहुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्।

५८-६० स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥
[ऋ० ७.१६.१-२; य० १५.३२-३३; सा५५; ७४९-७५०]

अन्नके द्वारा ऊर्जा के रक्षक, प्रिय, चेतना-दायक सुख-प्रापक, अच्छे अहिंसक, सब के कार्य-साधक इस अग्निको मैं तुम्हारे अर्थ आह्वान करता हूं।

वह सब को भोजन और जल से युक्त करता है। वह अच्छे प्रकार से स्वीकृत शीघ्र प्राप्त होता है। अच्छे अन्न-धन-वेदज्ञान से युक्त, पूजनीय, सुकर्मा वह वसुओं और मनुष्यों का दिव्य उत्तम धन है।

ॐ ६१-६४—अग्निं तं मन्ये यो वसुः अस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवो अस्तं नित्यासो वाजिनः।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥
(ऋ०५. ६. १, साम०४-२५, १७-३७. यजु०१५.४१)

अर्थ— मैं अग्नि उसे मानता हूँ जो सर्वत्र वसनेवाला है और जिस प्रयुक्त हुए के पास गौएँ आदि, तथा शीघ्रगामी, वेग युक्त पदार्थ प्राप्त होते हैं। तू गुणवर्णन करनेवालों के लिये अन्न से अच्छे प्रकार पूर्ण कर।

६५–६७— सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरयः।
इषं स्तोतृभ्य आभर ॥

वह अग्नि है जो वसु है। मैं उसका गुण-वर्णन करता हूं जिसके पास वाणियाँ, लघु दौड़ने वाले वेगवान् पदार्थ और प्रसिद्ध विद्वान् आते हैं। तू स्तोताओं को अन्न दे

ॐ ६८–६९. द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते। हरिरन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥ (ऋ० १.९५.१ य० ३३.५

७०. दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्। तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२॥ ऋ० १-९५-२

अच्छे प्रयोजन वाली २ विरूपरूपा (दिन-रात) गति किया करती हैं और उत्पन्न संसार को धारण करती हैं। एक (रात) में चन्द्रमा अन्नरस देनेवाला और दूसरे (दिन) में सूर्य उत्तम प्रकाशयुक्त दिखाई देता है।

आलस्य-रहित युवतियों के समान १० दिशाएँ वायु और बिजली के इस गर्भ को उत्पन्न करती हैं जो विभिन्न पदार्थों को धारण करनेवाला है। वे ही दिशाएं तीक्ष्ण तेज वाले, अपने यशोयुक्त, मनुष्यों में विशेष प्रकाशमान दिन-रात के व्यवहार को सब ओर पहुंचाती हैं।

हैं। जो यह जानकर २ जगती छन्द बोलता है वह पशुवाला होता है। ऽ

८— अन्न की कामना वाला ३३ अक्षरों के २ विराट् छन्द पढ़े। क्योंकि अन्न विराट् है। इसीलिये जिसके पास यहाँ बहुत अन्न होता है वही संसार में बहुत अधिक विशेष शोभित होता है। यही विराट् का विराट्पन है। जो ऐसा जानता है वह अपने लोगों में शोभित और श्रेष्ठ होता है।

खण्ड ६

यह विराट छन्द ५ शक्तियों से युक्त है। ३ चरण होने से यह उष्णिक्–गायत्री रूप, ११ अक्षरों का होने से त्रिष्टुप् और ३२ अक्षरों का होने से अनुष्टुप् के समान है। १ या २ अक्षर कम या अधिक होने पर भी छन्द नहीं बिगड़ता, यह विराट् ५ शक्तियोंसे युक्त है।

जो ऐसा जानता हुआ २ विराट् छन्द पढ़ता है वह सब छन्दों को सम्मुख कर प्राप्त करता और उनके सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य को पाता, अन्नाद-अन्नपति हो जाता और अन्न खाने की शक्ति प्राप्त करता है।

अतः २ विराट् छन्द अवश्य बोलने चाहिए—

ऽ ७१–७३. जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविः
अग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा
द्युमद् विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥
ऋ० ५.११.१; साम ९०७ यजु० १५.२७

जनों का रक्षक, जागरूक, उत्तम दक्ष, ओज से पहचानने योग्य, पवित्र अग्नि नवीन सुख के लिए है। वह द्युलोक तक फैले तेज से प्रजा–पालकों के लिए दीप्त होकर विशेष शोभित होता है।

७४-७५. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे। इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्निहोता यजथाय सुक्रतुः ॥२॥
[ऋ० ५.११.२,साम० ६०६]

मनुष्य यज्ञ को बतानेवाले, पहले हितैषी अग्नि को ३ स्थानों, सवनों और सभाओं में उत्तम प्रकार से प्रकाशित करें। सुकर्मा होता अग्नि संगति के लिये, इन्द्र और देवों के साथ, रमणीय साधना सहित स्थित हो।

७६-७८. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो अजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्तः उप यन्ति वाजाः ॥१॥
[ऋ० ७.१.३, साम १३७५; यजु, १७.७६]

हे बलशाली अग्नि [परमेश्वर, विद्वान् और यज्ञाग्नि], तू प्रदीप्त होकर लगातार प्रकाशमान ज्योतिः से हमारे सामने प्रकाशित हो। निरन्तर यत्नशील ज्ञानी पुरुष आप के समीप पहुँचते हैं।

७९. इमो अग्ने वीततमानि हव्या
अजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥२॥ [ऋ.७.१,१८]

हे अग्नि [और विद्वान्], इन अत्यन्त व्याप्त होनेवाले हव्यों और उत्तम सुखदायी यज्ञको निरन्तर तू प्राप्त कर। हमारे लिए ये सुगन्धित पदार्थ सब ओर से प्राप्त हों।

विधि १७ — सत्य-भाषण का व्रत। यजमान ऋत (यथार्थ चिन्तन) और सत्य (यथार्थ कथन) की दीक्षा ले, क्योंकि उसे सत्य ही बोलना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं कि कौन मनुष्य सब सत्य बोल सकता है? क्योंकि देव ही सत्य-युक्त और मनुष्य अनृत-युक्त भी होते हैं। इसलिए विचक्षण (विशेष दृष्टि) वाली वाणी को बोले। आँख ही विचक्षण है। इसी से विशेष देखा जाता है। मनुष्यों में जो आँख है वह निश्चय ही सत्य रखा हुआ है। इसलिए कहनेवाले से पूछा जाता है कि 'क्या तू ने देखा?' यदि वह कहता है कि 'हाँ, मैंने देखा', तो उस पर श्रद्धा करते हैं। यदि मनुष्य स्वयं देखता है तो वह अन्य बहुत सों पर श्रद्धा नहीं करता। अतः विचक्षणवती ही वाणी को बोले। इससे निश्चय ही इस की वाणी अधिकतम सत्यवाली हो जाती है।

इति प्रथमो अध्यायः

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

—❀—

सम्पादकीय निवेदन—

दीक्षायज्ञ करके सभी दीक्षा लें

प्रत्येक महान् शुभ कर्म, ब्रह्म [वेद]-पारायण यज्ञ, शताब्दी और वार्षिक उत्सव आदि में दीक्षा लेना और उस के लिए दीक्षणीयेष्टि [दीक्षा-यज्ञ] करना अत्यावश्यक है। यह किसी भी महान् यज्ञ [सोमयाग आदि] की तय्यारी का यज्ञ है। इस समय हम सभी को वेद-धर्म के पालन तथा प्रचार और अवैदिकों को वेद-धर्म में लाने की प्रबल दीक्षा देनी है। दीक्षा के विना अन्तिम लक्ष्य 'सत्य' प्राप्त नहीं किया जा सकता॥ धर्म की रक्षा भी दीक्षा लेने पर ही हो सकती है अत: इस धर्म-सङ्कट के समय प्रत्येक वेद-धर्मी को वेद-धर्म-प्रचार का व्रत और दीक्षा लेनी चाहिए तथा प्रत्येक को प्रत्येक उत्सव आदि पर यह दीक्षा-यज्ञ अवश्य करना चाहिए।

होली-दिवाली व पूर्णिमा

कार्तिक अमावास्या [दीवाली] अथवा फाल्गुनी पूर्णिमा [होली] अथवा किसी अमावास्या और पूर्णिमा पर या अन्य किसी भी पर्व पर यह दीक्षा यज्ञ अवश्य किया जाये। दूषित पदार्थों से होली जलाने के स्थान पर सब जगह घृत और सामग्री आदि से हवन यज्ञ ही करना चाहिए। होली पर नये अन्न से यज्ञ करने के साथ दीक्षा-यज्ञ भी किया जाये।

पुरोहित की स्थापना

सब यज्ञों में पुरोहित को नियुक्त करना चाहिए जो वेदज्ञ विद्वान् हो, जो वेद के मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध कर सकें और करा सके तथा उनके सच्चे अर्थ भी बता सके।

वेद और यज्ञविधि-ग्रन्थ

सभी यज्ञ-कर्ताओं के पास अपने निजी चारों वेद यज्ञ और संस्कारों की विधियाँ अवश्य रहनी चाहिएँ।

यज्ञोपवीत का धारण

सभी यज्ञकर्ताओंको श्वेत यज्ञोपवीत [जनेऊ] अवश्य धारण करना चाहिए। उसका मन्त्र नीचे दिया जाताहै—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेन उप नह्यामि॥

व्रत का ग्रहण

यज्ञ में पहले नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर सत्य के पालन का व्रत ग्रहण करना चाहिए—

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहम् अनृतात् सत्यम् उपैमि॥
(यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र ५)

दीक्षा-यज्ञ की सामग्री

४ आसन, वेदि वा यज्ञ-कुण्ड, आम या ढाक की सूखी समिधाएँ (लकड़ियाँ), यज्ञ-पात्र कम से कम प्रणीता (कलश), प्रोक्षणी, आचमनी, चम्मचें, घी का पात्र, दीपक, हवि पुरोडाश चरु सामग्री रखने की पात्री (तश्तरियाँ), कपूर, दीप-शलाका, पंखा चिमटा, गौ का घी, [न मिलने पर भैंसका घी, तिल वा नारियल का तेल], मेवा; चन्दन, गूगल, गिलोय चिरायता, शहद, दूध, दही, गुड़(या शक्कर-बताशे) जौ-चावल-तिल, प्रसाद में वेद-मन्त्रों की पुस्तक। घी अलग से गरम किया बहुत तीव्र हो। यज्ञ कर्ता धोती आदि धुले वस्त्र पहनें। कार्य ठीक समय से आरम्भ और समाप्त हों। अन्त में सामवेद का वामदेव्य अथवा अन्य कोई गान और शान्ति-मन्त्र का पाठ तथा 'वैदिक नाद—ओ३म् खम् ब्रह्म' आदि जय-घोष नारे हों। ओ३म्-पताका फहराती रहे॥

—❀—

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका दूसरा अध्याय

सोमयागों में ज्योतिष्टोम याग के अग्निष्टोम याग में प्रारम्भिक और अन्तिम इष्टियाँ

प्रायणीय-उदयनीय इष्टियाँ

खण्ड १

यजमान प्रायणीय इष्टि से स्वर्ग [सुख] को प्राप्त होता है, इसीलिए यह प्र-अयन-ईय=प्रायणीय है।

प्राण ही प्रायणीय और उदान ही उदयनीय है। दोनों में होता एक समान होता है। प्राणों के सामर्थ्य और विशेष ज्ञान के लिए प्राण-उदान बराबर हैं।

जब यज्ञ देवताओं के पास से चला गया तब वे न कुछ कर सके, न कुछ जान सके। वे अदिति [पृथ्वी द्यौ] से बोले- 'तेरे द्वारा हम यज्ञ को जानें'। उसने कहा 'अच्छा' स्वीकार है, किन्तु मैं तुमसे वर माँगती हू। देवों ने कहा — 'माँगो'। उसने यह वर माँगा— 'यज्ञ मेरे नाम से आरम्भ हो और मेरे नाम से समाप्त हो'। देवोंने कहा—अच्छा, ऐसा ही हो। इसीलिए प्रायणीय-उदयनीय दोनों में चरु (भात) अदिति से सम्बन्धित होता है, क्योंकि वह इसके वर द्वारा प्रार्थित है।

यह भी वर अदितिने स्वीकार कराया कि मेरे ही द्वारा पूर्व दिशाको जानो। फिर अग्निके द्वारा दक्षिण कों, सोम से पश्चिम को और सविता से उत्तर दिशा को जानोगे।

विधि १—१५ सामिधेनी ऋचाओं से आहुतियाँ (पृष्ठ ५ पर दीहुई १७ में से २ धाय्याओंको छोड़कर)

विधि २— पूर्व में चरु से पथ्या का यज्ञ

होता पथ्या सम्बन्धी अनुवाक्या-याज्या २ मन्त्र लोता है। सूर्य पथ्या (क्रान्ति-वृत्त) का अनुसरण करता है, उससे यज्ञ (सङ्गति) करता है, अतः वह पूर्व में उदय ओर पश्चिम में अस्त होता प्रतीत होता है।

विधि ३—दक्षिण में घी से अग्नि के लिए यज्ञ

होता २ अनुवाक्या-याज्या ऋचाओं से अग्नि के लिए यज्ञ करता है। ओषधियाँ (अन्न आदि) दक्षिण दिशा से पकती हुई आती हैं, क्योंकि वे आग्नेयी हैं।

विधि ४—पश्चिम में घी से सोम का याग

होता सोम का याग करता है। क्योंकि जल सोम से सम्बन्धित है अतः बहुत सी जलधाराएँ पच्छिम से भी बहा करती हैं।

विधि ५—उत्तर में सविता के लिए घी से याग

होता सविता की २ अनुवाक्या-याज्या ऋचाएँ बोलता है। उत्तर-पश्चिम से हवा अत्यधिक चलती है क्योंकि इसका प्रेरक देव सविता उ र में है।

विधि ६ — मध्य में चरु स अदिति का याग

होता उत्तम अदिति [द्यौ] के लिए यज्ञ करता है। जो उत्तम अदिति के लिए यज्ञ किया जाता अतः व इस पृथिवी को वर्षा से सींचता है और भूमि के रस को ऊपर खींचकर ग्रहण करता है।

क्योंकि ५ देवताओं [पथ्या] अग्नि, सोम सविता, अदिति] का यज्ञ किया जाता है अतः यज्ञ को पांक्त कहते हैं। इससे सब दिशाएँ और यज्ञ भी समर्थ) होते हैं। (मन्त्र पृष्ठ १२ पर दिए हैं।)

जहाँ ऐसा विद्वान् होता रहता है वहाँ उस यज्ञसे जनता के लिए सामर्थ्य प्राप्त होती है।

खण्ड २

विधि ७—५ प्रयाज आहुतियाँ (काम्य प्रयाजहोम)

होत— आ श्रावय। अग्नीध्र— अस्तु श्रौषट्। अध्वर्यु — यज। होता—ये यजामहे—... वौषट्

यह क्रिया प्रत्येक याग में की जाती है।

५ प्रयाज आहुतियां

एकत्र ही या ५ स्थानों में ५ प्रयाज आहुतियाँ

१. ओ३म् समिधो अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौ३षट् (पूर्व)
२. तनूनपादग्ने आज्यस्य वेतु३ वौ३षट् (दक्षिण)
३. इडो अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौषट् (पश्चिम)
४. बर्हिरग्ने आज्यस्य वेतु३ वौ३षट्। (उत्तर)
५ स्वाहा अग्निम् स्वाहा सोमम् स्वाहा अग्निम् स्वाहा अग्निषोमौ स्वाहा अग्निषोमौ स्वाहा देवाः आज्यपाः जुषाणाः अग्ने आज्यस्य व्यन्तु३ वौ३षट्।
(इससे मध्य में आहुतिदें। आपस्तम्ब, शतपथ १ ५.५.१२)

जो तेज और ब्रह्मवर्चस् चाहे वह पूर्व में प्रयाज आहुतियाँ दे। पूर्वदिशा तेज और ब्रह्मवर्चस् की है। जो ऐसा जानता हुआ पूर्व को जाता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी होता है।

जो अन्न और अन्नाद्य (पाचन-शक्ति) चाहे वह दक्षिण में जाकर प्रयाज आहुतियाँ दें अग्नि अन्नाद और अन्न-पति है। जो ऐसा समझ कर दक्षिण को जाता है वह अन्नाद-अन्नपति हो जाता है और सन्तान द्वारा अन्नाद्य को प्राप्त होता है।

पशुओं की इच्छावाला प्रयाज आहुतियों के साथ पश्चिम को जाये। आपः (जल) ही पशु हैं। [पान और इससे उत्पन्न घास आदि से पशु बढ़ते हैं]

जो ऐसा जानकर पश्चिम में जाकर यज्ञ करता है वह पशु-युक्त होता है।

जो सोम का पान करना चाहे वह उत्तरमें जाकर प्रयाजों से यज्ञ करे। उत्तर दिशा ही सोम है। जो ऐसासमझ कर उत्तर की ओर जाता है वह सोम को प्राप्त करता है।

ऊपर की दिशा स्वर्ग (सुख) की है। मध्य में प्रयाज होम करनेवाला सब दिशाओं में समृद्ध होता है। ये (भू, भुवः, स्वः)लोक उचित भोग देनेवाले हैं। ऐसा समझने वाले के लिए ये लोक लक्ष्मी को प्रकाशित करते हैं।

पथ्या आदि पूर्वोक्त ५ देवताओं की प्रशंसा

जो १. पथ्या- का यज्ञ (विधि २) करता है वह यज्ञ के आरम्भ में वाणी को सम्पन्न करता है। २-३. अग्नि-सोम प्राण-अपान हैं। ४. सविता प्रेरणा के लिए और ५. अदिति प्रतिष्ठा के लिए है।

जब १. पथ्या के लिए ही यज्ञ किया जाता है तब यज्ञ को वाणी से ही उचित मार्गपर डाल दिया जाता है। २-३. अग्नि-सोम दो आँखें हैं। ४. सविता प्रेरणा के लिए और ५. अदिति प्रतिष्ठा के लिए है।

देव आँख से ही यज्ञ को समझा करते हैं। जो अज्ञेय है वह आँख से ज्ञेय होना है। इसीलिए मूढ़ मनुष्य घूम-फिर कर विशेष कर्म-प्रयत्न से आँख द्वारा जब समझ लेता है तभी जान पाता है।

जब देवों ने यज्ञ को जाना तो इसी अदिति में जाना, इसी में तय्यारी की। इसी के लिए यज्ञ का विस्तार होता और यज्ञ किया जाता है। यज्ञ-सामग्री का संग्रह जिस के लिए होता है यह यही अदिति है। अतः उत्तम अदिति के लिए जो यज्ञ होता है वह यज्ञ के वज्ञान और स्वर्ग-प्राप्ति के लिए, होता है ॥२॥

खण्ड ३

विधि२में(उक्त ५ देवों की पुरोऽनुवाक्या तथा याज्या)

देवों की वैश्य प्रजा की कल्पना कर ली जाने पर मनुष्य वैश्य-प्रजा की कल्पना की जाती है। इस प्रकार सब प्रजाएँ मिलती हैं और यज्ञ भी सम्पन्न होता है। जहाँ ऐसा विद्वान् होता उपस्थित रहता है वहाँ यज्ञ जनता के लिए समर्थ होता है।

१. पथ्या देवता की पुरोऽनुवाक्या ऋचा—

८१. स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु
स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु
स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥

[ऋग्वेद १०. ६३. १५]

अर्थ—हे मरुतो [गतिशील वायु, प्राणो, सैनिको!! मनुष्यो], हमारे मार्ग में आनेवाले जल-रहित देशों में कल्याण हो। पानी [समुद्र, नदी आदि] में, शस्त्रयुक्त संग्राम में और अन्तरिक्ष-द्युलोक में कल्याण हो। पुत्र-उत्पादिका स्त्रियों और पुत्र-कर्म-युक्त घरों में कल्याण हो। तुम हमें ऐश्वर्य के लिए कल्याण धारण कराओ ॥

मरुत् देवों की वैश्य प्रजा हैं। उन्हीं को यज्ञारम्भ में इस मन्त्र से होता प्रेरित करता है।

[विद्वान्] कहते हैं कि सब छन्दों से यज्ञ करे। ऐसा करके जैसे देवों ने स्वर्ग को जीता उसी प्रकार

यजमान सब छन्दों से यज्ञ करके सुख पाता है।

पथ्या आदि की ऋचाएँ

उक्त ऋचा और अगली पथ्या की याज्या ऋचा त्रिष्टुप् (११-११ अक्षरों के ४ पाद = ४४ अक्षरों के) छन्द में है —

८२. स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा
रेक्णस्वती अभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे निपातु
सुआवेशा भवतु देवगोपा ॥(ऋ० १०.६३.१६)

अर्थ— जो श्रेष्ठ पथ में ही कल्याण-कारिणी है ऐसी श्रेष्ठ धनवाली पृथिवी सेवा करने वाले को प्राप्त होती है वह घर में और अरमणीय वन में हमारी रक्षा करे और हमें अच्छा निवास देकर देव (विद्वानों और प्राकृतिक शक्तियों) के द्वारा सुरक्षित हो।

२. अग्नि की पुरोऽनुवाक्या ऋचा, त्रिष्टुप् छन्द—

८३-८४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वायुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मद् जुहुराणम् एनो,
भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम ॥
[ऋ० १.१८८.१; यजु० ४०.१६]

अर्थ— हे प्रकाशस्वरूप अग्नि (ईश्वर, विद्वान्), तू हमें ऐश्वर्य के लिए अच्छे मार्ग से आगे बढ़ा। हे सुखदाता, तू हमारे सब कर्मों को जानता है। हमसे कुटिलता-युक्त पाप छुड़ा। हम तेरी बहुत नम्रतायुक्त प्रशंसा करते हैं।

अग्नि की याज्या ऋचा त्रिष्टुप् छन्द में—

८५-८६. आ देवानामपि पन्थाम् अगन्म,
यच्छक्नुवाम तदनु प्र वोळ्हुम्।
अग्निर्विद्वान् स यजात् सेदु होता,
सो अध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ॥
[ऋ० १०.२.३, अथर्व १९.५९.३]

अर्थ— हम विद्वानों के मार्ग को प्राप्त हों और जितना हो सके उसके अनुकूल चलें। विद्वान् ईश्वर सृष्टि-यज्ञ करता और पुरोहित देवयज्ञ करता-कराता है तथा वही होता[दान-आदान-कर्ता] है यह यज्ञों और ऋतुओं को समर्थ बनाता है।

३. सोम की अनुवाक्या [त्रिष्टुप् छन्द में]—

८७-८८ त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा,
त्वं रजिष्ठम् अनुनेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो,
देवेषु रत्नम् अभजन्त धीराः ॥
[ऋ० १.९१.१; यजु० १९.५२

अर्थ— हे सोम [ईश्वर, विद्वान्, सोमरस, चन्द्र] तू बुद्धि-द्वारा चेतना देनेवाला है। तू सुखदायक, और सीधे पथ पर चलानेवाला है। हे आनन्द-दायक, तेरी उत्तम नीति के साथ वर्तमान पितर, धीर योगी जन विद्वानों में उत्तम धन (ज्ञान) को प्रदान करते हैं।

सोम की याज्या ऋचा (त्रिष्टुप् छन्द में)—

८९. या ते धामानि दिवि या पृथिव्याम्,
या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्
राजन् सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ [ऋ० १.९१.४]

अर्थ— हे राजा सोम (सौम्य शासक, विद्वान्, सोम ओषधि), जो तेरे स्थान द्यौ, पृथिवी, पर्वतों, ओषधियों तथा जल में हैं उन सबसे हमें कष्ट न देता हुआ और प्रसन्न करता हुआ तू हमें ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करना।

४. सविता की अनुवाक्या (गायत्री छन्द)

९०. आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे।
सत्यसवं सवितारम् ॥ [ऋ० ५.८२.७]

अर्थ— विश्व-प्रकाशक, सच्चे रक्षक स्वामी, सत्य-सामर्थ्य वाले सविता [परमेश्वर, विद्वान् तथा सूर्य] को हम वेदोक्त वचनों से वरण (स्वीकार) करते हैं।

सविता की याज्या ऋचा—

९१ य इमा विश्वा जातानि आ श्रावयति श्लोकेन।
प्र च सुवाति सविता ॥ [ऋ० ५.८२.९]

अर्थ— जो इन सब उत्पन्न मनुष्यों को वेदवाणी से ज्ञान सुनाता है वह सविता (परमात्मा और विद्वान्) हमें अच्छी प्रेरणा देता है।

५. अदिति की पुरोऽनुवाक्या [जगती छन्द]—

९२-९४. सुत्रामाणम् पृथिवीं द्यामनेहसम्,
सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्राम् अनागसम्,
अस्रवन्तीम् आ रुहेमा स्वस्तये ॥
[ऋ० १०.६३.१०; यजु० २१.६, अथ० ७.६.३]

अर्थ— हम सुख और कल्याण के लिए उत्तम रक्षक, विस्तृत, प्राप्ति-योग्य, प्रकाशमान, पाप-रहित अखण्डित, उत्तम सुख-युक्त, उत्तम-नीति-गति-युक्त, अच्छे साधनों वाली, शत्रुओं से बचानेवाली, दोषों रहित, दिव्य नाव [पृथिवी, शरीर, वेदवाणी, यज्ञ जल-नौका, विमान] पर चढ़ें--उसका प्रयोग करें

अदिति के लिए याज्या ऋचा(जगती छन्द में)—

९५- महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्
ऋतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीम्
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ (अ० ७.६.२)

अर्थ-- हम पूज्या माता, सुकर्मियों के सत्यधर्म की रक्षिका, बहुत बलवाली, सदा नवीन, सुविस्तृत, उत्तम घर और सुख को देनेवाली; सुन्दर नीतिवाली, अखण्डित पृथिवी को रक्षा के लिए स्वीकार करते हैं।

यही ३ मुख्य छन्द हैं— १. गायत्री, २. त्रिष्टुप और ३. जगती। क्योंकि यज्ञ में ये ही अत्यधिकता से प्रयुक्त होते हैं। जो ऐसा जानता है वह इन्हीं छन्दों से यज्ञ करता हुआ सभी छन्दों का लाभ प्राप्त करता है।

खण्ड ४

ये हवि की उक्त १० अनुवाक्या-याज्या ऋचाएँ प्र, नय, पथ, स्वस्ति -- इनमें से किसी एक शब्द से युक्त हैं। इनसे ही यज्ञ करके देवों ने स्वर्ग को जीता। वैसे ही यज्ञ-कर्ता इनसे यज्ञ करके स्वर्ग जीतता है।

इनमें एक पद है— 'स्वस्ति राये मरुतो दधातन'। मरुत् देवों की प्रजा हैं और अन्तरिक्ष में रहते हैं। उनसे निवेदन करनेवाला जब स्वर्गपहुंचे तो वे उसे रोक या मथ सकते हैं। यह मन्त्र पढ़कर मरुतों से निवेदन किया जाता है तब वे इसको न रोकते न मथते हैं।

जो ऐसा जानता है, स्वर्ग जाते हुए उसको मरुत् अत्यधिक सुख-कल्याण प्राप्त कराते हैं।

विधि ८— **स्विष्टकृत् संयाज**

जो ३३ अक्षरोंके हों ऐसे २ विराट् छन्द [११-११ अक्षरों के ३ पादों के विराड् गायत्री छन्द] इस हवि के स्विष्टकृत् संयाज्य मन्त्र होते हैं—

९६. स इदग्निः अग्नीन् अत्यस्तु अन्यान् ,
यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ,
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ (ऋ० ७.१.१४)

अर्थ— जहाँ वेग युक्त, विस्तृत, बलयुक्त मनुष्य अन्य अग्नियों (शरीर-पाचकाग्नि, तथा शासकों) से बढ़कर होता है वहाँ वही अग्रणी होकर हजारों अन्न-युक्त जल और प्रशंसा को पाया करता है।

९७. सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति,
समेद्धारम् अंहसः उरुष्यात् ।
सुजातासः परिचरन्ति वीराः ॥(ऋ. ७.१.१५)

अर्थ—वही महान् अग्नि है जो भक्तों की सहायता और सन्तप्त की कष्ट से रक्षा करे, जिसको सुप्रसिद्ध वीर सब ओर जानते और सेवा किया करते हैं।

विद्वानों ने २ विराट् छन्दों से यज्ञ करके स्वर्ग जीता वैसे ही यजमान २ विराट् छन्दों से यज्ञ कर के स्वर्ग-लोक [सुख और इसके साधनों]को पालेता है

विराट् छन्द ३३ अक्षर का होता है— ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति और १ इन्द्र।

इस प्रकार विराट् छन्द के ३३ अक्षरों से होता ३३ देवों को, पहले यज्ञ के आरम्भ (आग्रयणीय इष्टि) में ही, अक्षरों का भागी बना लेता है, १-१ अक्षर से १-१ देवताको सन्तुष्ट कर देता है, मानो देवोंके पात्र [फल, फल-भरी तश्तरी] से उसी समय देवताओं को तृप्त करता है।

खण्ड ५

विधि ९ **३ अनुयाज मन्त्र**

अनुयाज आहुतियों के ३ मन्त्र

९८(१)- ओ३म् देवम् बर्हिः वसुवने वसुधेयस्य वेतु वौ३षट्। इदं देवाय बर्हिषे, इदं न मम ॥

९९(२)–देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वे३तु वौ३षट्। इदम् देवाय नराशंसाय, इदं न मम ॥

१००(३)– देवो अग्निः स्विष्टकृत् सुद्रविणो मन्द्रः कविः। सत्यमन्माऽऽयजी होताहोतुः होतुरायजीयानग्ने यान्देवान् अयाड् यानपि प्रेये ते होत्रे अमत्सत तां ससनुषीं देवज्ज्मां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमं स्विष्टकृच्चाग्ने होता भूर्वसुवने वसुधेयस्य नमो वाके वीहि३ वौ३षट् ॥ इदम् देवायाग्नये स्विष्टकृते इदम् न मम ॥

कुछ यज्ञकर्ता कहते हैं कि प्रायणीय इष्टि को अनुयाजों से रहित, केवल प्रयाज–युक्त करनी चाहिए क्योंकि अनुयाजों से हीनता और विलम्ब हो जाता है [प्रायणीय इष्टि में प्रयाज ही बोले, अनुयाज नहीं और अन्तिम उदयनीय इष्टि में अनुयाज ही बोले।

किन्तु इस मत का आदर नहीं करना चाहिए। प्रयाजों के समान अनुयाज मन्त्र भी पढ़ने चाहिए, क्योंकि प्रयाज प्राण और अनुयाज प्रजा हैं। अगर प्रयाजों को छोड़ दे तो यजमान के प्राणों का विच्छेद यदि अनुयाजों को छोड़ दे तो यजमान की सन्तान का विच्छेद होगा। अतः दोनों को पढ़ना चाहिए।

पत्नी–संयाज्यों और संस्थित यजुओं को न पढ़े और न उनसे आहुति दे[पत्नीसंयाज उदयनीयमें करे]

[टिप्पणी— कुहू–अनुमति (अमावास्या) और राका–सिनीवाली (पूर्णिमा)— ये दो देव-पत्नियाँ हैं, उनकेलिए मन्त्रपढ़कर आहुति देना पत्नी-संयाज्य है। यजुर्वेद २.२१ से आहुति देना संस्थितयजु है।

उतने से ही यज्ञ असमाप्त (वर्तमान) रहेगा—

१. प्रायणीय के निष्कास [सँभाल कर रखे पात्र में लगे हविःशेष] को उदयनीय की हवि के हाथ, यज्ञ के अविच्छेद के लिए, मिला दे।

२. जिसी स्थाली में पहली इष्टि का चरु आदि बनाये उसीमें दूसरीका बनाये। इससे ही यज्ञ लगातार चलता रहता है, बीच में छिन्न नहीं होता।

३. कुछ ब्रह्मवादी कहते हैं कि जो 'प्रायणीय की हवि को विचारते, तय्यार करते, आहुति देते हैं, इस लोक से चले ही जाते हैं और दूसरे लोकमें समृद्ध होते हैं, इस लोक में नहीं'— वे यह बात अज्ञान से ही कहते हैं। होता याज्या–अनुवाक्या में परस्पर परिवर्तन कर दे— प्रायणीय की पुरोऽनुवाक्याओं को उदयनीय की याज्या बनाकर उनसे आहुति दे और प्रायणीयकी याज्याओं को उदयनीय की पुरोनुवाक्या बनादे। होता इस परवर्तन को दोनों लोकों में समृद्धि और प्रतिष्ठा के लिए करता है। जो ऐसा जानता है वह दोनों लोकों में समृद्ध और प्रतिष्ठित होता है।

❀ अदिति के चरु की प्रशंसा ❀

प्रायणीय और उदयनीय में दिया जानेवाला अदिति का चरु उस यज्ञ के धारण, यज्ञके सिरों के बाँधने, यज्ञ के अलग अलग न छूटने देने के लिए है। जैसे कि रस्सी के दोनों सिरों को बाँध देने से रस्सी गाँठ से बँधी रहती है और हाथ से नहीं छूटती, ऐसेही यह है। प्रायणीय और उदयनीय में अदिति के चरु दोनों यज्ञों के दोनों सिरों को न छूटने देने के लिए, गाँठ लगाकर बाँध देते हैं।

पथ्या, स्वस्ति देवता से प्रायणीय इष्टि में (स्वस्ति नः पथ्यसु धन्वसु० मन्त्रसे) आरम्भ करते हैं और इसी से (अन्तिम उदयनीय इष्टिमें) समाप्त करते हैं। इस प्रकार यज्ञको स्वस्तिसे आरम्भकर स्वस्तिसे समाप्त करते हैं।५॥

विधि १० त्रिवृत् स्तोम

त्रिवृत् स्तोम की उद्यती नामक विष्टुति (विशेष स्तुति)

पहला तृच

१०१–१०४.(१)उपास्मै गायता नरः,
पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते॥
(ऋ०९.९.१.साम०६५१,७६३,यजु०३३.६२)

१०५-१०६(२)अभि ते मधुना पयो,
अथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयु॥
(ऋ०९.९.२ साम ६५२)

१०७–१०८(३)स नः पवस्व शं गवे,
शं जनाय शमर्वते। शं राजन् ओषधीभ्यः॥
(ऋ० ९.९.३,साम ६५३)

दूसरा तृच

१०९–१४(४) दविद्युतत्या रुचा, परिष्टोभन्त्या कृपा।
सोमाः शुक्राः गवाशिरः॥ ॥
हिन्वानो हेतृभिर्यत, आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
सीदन्तो वनुषो यथा॥
ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः।
पवस्व सूर्यो दृशे॥
(ऋग्वेद ९.६४.२८–३०; साम ६५४–६५६)

तीसरा तृच

११५–१२०(७) पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः॥
(८) अच्छा कोशं मधुश्चुतं असृग्रं वारे अव्यये।
अवावशन्त धीतयः॥
(९) अच्छा समुद्रमिन्दवो, अस्तं गावो न धेनवः।
अग्मन् ऋतस्य योनिमा॥
[ऋग्वेद ९.६६.१०–१२; साम ६५७–६५९]

६ मन्त्रों के अर्थ

❀ त्रिवृत् स्तोम के ६ मन्त्रों के अर्थ ❀

देवता—सोम, छन्द—गायत्री, स्वर—षड्ज

ऋषि—पहली तृच का असित कश्यप देवल, दूसरी का कश्यप मारीच, तीसरी का वैखानस आङ्गिरस।

सोमका अर्थ (आध्यात्मिक) परमात्मा, (आधिभौतिक) सौम्य शासक, विद्वान् और (आधिदैविक) चन्द्रमा तथा सोम औषध [गिलोय; ब्राह्मी आदि] हैं। यहाँ पर केवल परमात्मा और सोम औषध परक अर्थ दिये जाते हैं—

१. हे मनुष्यो, इस पवित्र करनेवाले, विद्वानों के ज्ञान-दान-यज्ञ करानेवाले सोम के लिए गुण गाओ।

२. स्थिर अहिंसक जन दिव्यता के लिए दिव्य रस को मधु [आनन्द-रस को ज्ञान और सोम दूध को शहद या मीठे] के साथ सेवन किया करते हैं।

३. हे राजा सोम, तू हमारी गौ [इन्द्रिय, भूमि, गाय], मानव प्रजा और अश्व [प्राण, घोड़े आदि] तथा ओषधियों [अन्न आदि] के लिए कल्याण और सुख की वर्षा कर।

४. जितेन्द्रिय, शुद्ध, सौम्य जन और सफेद, गौ-दुग्ध-मिले सोमरस प्रकाशमान कान्ति तथा सर्वत्र प्रशंसित सामर्थ्य से चमका करते हैं।

५. प्रेरकों से प्रेरित बलवान् (परमात्मा और सोम) तेज गतिवाले वीरों के समान, सर्व शक्ति से कार्य किया करता है।

६. हे कवि, सोम (ईश्वर तथा उपासक) दूर-दूर तक कल्याण के लिए अपने ज्ञान के बल पर जाते हुए आप, सूर्य के समान, सबको सत्य के दर्शन के लिए साक्षात् प्राप्त होइये।

७. हे कवि तथा ज्ञानवान् (परमेश्वर तथा उपासक) योग मार्ग पर चलने वाले तेरे वे ज्ञान को प्राप्त कराने वाले प्रयत्न उसी प्रकार स्वयं सफल होते हैं जिस प्रकार दौड़ते हुए घोड़े लक्ष्य तक पहुंचते हैं।

८. ध्यान करने वाले उपासक लोग समाप्त न होने वाले तमोगुणी परदे पर मधुर ब्रह्मरस टपकाने वाले आनन्दमय कोश को अच्छे प्रकार से प्रकट किया करते हैं और उसीकी अभिलाषा करते हैं।

९. जिस प्रकार दूध देने वाली गौएँ घरकी ओर लौटती हैं उसी प्रकार ऐश्वर्ययुक्त उपासक जन सत्य-ज्ञान के आधार आनन्द सागर परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं।

त्रिवृत्स्तोत्र की पाठशैली

पहले पर्याय में तीनों सूक्तोंकी पहली ऋचा, दूसरे पर्याय में बीच की दूसरी ऋचा और तीसरे पर्याय में अन्तिम तीसरी ऋचा ३-३ वार पढ़ी जाती है।

यद्यपि स्तोम का सामान्य अर्थ 'स्तुति' है किन्तु विष्टुति विशेष स्तुति-गान है। साम वेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण के दूसरे और तीसरे अध्यायमें इसके भेद वर्णन किये हैं। १. त्रिवृत्, २. पञ्चदश, ३. सप्तदश ४. एकविंश, ५ त्रिणव और ३. त्रयस्त्रिंश — ये ६ स्तोत्र होते हैं। उनमें बहिष्पवमान के साधन त्रिवृत् स्तोत्र की ३ विष्टुतियाँ हैं — उद्यती, परिवर्त्तिनी और कुलायिनी। १. उद्यती—पहला उद्गाता तृच की पहली ऋचा को दूसरा दूसरी को तीसरा तीसरी को ३-३ वार पढ़ता है। २. परिवर्त्तिनी—पहला उद्गाता तीनों ऋचाओं को, फिर दूसरा तीनों को, फिर तीसरा तीनों को पढ़े। ३. कुलायिनी—पहला उद्गाता तृच की तीनों ऋचाओं को १-२-३ के क्रम से पढ़े, दूसरा २-३-१ के क्रम से और तीसरा ३-१-२ के क्रम से ३-३ ऋचाओं को पढ़े।

❀ विधि ११— शंयुवाक् ❀

अध्वर्यु अग्नीध्र से — ओ३ श्रा३वय।

अग्नीध्र — अस्तु श्रौ३षट्।

अध्वर्यु होता से— स्वगा दैव्या होतृभ्यः स्वस्तिः मानुषेभ्यः शंयोः ब्रूहि।

होता— तच्छंयोरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

[शतपथ १.९.२.२६-२७]

—❀—

उदयनीय इष्टि

उदयनीय सोमयाग की अन्तिम इष्टि है। इसमें सभी विधियाँ प्रायणीय इष्टि के समान होती हैं। केवल विधि १० में त्रिवृत् के स्थान पर एकविंश स्तोम पढ़ा जाता है और अन्त में पत्नी-संयाज किया जाता है।

पत्नी-संयाज

❁ विधि ११— पत्नी-संयाज के ६ मन्त्र ❁

यह कर्म उपांशु (चुपचाप) किया जाता है। क्रमशः सोम, त्वष्टा और देव-पत्नियों के लिए ३ आहुतियाँ दी जाती हैं। यह पत्नी-संयाज दीक्षणीय इष्टि के भी अन्तमें किया जाता है।

होता दर्भ-मुष्टि को, अध्वर्यु जुहू-स्रुव को, अग्नीत् सबसे आगे आज्य-स्थाली को लेकर पश्चिमाभिमुख होकर गार्हपत्य कुण्ड के पास जायें। अध्वर्यु गार्हपत्य से दक्षिण में पत्नीके आगे ईशानाभिमुख बैठे। होता गार्हपत्य के पश्चिम में और अग्नीत् उसके उत्तर में दक्षिणाभिमुख।

अध्वर्यु होता से — सोमाय अनुब्रूहि।

होता (पुरोऽनुवाक्या)—

१२१-१२३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे ओ३म् ॥ १ ॥

[ऋ० १.९१.१६; ९.३१.४; यजु० १२.११२]

अर्थ— हे सोम (परमेश्वर, विद्वान्, वैद्य, राजन्, चन्द्र, सोम औषध), तेरा सब प्रकार से सुख-वर्षक बल हमें प्राप्त हो। तू पूर्ण उन्नत और समृद्ध रह तथा अन्न, बल, ज्ञान, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति में सहायक हो और जीवन-संग्राम में विजय करानेवाला हो।

अध्वर्यु आज्यस्थाली में से स्रुवा से जुहू में ४ बार आज्य लेकर अग्नीत् से 'आ श्रावय' कहें। अग्नीत् द्वारा अस्तु श्रौषट् कहनेपर होता 'सोमं यज' कहे। होता द्वारा निम्नलिखित याज्या पढ़े जानेपर अध्वर्यु आहुति दे—

१२४-१२५. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः,
सं वृष्ण्यानि अभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम,
दिवि श्रवांसि उत्तमानि धिष्व३ ॥वौ३षट्॥

[ऋग्वेद १.९१.१८, यजुर्वेद १२.११३]

यजमान — इदं सोमाय इदं न मम।

अर्थ — हे सोम (योगी, राजन्, सोम औषध), तेरे लिए दूध-जल और अन्न-संग्राम-वेग-बल अच्छे प्रकार से प्राप्त हों। अभिमानी शत्रुओं की नाशक, सुख-वर्षक शक्तियाँ प्राप्त हों। अमृत के लिए सब ओरसे बढ़ताहुआ तू द्यौ (आकाश-मूर्धा) में उत्तम यश-वचन धारण कर।

१२६. त्वष्टा की पुरोऽनुवाक्या —

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ ओ३म् ॥

[ऋग्वेद १.१३.१०]

अर्थ— यहां सब में व्याप्त, सब में अग्रणी त्वष्टा (परमात्मा, यज्ञाग्नि और अभियन्ता इंजीनियर) का आह्वान करता हूं। वह हमारा केवल इष्ट साधन हो।

त्वष्टा की याज्या ऋचा—

होता— ये यजामहे त्वष्टारम्।

१२७-१२८. तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नुः,
देव त्वष्टर्विरराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षः,
युक्तग्रावा जायते देवकाम३ः ॥वौषट्।

[ऋ० ३.४.९; ७.२.९]

अर्थ—हे देव त्वष्टा [ईश्वर, विद्वान्, राजा, यान्त्रिक] आप शीघ्र बलकारी, पोषक अन्न-बल-वीर्य-विद्या-यश प्रदान करते हुए, हमें दुःख से छुड़ाइये जिससे हमारे पुत्र और प्रजा वीर, कर्मण्य, उत्तम दक्ष, शस्त्रास्त्रयुक्त; विद्वानों और दिव्य गुणों की कामना करनेवाली उत्पन्न हो।

देव-पत्नियों के लिए पुरोऽनुवाक्या—

१२९-१३०. ओ३म् देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः;
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥ ओ३म्।

[ऋ० ५.४६.७; अ० ७.४९.२]

अर्थ— विद्वानों की पालना करती हुई स्त्रियाँ और राष्ट्र के अधिकारियों की पत्नियाँ तथा अग्नि आदि प्राकृतिक देव की शक्तियाँ इच्छापूर्वक हमारी रक्षा करो। वे विशेषतः शिशुओं की रक्षा और तथा संग्राम में विजय और अन्नके संरक्षण-वितरण में हमारी विशेष रक्षा करें।

जो पृथिवी -जल की शक्तियाँ हैं, तथा जो स्थल-जल-सेना में और जो प्रजा में कर्मों के सुधारने में नियुक्त हैं, वे सभी विदुषी स्त्रियाँ उत्तम प्रशंसित होकर हमें सुख-शान्ति प्रदान करें।

पूर्णिमा-अमावास्याएँ भी देवों को पालने वाली हैं। वे सूर्य-चन्द्र की शक्ति और यज्ञ द्वारा रक्षा करें।

देव-पत्नियों के लिए याज्या—

होता— ये यजामहे देवानां पत्नीः

१३१-१३२. उत ग्नाः व्यन्तु देवपत्नीः
इन्द्राणी अग्नायी अश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानीं शृणोतु,
व्यन्तु देवीर्यः ऋतुर्जनीनाम् ॥वौषट्॥
[ऋग्वेद ५.४६.८, अथर्व वेद ७.४९.२]

अर्थ— और ये देव-पत्नियाँ वाणी को प्रकाशित तथा हमारे हित की इच्छा करें। १. इन्द्राणी [विद्युत् शक्ति और स्त्री-सेनापति तथा सेनापति की पत्नी], २. अग्नायी [अग्नि की शक्ति और स्त्री-मन्त्री तथा मन्त्री-पत्नी], ३.राट् अश्विनी [प्रदीप्त प्राण-उदान, हाइड्रोजन-आक्सीजन और स्त्री-इंजीनिअर तथा इंजीनिअर की पत्नी, ४. रोदसी [वायु-शक्ति और स्त्री-दण्डाधिकारी और दण्डाधिकारी की पत्नी], ५. वरुणानी [जल-शक्ति और स्त्री-न्यायाधीश तथा न्यायाधीश की पत्नी—ये सब जनता की बात को सुनें और अपने कार्य-काल में हमारा हित करें।

एकविंश स्तोम के मन्त्र

३ मन्त्रोंसे सभी प्रकार के स्तोम बनते हैं। एकविंश स्तोम बनानेके लिए ३ ऋचाओंको निम्न प्रकार बोले—

पहले पर्यायमें पहली ऋचा ३ वार, दूसरी ३ वार, तीसरी १ वार=७ वार; दूसरे में पहली ऋचा १ वार, दूसरी - तीसरी ३-३ वार=७ वार; तीसरे में पहली, तीसरी ३ वार, दूसरी १ वार=७ वार। सब मिलाकर ३ ऋचाएँ २१ वार पढ़नेसे एकविंश स्तोम हो जाता है।

सोमयाग के प्रातः सवन में दीक्षणीय इष्टि में त्रिवृत् स्तोम और सायंसवनमें एकविंश स्तोम पढ़ते हैं।

१३३-१३६. यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥
[ऋ० ६.४८,१; साम ३५, ७०३; य० २७.४२]

अर्थ— हे मनुष्यो, तुम्हारे प्रत्येक यज्ञमें तथा प्रत्येक वचनमें समर्थ और महान् अग्नि(परमेश्वर तथा यज्ञाग्नि) का गुण-वर्णन हो। हम सभी मृत्यु-रहित, सर्वज्ञ, मित्र के समान परमात्मा की प्रशंसा करते हैं।

१३७-१३९. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुः,
दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेषु अविता भुवद् वृध
उत त्राता तनूनाम् ॥
(ऋ० ६.४८.२ साम ७०४ यजु २७.४४)

अर्थ —जिसका बल कभी नष्ट नही होता ऐसे ईश्वर और यज्ञाग्नि को हम हव्यों के दान के लिए समर्पण करते हैं, क्योंकि वह हमारा हितकारी है, बुद्धि-बल के कार्यों में रक्षक है और हमारी वृद्धि के लिए शरीरों का पालन करनेवाला भी है।

१४०. वृषा हि अग्ने अजरो महान् विभासि अर्चिषा।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि॥
(ऋ०६.४८.३)

अर्थ— हे पवित्र अग्नि, क्योंकि तू बलवान्, अजर, महान् है और निरन्तर दीप्ति तथा प्रकाशसे पवित्र करता हुआ उत्तम दीप्तियों से सबको विशेषता से प्रकाशित करता है अतः हमको अच्छे प्रकार से प्रकाशित कर।

❀ एकविंश स्तोम के लिए दूसरी तृच ❀

१४१-१४८. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतम् ,
सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति,
सोमः कलशे शतयामना पथा ॥

अर्थ— ऐश्वर्यशाली मित्र जीवात्मा मित्र परमात्मा के गन्तव्य परम पद की ओर बढ़ता है, उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता। जैसे मनुष्य मिलीं हुई कामनाओं से युक्त होता है वैसे ही वह जीवात्मा सैकड़ों ज्ञान-पथों से कलश(१६ कला-युक्त परमेश्वर)में विचरण करता है।

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः॥

भावार्थ—आप स्तोता सोम-परमेश्वरकी स्तुति करें।

आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्वपवमानोअस्रिधम्।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम्॥

भावार्थ— हे इन्दु सोम, तू हमें संयत इच्छा, अन्न-बल प्राप्त करा जो दिनमें तिगुना यश-ज्ञान-सुख दे।

ऋ.९.८६.१६-१८; साम५५७,११५२-५४,अ.१८.४.६०

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में तीसरा अध्याय

सोम की आतिथ्य इष्टि

खण्ड १—सोम का खरीदना

पूर्व दिशा में देवों ने सोम राजा को खरीदा था। इसलिये यह पूर्व में ही खरीदा जाता है। उन्होंने १३ वें मास (मलमास) में खरीदा था इसलिये वह अनुकूल नहीं है। सोम-विक्रयी अनुकूल नहीं होता, वह पापी होता है।

खरीदकर मनुष्यों के पास लाये जाते हुए सोम की दिशाएँ, वीर्य और इन्द्रियाँ नष्ट होने लगीं। उन्हें एक ऋचा से, फिर दो से, तीन से, चार से, पाँच से, छः से, सात ऋचाओं से रोकना चाहा किन्तु न रोक सके।(अन्त में) उन्हें आठ ऋचाओं से रोका और प्राप्त किया, इसलिये अश् धातु से बना 'अष्ट' शब्द यथार्थ सार्थक है।

जो यह जानता है वह अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसलिये इन (सोम प्रवहण) आदि कर्मों में ८-८ ऋचायें, इन्द्रियों और वीर्यों के रोकने के लिये बोली जाती हैं॥१॥

खण्ड २—विधि १

अध्वर्यु ब्रह्मा के लिये प्रैष (आदेश) देता है—"खरीदकर लाये जाते हुए सोम के लिये मन्त्र बोलिये।" होता निम्नलिखित मन्त्र ३ बार बोलता है—

१४९-१५० [१-३] (१) भद्राद् अभि श्रेयः प्रेहि,
बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु।
अथ ईम् अवस्य वर आ पृथिव्या
आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः॥
[तैत्तिरीय संहिता १.२.३.३]

अर्थ—इस कल्याणकारी स्थान से चलकर तू श्रेय (दूसरे सुखस्थान) को प्राप्त हो—इस प्रथम चरण के द्वारा (सोम को प्राचीन-वंश स्थान पर पहुंचाकर) यजमान को श्रेयलोक प्राप्त कराता है। बृहस्पति तेरा आगे से चलनेवाला हो—इस द्वितीय चरण से बृहस्पति=ब्रह्मवेत्ता को (सोम का) नेता बनाने से यज्ञकर्म नष्ट नहीं होता।

तीसरा चरण 'अब इसको पृथिवी के श्रेष्ठ स्थान पर रक्खो'-कह कर, सोम को देवयजन स्थान पर रखकर, चौथा चरण 'तू सर्वप्रकार वीर और वीरों-वाला होकर शत्रुओं को दूर कर'—यह यजमान के लिये कहकर पापरूपी शत्रु को दूर करता और नीचे दबाता है।

१५१ [४] (२) सोम यास्ते मयोभुवः ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नो अविता भव॥
(देखो पृष्ठ ७, सं० ३०)

अर्थ—हे सोम, दानी के लिये जो तेरी सुखकारी रक्षायें हैं, उनसे तू हमारा रक्षक हो।

१५२ [५] (३) इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
सोम त्वं नो वृधे भव॥

अर्थ—हे सोम, इस यज्ञ और वचन को सेवन करता हुआ तू आ और हमारी वृद्धि के लिये हो।

१५३ [६] (४) सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचो-विदः। सुमृडीको न आविश॥

अर्थ—हे सोम, वेदवाणी जाननेवाले हम तुझे वेदवाणियों से बढ़ाते हैं। तू हमारे लिए अच्छा सुखकारी हो। [ऋ० १.९१, ९-११]

ये तीनों सोम देवतावाली, गायत्री छन्द की तीन ऋचाएँ हैं। सोम राजा के लाते समय स्वयं गायत्री

टिप्पणी—उपलब्ध शौनक संहिताके अथर्ववेद ७.८.१ में इस मन्त्र में 'अभि' के स्थान पर 'अधि', 'अथ ईम् अवस्य' के स्थान पर 'अथ इमम् अस्या', 'शत्रून्' के स्थान पर 'शत्रुम्', 'सर्ववीरः' के स्थान पर 'सर्ववीरम्' है।

इस तृच् को सोम देवता के साथ गायत्री छन्द से समृद्ध करती है।

१५४ [७] (५) सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन,
सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विष-स्पृत् पितुषणिर्हि एषाम्,
अरं हितो भवति वाजिनाय॥
(ऋ० १०.७१.१०)

अर्थ—(प्रथम पाद) सर्व०—यश ही सोम राजा है। इसके खरीदने से सब मित्र प्रसन्न होते हैं—जो यज्ञ में धन पाने का इच्छुक होता है और जो नहीं होता (केवल यज्ञ देखने को ही आता है)।

(द्वितीय पाद) सभा०—यह सोम राजा ही ब्राह्मणों का सभासाह=सभा में जीतने वाला सखा है।

(तृतीय पाद में) किल्विषस्पृक्=पाप से बचाने वाला। यह सोम ही किल्विष से रक्षा करनेवाला है।

यज्ञ में जो श्रेष्ठता को प्राप्त किये हुए है, वही (कुछ त्रुटि से) किल्विष हो जाता है। इसीलिये कहते जाते हैं—"हे होता, अन्यचित्त होकर मन्त्र न पढ़ो।" "(हे अध्वर्यु), व्यग्र होकर अनुष्ठान मत करो—पाप को न प्राप्त होओ।" पितुषणिः=अन्न और दक्षिणा पितु है, उसे इस सोम के निमित्त (यजमान) ऋत्विजों के लिये देता है। इस प्रकार सोम को इनका अन्नसनि बनाता है।

(चतुर्थ पाद) अरं०—वह वाजिन (इन्द्रिय-शक्ति और वीर्य) के लिये पर्याप्त समर्थ हितकारी होता है।

जो ऐसा जानता है उसकी इन्द्रियाँ और वीर्य वृद्ध अवस्था तक नष्ट नहीं होते।

१५५ [८] (६) आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयम्,
दधातु नः सविता सुप्रजाम् इषम्।
स नः क्षपाभिर् अहभिश्च जिन्वतु,
प्रजावन्तं रयिम् अस्मे समिन्वतु॥
[ऋ० ४.५३.७]

अर्थ—वह देव [परमात्मा, सूर्य, सोम] हमें सब प्रकार से प्राप्त हो और ऋतुओं से घर को बढ़ाये। वह सोम उस समय प्राप्त हुआ होता है। ऋतुएँ सोम राजा के भाई हैं, जैसे मनुष्य के भाई होते हैं। [होता] उनके साथ ही इस [सोम] को बुलाता है। वह सविता [उत्पादक परमात्मा, सूर्य, सोम] अच्छी सन्तान और अन्न दे—यह आशीर्वाद को माँगना है। वह दिन-रात कृपा करे और सन्तानयुक्त धन दे—यह आशीर्वाद है।

१५६-१५७ [९] (७) या ते धामानि हविषा यजन्ति,
ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो
अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्॥
[ऋ० १.९१.१९—य० ४.३७]

अर्थ—हे सोम [परमात्मा, विद्वान्, सोम ओषधि] जो तेरे स्थान और पदार्थ, हवि से, यज्ञ को संगत करते हैं वे सब यज्ञ के चारों ओर वर्तमान हों। हमारे धन और प्राणों को बढ़ानेवाला, दुःख से तारने वाला, उत्तम वीर और वीरों से युक्त, वीरों को न मारता हुआ, कायरों को भी सुख देता हुआ तू घरों में अच्छे प्रकार गति कर [प्राप्त हो]।

दुर्य का अर्थ है घर। आते हुए सोम राजा से यजमान के घरवाले डरते हैं। होता इस ऋचा को पढ़कर शान्ति से उस [सोम] को शान्त करता है। वह शान्त होकर इस यजमान की सन्तान और पशुओं की हिंसा नहीं करता।

१५८ [१०-१२] (८) इमां धियं शिक्षमाणस्य देव,
क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम,
सुतर्माणम् अभि नावं रुहेम॥
[ऋ० ८.४२.३]

अर्थ—हे वरुण देव [परमेश्वर और अध्यापक] आप शिक्षा प्राप्त करनेवाले की इस धी [बुद्धि, कर्म], क्रतु [यज्ञ, वीर्य] और दक्ष [बल, प्रज्ञान] को अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कीजिये। जिस [धी, क्रतु, दक्ष] से सब दुरितों [पापों, व्यसनों, दुःखों] को हम पार कर जायें और अच्छी प्रकार तारनेवाली [सुक्रिया-विज्ञान, यज्ञ, वेदवाणी रूपी] नाव पर चढ़ जायें।

होता वरुण देवतावाली इस ऋचा को तीन बार पढ़कर समाप्त करता है। जब तक सोम [वस्त्र में] बँधा रहता है और यज्ञशाला के प्राचीनवंश आदि स्थान में रहता है तब तक वरुण देवतावाला रहता है। होता स्वयं ही इस मन्त्र को पढ़कर सोम को उसी

[वरुण] देवता और उसी के छन्द [त्रिष्टुप्] से समृद्ध करता है।

(मन्त्र में) शिक्षमाण से अभिप्राय यज्ञकर्ता से है। वरुण हमें क्रतु=वीर्य, दक्ष=प्रज्ञान दे। यज्ञ, की आकर्षक क्रियाएँ और वाणी ही सुतर्मा नाव है। (वहाँ) वेदवाणी रूपी नाव पर चढ़कर यजमान उसके द्वारा स्वर्गलोक (सुख-स्थान) को प्राप्त करता है।

होता उपर्युक्त रूप-समृद्ध ८ मन्त्रों को पढ़ता है। जो मन्त्र किये जाने वाले यज्ञकर्म को बताये वह रूप-समृद्ध कहाता है। उसी से यज्ञ सफल होता है। उन ८ मन्त्रों में पहले को ३ बार और अन्तिम को ३ बार पढ़ने से ८ मन्त्र १२ हो जाते हैं। १२ ही महीने संवत्सर होते हैं और संवत्सर प्रजापति होता है।

जो ऐसा जान लेता है वह इन ही प्रजापति से सम्बन्ध रखनेवाली ऋचाओं से समृद्ध हो जाता है। पहली और अन्तिम ऋचा को ३-३ बार पढ़कर होता स्थिरता (प्रबलता और अविच्छेद) के लिये यज्ञ (रूपी रस्सी) की ही गाँठों को (दोनों सिरों पर) बाँधता है ॥२॥

खण्ड ३ (सोम को गाड़ी से उतारना)

विधि २—जब सोम को गाड़ी से उतारें तो एक बैल गाड़ी में जुता रहता है और दूसरा खोल दिया जाता है। यदि दोनों को खोल दिया जाय तो यह सोम पितृ देवता वाला (पितरों के काम में आने-वाला-घरेलू) हो जाय (देवयोग्य नहीं रहे), यदि दोनों को गाड़ी में जुते रखें तो पुत्र आदि योग-क्षेम न पा सकें। वे तितर-बितर हो जायें। खुला हुआ बैल घर में स्थित मनुष्यों का रूप है और जुता हुआ बैल क्रियाओं का रूप है। इसलिये एक बैल को जुता रखते हुए दूसरे को खोलकर वे सोम को गाड़ी से उतारते हैं और योग-क्षेम दोनों को प्राप्त करते हैं।

देवों और असुरों ने इन चारों दिशाओं में युद्ध किया। वे इस प्राची दिशा में लड़े। वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे दक्षिण दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर दिशा में लड़े, वहाँ असुरों ने देवों को जीत लिया। वे उत्तर-पूर्व (ईशान) दिशा में लड़े, वहाँ देव नहीं हारे। यह दिशा अपराजिता है। इसलिए इस दिशा (ईशान) में सोम को गाड़ी से उतारने का यत्न करे-करावे। इस प्रकार ऋणरहित करने वाला स्वामी यत्न करे-करावे।

वे देव बोले— राजा के न होने से ही हम नहीं जीत पाते' अतः राजा बनावें—यह निश्चय कर उन्होंने सोम को राजा बनाया। उन्होंने सोम राजा के द्वारा सब दिशाओं को जीता। जो यज्ञ करता है वह सोम राजावाला है। गाड़ी और यजमान के पूर्व में स्थित होने पर सोम रक्खा जाता है। इससे वह पूर्व दिशा को जीतता है। उसको दक्षिण में ले जाते हैं, उससे दक्षिण दिशा को जीतता है। उसे पश्चिम की ओर मोड़ते हैं, उससे पश्चिम दिशा को जीतता है। उसको उत्तर की ओर स्थित करके सोम को गाड़ी से उतारते हैं। उससे वह उत्तर दिशा को सोम राजा के द्वारा जीत लेता है।

जो इस प्रकार जान लेता है वह सब दिशाओं को जीत लेता है ॥३॥

खण्ड ४ (सोम की आतिथ्य-हवि)

विधि ३—(पुरोडाश निर्माण)

सोम राजा के आ जाने पर उसके आतिथ्य के लिये हवि बनायी जाती है।

क्योंकि सोम राजा यजमान के घरों में आता है इसलिये यह हवि निरूपित की जाती है। सोम के अतिथि होने के कारण यह आतिथ्य है।

नौ कपालों पर संस्कृत पुरोडाश बनाया जाता है। प्राण ९ हैं (७ शीर्षस्थ प्राण और २ नीचे के भाग में स्थित)। उन प्राणों के सामर्थ्य के लिये और प्रज्ञान के लिये (पुरोडाश ९ कपालों पर बनाया जाता है)। यह पुरोडाश विष्णु देवता का होता है। विष्णु ही यज्ञ है। उसी विष्णु देवता से और उसी के अपने छन्द (गायत्री और त्रिष्टुप् की अनुवाक्या और याज्या) से यज्ञ को समृद्ध करते हैं—

पुरोऽनुवाक्या—

१५९-१६३ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥

(५ बार— ऋ० १.२२.१७; यजु० ५.१५; साम २२२, १६६९; अ० ७.२६.४)

अर्थ—विष्णु [व्यापक परमात्मा तथा सूर्य] ने

यह संसार बनाया। तीन प्रकार से स्थान निश्चित किया [द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथिवी]। समूढ [परमाणुमय जगत्] इसके पांसुर [परमाणुयुक्त आकाश] में है।

१६४ याज्या—तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्,
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था,
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
[ऋ० १.१५४.५]

अर्थ—मैं उस पराक्रमी विष्णु के प्रिय मार्ग को प्राप्त करूँ जहाँ दिव्य गुण चाहनेवाले—मनुष्य प्रसन्न होते हैं। वही इस प्रकार से हमारा बन्धु है। विष्णु के परमपद [मोक्ष] में मधु [आनन्द] का उत्स [कुआँ, जलाशय, स्रोत] है॥

खरीदे हुए सोम राजा के साथ सभी छन्द और पृष्ठ [बृहद्, रथन्तर, वैरूप आदि सामवेदोक्त पृष्ठ स्तोत्र] उसके पीछे [अनुचर होकर] आते हैं। राजा के पीछे जितने आया करते हैं उन सबके लिये आतिथ्य किया जाता है।

['अग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे गायत्री का 'सोमस्यातिथ्यमसि विष्णवे त्वा'—इससे त्रिष्टुप् का आतिथ्य किया जाता है।]

सोम राजा के आ जाने पर अग्नि का मन्थन करते हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे किसी मनुष्य राजा अथवा अन्य किसी योग्य के आने पर उसे बैल [गाड़ी में जोतने और खेती के लिये], और गौ [पालन के लिये] दिया करते हैं। उसी प्रकार यहाँ अग्निमन्थन करते हैं, क्योंकि अग्नि ही देवों का पशु है॥४॥

खण्ड ५

विधि ४—अग्नि-मन्थन

[अग्नि के लिये १३ मन्त्र—पहले तथा अन्तिम को ३-३ बार पढ़े जाने से १७ मन्त्रों का पाठ]

विधि ५—अध्वर्यु [होता से] कहता है—"मथी जाती हुई अग्नि के लिये मन्त्र बोलिए"—

वह होता सविता देवतावाली निम्नलिखित ऋचा को ३ बार पढ़ता है—

१६५ [१-३] (१) अभि त्वा देव सवितः,
ईशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥
(ऋ० १.२४.३)

प्रश्न करते हैं कि मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ने को कहा था। फिर सविता देवता का मन्त्र क्यों पढ़ दिया? इसका उत्तर—

क्योंकि सविता [परमात्मा और सूर्य] सब उत्पन्न पदार्थों का स्वामी है और सविता से प्रेरित होकर ही इस अग्नि को मथते हैं, इसलिये सविता देवता की ऋचा को पढ़ते हैं।

अर्थ—हे देव सविता, सभी स्वीकरणीय पदार्थों के स्वामी, सदा रक्षक, सेवनीय तुझको लक्ष्य करके ही हम सदा याचना करते हैं।

१६६-१६८ [४] (२) मही द्यौः पृथिवी च न,
इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥
(ऋ० १.२२.१३, य० ८.३२, १३.३२)

अर्थ—बड़ी द्यौ और पृथिवी इस यज्ञ को पूर्ण करें और हमें पोषक गुणों से पूर्ण करें॥

प्रश्न करते हैं कि 'जब मथ्यमान अग्नि के लिये मन्त्र पढ़ना है तो द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र क्यों पढ़ा?' उत्तर यह है कि 'इस उत्पन्न अग्नि को देवों ने द्यावा-पृथिवी [सूर्य और पृथिवी] से ही ग्रहण किया और आज भी ग्रहण करते हैं, इसलिये द्यावा-पृथिवी वाला मन्त्र पढ़ना उचित है।

अब अग्नि देवता और गायत्री छन्द की तीन ऋचाएँ होता पढ़ता है। अग्नि के मथने के समय अपने ही अग्नि देवता से और अपने [गायत्री] छन्द से उसे समृद्ध करता है।

१६६-१७२ [५] (३) त्वामग्ने पुष्करादधि,
अथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥
(ऋ० ६.१६.१३; य० ११.३२, १५.२२; साम ९)

अर्थ—हे अग्नि तथा विद्युत्, तुझको बुद्धिमान् अथर्वा=अहिंसक वैज्ञानिक विश्व के सिर के समान वर्तमान अन्तरिक्ष से मन्थन करके प्राप्त करता है।

१७३-१७४ [६] ४ तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः
वृत्रहणं पुर-दरम्॥

अर्थ—वृत्रोंको नष्ट करनेवाले, शत्रु-नगर विदारक तुझ अग्नि को अथर्वा का रक्षक शिष्य सुख-कारक अग्नि आदि का ज्ञाता वेद-वेत्ता ऋषि प्रकाशित करे।

१७५-७६(७)५ तमु त्वा पाथ्यो वृषा समींधे दस्युहन्तमम्।
धनञ्जयं रणे रणे ॥
(ऋ० ६।१६।१४-१५ य० ११.३३-३४)

अर्थ—प्रत्येक रण में धन जीतने वाले, रोग आदि दस्युओं को नष्ट करनेवाले तुझ अग्रणी को ही जल-अन्न-मार्गों का प्रयोक्ता, सुख-वर्धक, बलवान् पुरुष अच्छी प्रकार से प्रकाशित करता और कराता है।

इसी प्रकार वह अग्नि को उसीके देवता और उसी के छन्दों द्वारा समृद्ध करता है। "अथर्वा निरमन्थत" ऐसा कहने से मन्त्र रूप-समृद्ध हो जाता है। अर्थात् जो क्रिया करनी होती है यदि वही मन्त्र में भी वर्णित हो तो उस मन्त्र को रूप-समृद्ध कहते हैं। रूप-समृद्ध मन्त्र से ही क्रिया सफल होती है।

यदि अग्नि न उत्पन्न हो तो बाधकों को दूर करने वाली नीचे की ऋचायें पढ़ी जाती हैं—

❀ विधि ६—अतिरिक्त विधि ❀

अग्नि मन्थन में विघ्न निवारक ९ मन्त्र—

१७७. अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

अर्थ- शुद्ध कर्म वाला यह अग्नि अपनी यज्ञवेदी में मनुष्यों में प्रकाशमान हुआ, प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को नष्ट करता है।

१७८. उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे।
यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

अर्थ- यह अग्नि तब अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ बढ़ता है, घृतों के प्रति प्रसन्न होता है जब इस अग्नि को जुहू आदि पात्र संगत होते हैं।

१७९. स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

अर्थ- हवि से युक्त, मन्त्रमयी वाणी द्वारा प्रशंसनीय वह अग्नि अति दीप्त होता है, स्रुवा से सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही घृत से सिक्त किया जाता है।

१८०. घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

अर्थ—मधुर-पदार्थ-युक्त, आहुति दिया हुआ, दीप्त प्रकाशमान अग्नि घी से समृद्ध किया जाता है।

१८१ जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

अर्थ— हव्य को सर्वत्र पहुंचाने वाला; स्तुति के योग्य अग्नि देवों के लिए प्रज्वलित किया जाता है। मनुष्य उसकी प्रशंसा करते हैं।

१८२. तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत।
अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

अर्थ— हे मनुष्यो, तुम अधर्षणीय, घर के पति उस अमर अग्नि की घी तथा प्रेम से सेवा करो।

१८३. अदाभ्येन शोचिषाऽग्ने रक्षस् त्वं दह।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

अर्थ— हे अग्नि, तू अदम्य तेज से रोग-कृमियों को जला दे और यज्ञ का रक्षक होकर प्रदीप्त हो।

१८४. स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

अर्थ— वह तू अग्नि, अपने तेज से रोग-कृमियों को जला दे और बड़ी यज्ञ-वेदियों में दीप्तिमान हो।

१८५. तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥ [ऋ० १०.११८.१-९]

अर्थ—विस्तृत निवास वाले यजमान लोग हवि के वाहक, मनुष्य सम्बन्धी संघ में अत्यन्त यज्ञ-योग्य उस अग्नि को वेद-मन्त्रों के साथ प्रज्वलित करते हैं।

ये मन्त्र रोगजन्तु आदि के मारने के लिये पढे जाते हैं क्योंकि जब अग्नि उत्पन्न नहीं होता है तो बाधक तत्त्व उसे रोक लेते हैं। जब एक या दो या अधिक मन्त्र पढ़ने पर अग्नि उत्पन्न हो जाय तो नीचे का मन्त्र पढ़ें—

१८६-१८७(८)६. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।
धनञ्जयो रणे रणे॥ [ऋ० १.७४.३ साम१३८२]

अर्थ—जो प्रत्येक युद्धमें धन से जितानेवाला, वृत्र को नष्ट करनेवाला, परमेश्वर, विद्वान् तथा अग्नि दानी के धन उत्पन्न करता है, सब मनुष्य हिंसा रहित उसी के विचार को परस्पर उपदेश करें।

जो यज्ञ का रूप समृद्ध होता है उसी से यज्ञ सफल होता है। अब यह मन्त्र पढ़ते हैं—

१८८(९)७.आयं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरम्॥ (ऋ० ६.१६.४०)

मन्त्र में 'हस्त' आया है। हाथ से ही अग्नि को मथते हैं। अग्नि शिशु के समान उत्पन्न होती है।

१८६ (१०) ८. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥
—ऋ० ६.१६.४१

अर्थ—हे विद्वानो ! आप विद्वानों की रक्षा के लिये, ज्ञान वा धन के देनेवाले, तेजस्वी प्रजाओं और ऐश्वर्यों को भली प्रकार प्राप्त कराने वाले, अग्नि और अग्रणी पुरुष को अच्छी प्रकार पुष्ट करो वह अपने उचित स्थान पर स्थित हों।

यह मन्त्र उस समय के लिए उपयुक्त है जब अग्नि आहवनीय कुण्ड में डाला जाता है।

'आ स्वे योनौ निषीदतु' [वह अपने घर बैठे] का तात्पर्य यह है कि कुण्ड आहवनीय अग्नि का उचित स्थान है।

१९० (११) ९. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥
—ऋ० ६.१६.४२

अर्थ—नाना विद्याओं में प्रसिद्ध-गुरु के अधीन विद्या से सम्पन्न, प्रिय, अतिथि के समान पूज्य, गृह के पालक अग्रणी को सुखकारी स्थान पर आदर से स्थापित करो।

इस मन्त्र में 'जातं' एक (अर्थात् अग्नि) है और 'जातवेद' दूसरा (अर्थात् आहवनीय)। 'प्रियं शिशीतातिथिम्' में यह जो (मथा हुआ) अग्नि है वह दूसरे अग्नि (अर्थात् आहवनीय) का प्यारा अतिथि है। 'स्योन आ गृहपतिम्' से (ऋत्विज) अग्नि को शान्ति के साथ (आहवनीय) में स्थापित करता है।

१९१–१९२ (१२) १०.
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥
—साम ८४४, ऋ० १.१२.६

अर्थ—जैसे एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में पहुँचाता तथा ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है। वैसे ही [कवि] क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है तथा जीवात्मा के द्वारा परमात्मा का साक्षात् किया जाता है।

यह मन्त्र तो यज्ञ का अभिरूप ही है और ठीक है।

१९३ (१३) ११. त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥
—ऋ० ८.४३.१४

अर्थ—हे सर्वगतिप्रद परमात्मन् ! जिस हेतु तू अग्नि के साथ, अग्नि होकर भाषित होता है, मेधावी विद्वान् के साथ विद्वान् होकर, साधु के साथ साधु होकर, मित्र के साथ मित्र होकर प्रकाशित हो रहा हैं; अतः तू अगम्य और अबोध्य हो रहा है।

इस मन्त्र में एक अग्नि एक विप्र है और दूसरा अग्नि दूसरा विप्र। एक अग्नि एक सत्ता है और दूसरी अग्नि दूसरी सत्ता। 'सखा सख्या समिध्यसे' में एक सखा एक अग्नि है और दूसरा सखा दूसरी अग्नि है।

१९४ (१४) १२. तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरो यावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥
—ऋ० ८.८४.८

अर्थ—उत्तम कर्म एवं ज्ञानवाले, संघर्ष के स्थल व समय पर अथवा प्रतिद्वन्द्विताओं में आगे-आगे चलनेवाले, उस ज्ञान एवं कर्म शक्ति के प्रतीक अग्नि को उपासकजन अपने-अपने गृह तथा स्थान में अलंकृत करते हैं।

इस मन्त्र में 'स्वेषु क्षयेषु' का अर्थ यह है कि एक अग्नि दूसरी अग्नि का अपना ही घर है।

१९५–१९८ (१५–१७) १३.
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
—अथर्व० ७.५.१; य० ३१.१६; ऋ० १.१४.५०; १०.९०.१६।

इस मन्त्र से समाप्त करता है। देवों ने यज्ञ द्वारा ही यज्ञ किया। अग्नि द्वारा ही अग्नि में यज्ञ करके देव स्वर्ग को गये थे। 'यह पहले धर्म थे।' 'वे बड़े लोग [महिमानः] उसी स्वर्ग को प्राप्त हो गये जहाँ पहले साध्य लोग हैं। छन्द ही 'साध्य देव' हैं जो पहले अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ किया करते, व स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। वे आदित्य और अंगिरा हैं जो अग्नि द्वारा अग्नि में यज्ञ करके स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं। यह जो अग्नि की

आहुति है वह स्वर्ग में ले जानेवाली आहुति है। यदि यज्ञ करनेवाला ठीक ब्राह्मण न हो, तो भी यह आहुति देवताओं तक पहुँच जाती है। पापी से मिलकर दूषित नहीं होती।

यह तेरह मन्त्र हैं और सभी 'रूप समृद्ध' हैं। यज्ञ तभी सफल होता है जब मन्त्र यज्ञ का 'रूप समृद्ध' हो अर्थात् उसमें वही वर्णन हो जैसी क्रिया करनी है। इन तेरह मन्त्रों में पहला और अन्तिम तीन-तीन बार बोला जाता है। इस प्रकार वह सत्रह हो जाते हैं। 'प्रजापति' भी सत्रह अंगों वाला है। एक सम्वत्सर या बारह मास और पाँच ऋतुयें। प्रजापति ही संवत्सर है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजापति सम्बन्धी ऋचाओं द्वारा सफल हो जाता है। पहले और पिछले मन्त्र को तीन-तीन बार पढ़कर वह यज्ञ के आगे और पीछे में गाँठ लगा देता है जिससे वह यज्ञ बीच में से फिसल न सके।

खंड ६—आतिथ्य इष्टि

❁ विधि ७—आज्य भाग ❁

दोनों आज्य भागों की पुरोनुवाक्या यह हैं—

१९९-२०१. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन॥
—ऋ० ८.४४.१; यजु० ३.१; १२.३०

अर्थ—हे मनुष्यो, तुम लोग वायु औषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सबके उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम वा ढाक आदि काष्टों से अतिथिरूप अग्नि को नित्य प्रकाश करो फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट मधुर सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो।

२०२-२०४. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम
वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥
—ऋ० १.९१.१६; ९.३१.४, यजु० १२.११२

अर्थ—हे राजन्! विद्वन्! छात्र! सोम औषधि तू सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो, तुझे सब तरफ से वीर्यवान् पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल प्राप्त हो। तू बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्ति करने में सहायक और यत्नवान् हो।

इन दोनों ऋचाओं में आतिथ्य का वर्णन है। इसलिये यह दोनों रूप-समृद्ध हैं। ऋचा की रूप-समृद्धता यही है कि जो क्रिया करनी हो उसका उसमें विधान हो। पहली 'अतिथि' वाली ऋचा का देवता अग्नि है। दूसरी का देवता सोम है, उसमें 'अतिथि' शब्द नहीं आया। यदि सोम को सम्बोधित करनेवाली किसी ऋचा में 'अतिथि' शब्द आता तो उस ऋचा का प्रयोग किया जाता। परन्तु यह ऋचा (ऋ० १.९१.१६) भी अतिथि के ही लिये हैं क्योंकि इसमें 'आपीन' अर्थात् मोटे होने की ओर संकेत करते हैं। जब अतिथि का सत्कार करते हैं तो मानो उसे मोटा करते हैं।

प्रधान होम

❁ विधि ८—प्रधान हवि की याज्या ❁

अग्नि और सोम की पुरोऽनुवाक्या ऋचा निम्नलिखित है—

२०५. जुषाणोऽग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा॥१॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ अग्नि आज्य (घृत) को प्राप्त करता है।

२०६. जुषाणः सोमः आज्यस्य हविषो वेतु॥२॥

अर्थ—सेवन किया जाता हुआ सोम आज्य की हवि को प्राप्त करता है।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे॥ ऋ० १.२२.१७
(अर्थ देखो पृष्ठ २१, मन्त्रसंख्या १५९–१६३)

और याज्या ऋचा यह है—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
—ऋ० १.१५४.५

अर्थ— (देखो पृष्ठ २२)

यह दोनों ऋचायें विष्णु सम्बन्धी हैं। पहली में तीन पद हैं। उसको बोलकर दूसरी के चार पदों को बोलता है। इस प्रकार सात पद हो जाते हैं।

आतिथ्य यज्ञ का सिर है। सिर में सात प्राण होते हैं। इस कृत्य को करके होता यजमान के सिर में मानों सातों प्राणों को रखता है।

विधि ६

स्विष्टकृत संयाज्य

स्विष्टकृत के दो संयाज्य मन्त्र यह हैं :—

२०७. होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं रुशन्तम्। प्रत्यर्धि देवस्य देवस्य मह्ना, श्रिया त्वः अग्निमतिथिं जनानाम् ॥१॥

—ऋ० १०.१.५

अर्थ—हिंसारहित प्रत्येक यज्ञ के प्रकाशक, प्रहण करनेवाले, प्रकाश से दीप्तिमान्, श्री से बढ़ानेवाले, प्रत्येक यज्ञ देवता के लिए, विचित्र रथ के समान हव्य-वाहक, लोगों के यज्ञादि कर्म में सेवनीय तुझ अग्नि (परमात्मा, अग्रणी शासक, भौतिक अग्नि तथा यज्ञाग्नि) को हम जानें।

२०८–२०९. प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः। अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥२॥ –ऋ. ७.८.४; यजु. १२.३४

अर्थ—जो दीप्तिमान् होकर, सूर्य के समान प्रकाशित होता, महान् होकर वह मनुष्यमात्र का मार्गदर्शक प्रकाशक रूप से विख्यात सुना जाता है, जो मनुष्यों में पालक जनों को प्राप्त कर अध्यक्ष रूप से विराजता है, वह दीप्तियुक्त होकर, देवों विद्वानों में प्रशंसित, अतिथिवत् पूज्य अग्नि (परमेश्वर, सेनापति और यज्ञाग्नि) सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि चमकता है।

यह दोनों अतिथि सम्बन्धी ऋचायें हैं। इसलिये रूप-समृद्ध हैं। जो ऋचायें रूप-समृद्ध होती हैं वे यज्ञ के लिए ठीक होती हैं। क्योंकि ऋचाओं में वही बात होती है जिसको कहना होता है।

यह दोनों त्रिष्टुभ् हैं इसलिये इन्द्र की शक्ति पाने के लिये ठीक हैं।

इळा भाग

विधि १०—इळा का भक्षण

यह अवशिष्ट इडा भाग खाने से कृत्य समाप्त होता है। देवों ने अतिथि-इष्टि के अन्त में यज्ञ शेष खाया। उसी से वह सन्तुष्ट हो गये। इसलिये इस इष्टि की अन्तिम क्रिया यज्ञ-शेष इळा का भक्षण है।

इस इष्टि में प्रयाज आहुतियाँ दी जाती हैं, अनुयाज नहीं। प्रयाज और अनुयाज दोनों ही प्राण हैं। शिर के प्राण प्रयाज हैं। जो शरीर के निचले भाग के प्राण हैं वह अनुयाज हैं। जो अनुयाज आहुतियाँ देता वह ऐसा ही होगा मानों नीचे के प्राणों को काटकर शिर में रख दे। अर्थ यह है कि शिर के प्राण और निचले प्राण सब एक ही स्थान पर मिलें। इसलिये इस इष्टि में यदि अनुयाज न हों, केवल प्रयाज ही हों तो अनुयाज करनेवाले का अभिप्राय भी सिद्ध हो ही जाता है।

❀ पहली पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त ❀

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री कृत ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

—❀—

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में चतुर्थ अध्याय

प्रवर्ग्य इष्टि प्रकृष्ट वर्ग की सन्तान प्राप्त्यर्थ गृहस्थाश्रम-क्रिया- यज्ञ

खण्ड १ (१८)

प्रवर्ग्य यज्ञ देवों के पास से यह कह कर चला गया कि मैं तुम्हारा अन्न नहीं बनूंगा। देव बोले— तू मत जा। तू हीं हमारा अन्न हो। यह कह कर उसका अङ्ग भङ्ग कर दिया। अतः वह इन के बिए प्रभावशाली नहीं रहा। वे देव बोले— यह विशेष बाधा-युक्त यज्ञ पर्याप्त शक्तिशाली न होगा अतः इसे पूर्ण करना होगा। और इसे साधन-सम्पन्न करके अश्विओं से कहा—

विधि १

इसकी चिकित्सा करो। दोनों अश्वी(माता-पिता, सूर्य-चन्द्र, प्राण-अपान) देवों के वैद्य और अध्वर्यु हैं, अतः दोनों अध्वर्यु (अध्वर्यु और प्रति-प्रस्थाता) घर्म (गृहाश्रम के कृत्य नामक यज्ञ) के साधन जुटा कर कहते हैं— हे ब्रह्मा, हम प्रवर्ग्य करेंगे। हे होता, तुम स्तुति-मन्त्र पढ़ो॥ १॥

खण्ड २ (१९)

विधि २— होता आरम्भ करता है—

२१०. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्
विसीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥१॥
[यजु० १३.३, आ० श्रौ० ४.६]

अर्थ— ब्रह्म सब का जनक, विज्ञाता, विस्तृत, विस्तार करनेवाला, कामना-योग्य है, सृष्टिके आरम्भ में सीमा-युक्त सूर्यादि लो बनाकर व्याप्त हो रहा है। वह उपयुक्त, अन्तरिक्ष-स्थित लोकों में व्यापक होकर व्यक्त-अव्यक्त जगत् के स्थान आकाशको खोलता है।

ब्रह्म ही बृहस्पति है, ब्रह्म से ही होता इस यज्ञ की चिकित्सा करता है।

२११. इयं पित्र राष्ट्र्‌येत्यग्रे प्रथमाय जनुषे भूमनेष्ठाः। तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्ति प्रथयस्य धासेः॥ २॥ [आश्व० श्रौत० ४.६]

इस से वाणी को धारण कराता है क्योंकि वाणी ही राष्ट्री है।

२१२. महान् मही अस्तभाय द्विजातो
द्यां पिता सद्म पार्थिवं च रजः।
सबुध्नादाष्ट जनुषाभ्युग्रं
बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्॥३॥
(आ० श्रौ० ४.६)

यह ऋचा ब्रह्मणस्पति की है। ब्रह्म ही बृहस्पति है। होता ब्रह्म से ही इसकी चिकित्सा करता है।

२१३. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥४ (य० ३.२५)

यह सविता के प्रति है। प्राण ही सविता है। इस प्रकार इसमें प्राण धारण कराता है।

अर्थ— मैं उस सविता देव (परमात्मा तथा सभाध्यक्ष) की अर्चना करता हूं जो द्युलोक और पृथिवीमें रसों का उत्पन्न करनेवाला, कवि, सर्वज्ञ, सब विद्या से युक्त, सच्चे ऐश्वर्य वाले, रमणीय विज्ञान को धारण करने वाला, प्रिय और मान करने योग्य है; जिसका संसार में उत्तमरूप और कान्ति प्रकाशित है, जो ज्योतिर्मय लोकों को अपने वश में रखने वाला,

उत्तम प्रज्ञा और कर्मवाला है, जिसकी कृपा सुख को प्रजाओं के लिए उत्पन्न करती है। हे सविता, मनुष्य तेरी उपासना करें, तू प्राणियोंको जीवन प्रदान कर।

प्रवर्ग्य की चिकित्सा

२१४-२१५. सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ५
(ऋ० १.३६.९; य० ११.३७)

इस मन्त्र से वे प्रवर्ग्य को बैठाते हैं।

अर्थ—हे श्रेष्ठ विद्वान् ,विराजमान हो, तू महान् है देवों का कमनीय होकर पवित्र बन। निर्मल, दर्शनीय, दुष्ट-हिंसक तू सुन्दर स्वरूप को सिद्ध कर।

२१६. अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्राः
वपावन्तं नाग्निना तपन्तः।
पितुर्न पुत्रः उपसि प्रेष्ठः
आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥६ (ऋ० ५.४३.७)

यह घी की मालिश के लिए अभिरूप व समृद्ध है।

अर्थ—जिस विद्या-बीज-युक्तके समान विद्यार्थी को आगके समान ब्रह्मचर्यसे तपाते हुए विद्वान् प्रसिद्ध करते हुए प्रकट करते हैं, वह पिता के पास में पुत्र के समान अत्यन्त प्रिय यज्ञ वा तप विद्वान् को सत्य-युक्त करता हुआ उत्तम रीति से प्राप्त हो।

२१७. पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः। समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥ ७ ॥

२१८. पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः। तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषाम् ऋतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥ ८ ॥(ऋ० १०.१७७.१-२)

अर्थ—ईश्वर की माया से व्यक्त जीव को ज्ञानी मन से देखते हैं। क्रान्तदर्शी ईश्वर में अन्दर विशेषतः देखते हैं। ज्ञानी जन सत्य के पद को चाहते हैं।

जीवात्मा वाणी को मन से धारण करता है, उसे प्राण शरीर में प्रेरित करता है, उस द्योतमान, मनकी इच्छारूप सुखद वाणीको कवि अमृतके पदमें रखते हैं।

२१९-२२०. यो नः सनुत्यो अभि दासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्। तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस् तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥९॥

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्कैभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा विभाति ॥१०
(ऋ० ६.५.४-५)

अर्थ—हे मित्र-पूज्य तेजस्वी, जो छिपकर हमारा नाश करे, अन्दर आकर मारे उसे तू युवा बलवानों द्वारा तप से तपा और तप से तपस्वी होकर तप कर।

हे अमर, बल के प्रेरक, जो यज्ञ, मन्त्र-स्तुतियों से अच्छी तरह दीप्त तुझे दान देता है वह ज्ञानी धन-यश बल और ज्ञान से विशेष चमकता है।

२२१-२२२. भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः। पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ ११ ॥

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य। तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ १२ [ऋ० ३.१८.१-२]

अर्थ हे अग्नि, तू हमें मिल कर जैसे सखा सखा के लिए और माता-पिता पुत्र के लिए वैसे ही कार्य-साधक हो, तथा मनुष्यों में द्रोही और उलटे चलने वाले शत्रुओं को सन्तप्त कर ॥ ११

हे वसु, चेतन अग्नि, तू अन्दर के शत्रुओं को, दूसरे हिंसक की अभिलाषा को और नासमझों को सन्तप्त कर। तेरे युवा मनुष्य विशेष स्थित रहें ॥ १२

ये उपर्युक्त ६ ऋचाएँ यज्ञ में रूप-समृद्ध हैं।

दुष्टों का बध हो

आगे ५ ऋचाएँ राक्षसों (दुष्टों, रोग-क्रिमियों के मारने के लिए निर्देशक हैं—

२२३-२३२ [ऋ० ४.४.१-५; यजु० १३.९-१३]

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः। तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥

अर्थ— हे शूर, तू पृथ्वी के समान दृढ़ बल प्राप्त कर, राजा के समान पुरुषों से युक्त हो कर हाथी से यात्रा कर, वेग से जाने वाली सेना के पीछे आता हुआ सन्तापकारी शस्त्रों से दुष्टोंको छिन्न-भिन्न कर। १३

हे अग्रणी, तेरे घूमते हुए शस्त्र वेग से गिरें, बल से शत्रुओंका पीछाकर और सब ओर शस्त्र छोड़।१४

हे राजन्, तू शीघ्रकारी होकर अपने चरों को सब ओर भेज और इस प्रजाका अदम्य पालक हो। जो पापी हम से दूर या पास में व्यथित करने वाला हो वह तुझे कभी न हरा सके। १५।

हे तेज शस्त्र धारी सेना-नायक, उठ, सेना का विस्तार कर, शत्रुओं को सन्तप्त कर। हे तेजस्वी, जो हम से शत्रुता करे उसे नीचा कर सूखी लकड़ी-समान जला डाल। १६

हे अग्रणी शासक, आप हम से ऊँचे होकर शत्रु-प्रतिरोध करें, दिव्य शस्त्रास्त्रों का आविष्कार करें, स्थिर सेना का विस्तार करें और बन्धु तथा अबन्धु सभी शत्रुओं का विनाश करें। १७

२३३-२३४.परित्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥१८॥
(ऋ० १.१०.१२ यजु० ४.२९)

अर्थ— हे स्तुति-योग्य, ये सब वाणियाँ आप के सबओर प्राप्त हों, वृद्ध आपके अनुकूल बढ़ें तथा प्रिय एवं प्रीति बढ़ाने वाली हों।।

२३५-२३६. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा
मिथुना या सपर्यतः। असंयत्तो व्रते ते क्षेति
पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥१९॥
(ऋ० १.८३.३ अथ० २०.२५.३)

अर्थ— हे ईश्वर जो पति-पत्नी संयत हो तेरी आज्ञा पालते हैं उन दोनों के लिए वेदोपदेश धारण करा। जो असंयमी तेरे व्रत में रहता है उस दानशील यज्ञकर्ता की कल्याण-कारिणी शक्ति मष्ट होती है।

२३७-२३८. शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे
अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि
स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥२०॥
(ऋ० ६.५८.१ साम ७५)

अर्थ— हे स्वतेजः-अन्न-धारी, पोषक पति-पत्नी, तुम दिन-रात, सूर्य-पृथ्वी के समान विशिष्ट सु-रूप हो, शुक्र (वीर्य-रज) भिन्न है। दोनों मिलकर रहो, यज्ञ करो, सब शक्तियों की रक्षा करो, यहाँ तुम्हारा दान-आदान कल्याणकारी हो।

२३९-२४२. अपश्यं गोपामनिपद्यमानम् आ च परा
च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्व-
सानः आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ २१ ॥
(ऋ.१.१६४.३१;१०.१७७.३; य.३७.१७ अ.६.१०.११)

अर्थ—गोपा (वेद-वाणी-इन्द्रिय-पृथिवी-किरणों के रक्षक स्वामी) परमात्मा-जीवात्मा-विद्वान्-सूर्य को मैं देखता-समझता हूं, जो अविनश्वर है और पास तथा दूर मार्गों से विचरण करता है वह साथ रहने वाली, अनुकूल और नाना प्रकार की गति-शक्तियों को (जीव योनियों को और सूर्य किरणों को) धारण करता हुआ भुवनोंमें अच्छे प्रकार वर्तमान रहता है।

ये सब मिलकर २१ ऋचाएँ होती हैं। इस पुरुष के भी २१ अङ्ग हैं— हाथ-पैर की २० अङ्गुलियाँ और १ आत्मा। इस प्रकार पुरुष २१ ऋचाओं से अपने को ही संस्कृत करता है॥ २॥

खण्ड ३ (२०)

विधि ३—९ पावमानी ऋचाएँ

२४३-२५२— ऋ० ९.७३.१-६

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन् ऋतस्य योना समरन्त नाभयः। त्रीन् स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्॥ १॥

अर्थ—सृष्टि में गतिशील, रसरूप परमात्मा में बद्ध जीव चेष्टा करते और संगत होते हैं। प्राण-दाता ईश्वर ने कार्य करने के लिए मूर्धा के ३ भाग बनाये जिन से सत्य की नावें सुकृती को पार कर देती हैं।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्माविधि वेना अवीविपन्। मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

अर्थ— महान् जन संगत होकर अच्छी तरह से स्तुति करते हैं। ऐश्वर्य के इच्छुक समुद्र की लहर पर दुष्टों को कँपाते हैं और ज्ञान की धाराओं से स्तुति करते हुए आत्मा के प्रिय ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं।

पवित्रवन्तः परिवाचमासते पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम् महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्। ३

अर्थ—पवित्र कर्मवाले वेद-वाणी का आश्रय लेते हैं, इनका पिता ईश्वर व्रत की रक्षा करता है। वरुण बड़े समुद्र को पार करता है। धीर जन ही उसे हृदयों में धारण कर सकते हैं। ३

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः । अस्य स्पशो न निमिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४

अर्थ—ज्ञानी-निःसङ्ग-मधुरभाषी जन सुखस्वरूप ईश्वर में मग्न हो स्तुति करते हैं। इसके शीघ्र-कारी चर कभी नहीं सोते। स्थान-स्थान पर दुष्टोंके दण्ड-दाता नियुक्त हैं। ४

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन् ऋचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान् । इन्द्र-द्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥

जो पिता-माता (तथा तत्तुल्य गुरु) से विद्या पढ़ते हैं वे ज्ञान से तेजोमय होकर कुकर्मियों को सन्तप्त करते हुए बुद्धि से आत्मा के द्वेषी अज्ञान के आवरण को दूर करके महान् तेजोमय ईश्वर के सुख को प्राप्त करते हैं। ५

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरन् श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः । अधानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥

अर्थ—जो श्रेष्ठ मान्य पुरुष से ज्ञान पाते हैं वे वेद से नियन्त्रित होकर परमात्मा को मानते हैं और जो अन्धे-बहरे (अविवेकी) सत्य के मार्ग को छोड़ देते हैं वे दुष्कर्मी संसार-सागर को नहीं तैर सकते। ६

सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः । रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥

अर्थ— मनीषी कवि हजारों आनन्द-धारा-युक्त व्यापक, पवित्र परमात्मा में प्रयुक्त कर वाणी पवित्र करते हैं। इन में कुछ रुद्र (दुष्टों को रुलानेवाले) होकर प्रेरक-अद्रोही-बुद्धिमान्-पूज्य-सुदर्शन-कर्मयोगी होते हैं। ७

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे । विद्वान्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८

सत्यका रक्षक सुकर्मी किसीसे नहीं दबता, अपने अन्तःकरण में ३ [मन-वाणी-कर्म] को पवित्र रूप में रखता है। यह विद्वान् सब भुवनों को देखता और कर्तव्य-विमुख नास्तिकों को दण्ड देता है। ८

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया । धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥

अर्थ— प्रभु की माया से कर्मयोगी के पवित्र हृदय में और जीभ के आगे सत्य का तन्तु फैला रहता है। धीर ही उसे पाकर उपयोग करते हैं। जो असमर्थ है वह गढ़े में गिरता है। ९

प्राण ९ हैं। इन ९ ऋचाओं से वह प्राण स्थिर करता है। अब वह कहता है—

प्राण पवित्र बनाओ

२५३-२५४. अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥

(ऋ० १०.१२३.१ य० ७.१६)

वेन का अर्थ नाभि और प्राण भी है। नाभि से ऊपर अन्यप्राण चलते हैं (वेनन्ति) और नीचे अन्य। यह प्राणका आधार होकर मानो कहती है 'न डरो'। इस मन्त्रसे प्राणशक्ति धारण कराता है। अब कहता है—

२५५-५६ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ (ऋ. ९.८३.१ साम ५६५)

हे ज्ञान के रक्षक, आपका पवित्र ज्ञान फैला हुआ है जिसको कच्चा मनुष्य नहीं पा सकता, उसे तपस्वी ही पाते हैं।

२५७. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् । अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥ (ऋ ९.८३.२)

तपोमय ईश्वर का पवित्र स्वरूप द्यौ (ज्ञान) में फैला हुआ है जिसके चमकते हुए जीवन-तन्तु स्थिर होकर शोधक की रक्षा करते हैं, वे द्यौ में स्थित हैं।

वियत्पवित्रं धिषणा अतन्वत....(आ०श्रौ ४.६.३)

इन ३ मन्त्रों में आया 'पवित्र' शब्द प्राणों को बताता रहा है। होता इन से नीचे के [रेतः, मूत्र, पुरीष] के हितकारी प्राणों की शक्ति बढ़ाता है।

खण्ड ४ (२१)

२५८. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपम— श्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥ (ऋ० २.२३.१)

हम गणपति, कवि को पुकारते हैं। हे ब्रह्मणस्पति आप हमारी बात सुनते हुए अपनी रक्षाओं के साथ यहाँ विराजिए।

इस मन्त्र [या इससे आरम्भ होनेवाले १६ ऋचा के सूक्त] का देवता ब्रह्मणस्पति है जो ब्रह्म ही है, होता उसी से चिकित्सा करता है।

२५९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामाऽऽनुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः॥ [ऋ १०.१८१.१]

अर्थ— विस्तृत और विस्तारयुक्त जो अनुष्टुप् छन्दों से प्राप्य हवि है उस रथन्तर साम को वसिष्ठ [जितेन्द्रिय पुरुष] धाता, सविता, विष्णु से पाता है।

इस से आरम्भ होनेवाले सूक्त का देवता घर्म है, अतः इससे होता प्रवर्ग्य को सुन्दर बनाता है।

इसी सूक्त के आगे के मन्त्र २, ३ ये हैं—

२६०. अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद् यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो-र्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः॥

यज्ञके गूढ़ रहस्य को विद्वान् ही पाते हैं। भरद्वाज [ज्ञान-धारक] बृहत् साम को धाता-सविता-विष्णु-अग्नि से पाता है।

२६१. तेऽविन्दन् मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन् घर्ममेते॥

वे ध्यानी जन देवों से मिलनेवाले सेवनीय, श्रेष्ठ यजु [यज्ञ] मन से प्राप्तकर घर्म [तप-ज्ञान-प्रकाश] को विद्यु त्-सूर्य-परमात्मा से पाया करते हैं।

इन में रथन्तर और बृहत् शब्द के आने से होता इनको पढ़कर बृहद्-रथन्तर साम से युक्त करता है।

होता आगे उद्धृत प्रजावान् प्रजापति ऋषि का ऋ. १०.१८३ पढ़ कर सन्तान को धारण कराता है—

२६२-६४. अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्। इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम॥ १

हे पुत्र-कामना-युक्त, मैं तुझ ज्ञानी-तपस्वी पति को मन से देखती हूं, तू ऐश्वर्य से सन्तान-युक्त हो।

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम्। उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे॥

हे पुत्र-कामना वाली, मैं ऋतु-काल में सौभाग्य-सम्पन्न तुझे मन से देखता हूं। तू आदरणीया युवति, मुझ पति के पास सन्तान-युक्त हो।

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः। अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान्॥

मैं [ईश्वर] ओषधियों में गर्भ धारण कराता हूं, मैं सब भुवनों के अन्दर हूं। मैं पृथ्वी पर प्रजाको और स्त्रियोंकेलिए, स्वस्वपत्नियोंमें पुत्रोंको उत्पन्न करता हूं।

अश्विओं का प्रिय धाम

विधि ६— अब होता ६ छन्दों का ऋ. १.१२० सूक्त पढ़ता है—

२६५. का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः। कथा विधात्यप्रचेताः॥ १

हे पति-पत्नी, तुम दोनों में देन-लेन-व्यवहार में कौन सिद्ध है और कौन क्यों मूर्खता करता है?

२६६. विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः। नू चिन्नु मर्ते अक्रौ॥ २

अज्ञानी मूर्ख जन विद्वानों से ही पूछे और अन्य कार्य न करनेवाले से भी पूछे [कि क्यों नहीं किया]

२६७. ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य। प्रार्चद् दयमानो युवाकुः॥ ३

उन दोनों विद्वान् अध्यापक-उपदेशक पति-पत्नी को हम स्वीकार करें, वे ज्ञानोपदेश करें और दयालु संयोजक दोनों का सत्कार करे।

२६८ वि पृच्छामि पाक्या न देवान् वषट्कृतस्याद्-भुतस्य दस्रा। पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः॥ ४

पक्के देवों के समान दुःख-हर्ता तुम दोनों से यज्ञके सम्बन्धमें प्रश्न करताहूं, तुम हमारी रक्षा करो।

२६९. प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्। प्रैषयुर्न विद्वान्॥ ५

जो वाणी तेजस्वी के घोष के समान है, जिससे कुशल अस्त्र-क्षेपक के समान विद्वान् आप दोनों का सत्कार करता है उस वाणी से मैं शोभित होऊँ।

२७०. सुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्, आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६

हे आँखों के समान, धर्म-रक्षक अश्विओ, तुमसे विद्या पाये जन का रक्षक ज्ञान लेता हुआ मैं उपदेश भी करूँ।

२७१. युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् । ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७

हे घर बसानेवाले दम्पती, आप बड़े ऐश्वर्य के दाता होकर रक्षक बनो, पापी भेड़िये से हमें बचाओ।

२७२. मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

हमें किसी अमित्र के लिए न रक्खें, हमारे घरों में गौएँ कम न हों, स्तनोंसे दूध देनेवाली शिशु-रहित न हों।

२७३. दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ६ ॥

गौएँ दुःख-निवारण और मित्र-पालन के लिए दूध दें, आप हमें भूमि, अन्न, ज्ञान के पाने के लिए प्रेरणा दें।

ये विविध छन्दों की ९ ऋचाएँ इस यज्ञ का मध्यभाग हैं जहाँ छोटे-बड़े अङ्ग होते हैं। कक्षीवान् ने अश्विओं के प्यारे स्थान (सुख) को पाया और परम लोक को जीता। जो ऐसा जान लेता है वह अश्विओंका प्यारा स्थान पाता और परम लोक की विजय करता है।

घर्म (गृहाश्रम यज्ञ)

विधि ६—अब होता नीचे लिखी (ऋ० ५.७६.१–५) ऋचाएं बोलता है —

२७४–७५. आभात्यग्निरुषसामनीकं उद् विप्राणां देवया वाचो अस्थुः । अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातम् पीपिवांसम् अश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥ (साम १७५२)

हे रथ आदि सवारियों में चलने वाले पति-पत्नी, तुम यहाँ नीचे देखकर चलो। उषाओं की सेना-रूप अग्नि (सूर्य) चमक रहा है, विद्वानों की दिव्य वाणियाँ स्थित होरही हैं। तुम यहाँ वृद्धि-युक्त घर्म (गृहाश्रम के कृत्य नामक यज्ञ) को अच्छे प्रकार सम्पादित करो।

२७६–७७. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठा अन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह । दिवाभिपित्वे अवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥ (साम १७५३)

हे पति-पत्नी' तुम संस्कार वाली सन्तान क्यों नहीं उत्पन्न करते ? निश्चय ही तुम पास रहकर स्तुत्य हो। दिन में रक्षा के साथ रहो और दान-शील के लिए अन्न-रहित के प्रति कल्याण-कारी होओ।

२७८–७९. उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य । दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥ (साम १७५४)

हे अश्विओ, तुम प्रातः गौ-दोहन-काल, सूर्योदय मध्य दिन और रात के समय शान्ति-दायक रक्षा के साथ आओ, अभी रक्षा-साधन नहीं हुए हैं।

२८०– इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् । आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

हे पति-पत्नी, तुम दोनों का यह उत्तम प्रकाश में निवास स्थान, घर है। बड़े आकाश, जल, पहाड़ से अन्न-रस-बल को ग्रहण करते हुए आया-जाया करो।

२८१–८४ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम । आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

[ऋ० ५.४२.१८, ४३.१७, ७६.५, ७७.५]

हम स्त्री-पुरुषों के नवीन, सुख-दायक उत्तम व्यवहार से संगति करें। वे हमें ऐश्वर्य, वीर पुत्र, सब अमृत सौभाग्यों को दें और दिलावें।

पहले मन्त्रके चौथे चरण में 'अश्विना घर्ममच्छ' शब्द यज्ञ के सर्वथा उपयुक्त हैं। जिनमें रूप-समृद्धता होती है उन्हीं से सफलता होती है।

ये मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द में हैं जो शक्ति है अतः इनसे होता शक्ति धारण कराता है।

इन्द्रिय-शक्ति-धारण

अब होता ऋ० २.३९ के ८ मन्त्र पढ़ता है—

२८५– ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ । ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

२८६. प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा ऽजेव यमा वरमा सचेथे । मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दंपतीव क्रतुविदाजनेषु ॥

२८७, शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः । चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३॥

२८८. नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव। श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४

२८९. वातेवाजुर्या नद्येव रीतिः रक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् । हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५

२९०. ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः । नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६

२९१. हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि । इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७

२९२. एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् । तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८

अर्थ— हे पति–पत्नी, आप उपदेशक के समान अर्थ का उपदेश करें, जैसे गिद्ध पेड़ का, वैसेही आप धनी का आश्रय लें। यज्ञ में ब्राह्मणों के समान वेद मन्त्रों का उच्चारण करें, दूतों के समान उत्तम वचन बोलें और उत्तम संतान उत्पन्न करने वाले अनेक पदार्थों के स्वामी होकर जीवन बितावें ॥ १

तुम दोनों रथ में लगे घोड़ों के समान प्रातः ही सब कार्य पूरे करने वाले वीर बनो। तुम दो आत्मा मिलकर श्रेष्ठ धन पाओ। दो मैना पक्षियों के समान शरीरसे सुन्दर तुम दम्पती यज्ञ आदि कर्म करते हुए मनुष्यों में मिलकर रहो । २

तुम पर्वत-शिखरों के समान ऊँचे होकर रहो, दो खुरोंके समान मिले हुए साधनों द्वारा वेगसे आगे बढ़ो। प्रतिदिन चकवा-चकवी के समान मधुर-भाषी और रथ में जुड़े दो बैलों के समान बलवान् होकर आगे बढ़ो । ३

नावों, रथ के जुवों, पहियों और धुरों के समान तुम दोनों हमें दुःख से पार करो। रक्षक कुत्तों की तरह हमारे शरीर को बचाते हुए, कवचों के समान नाश से बचाओ। ४

तुम दोनों वायु के समान बलवान्, नदियों के समान मिलने वाले, आँखों के समान दृष्टि-युक्त होकर आगे बढ़ो। हाथ-पैर के समान शरीर के उपयोगी होकर हमें अच्छे ऐश्वर्य की ओर ले चलो। ५

मुख में ओठों के समान मधुर बोलते हुए, तुम दोनों बच्चे के लिए माता के स्तनों के समान पुष्ट करो। नाक के छेदों के समान हमारे शरीर के रक्षक और कानों के समान अच्छा सुनने वाले रहो। ६

तुम दोनों दो हाथों के समान शक्ति धारण करो, आकाश-भूमि के समान लोगोंका पालन करो, कर्तव्य बोधक इन वाणियोंको वैसे ही तेज करो जैसे सानपर छुरा तेज किया जाता है। ७

हे दम्पती, विद्वान् ऐसा उपदेश करें कि तुम उन्हें मानते और परस्पर सेवा करते हुए बढ़ो। सुवीर हम यज्ञ तथा संग्राम में बड़े उत्तम वचन बोला करें। ८

इस सूक्त में आँख–कान–नाक का वर्णन होने से इस को पढ़कर इन्द्रियों में शक्ति धारण कराता है।

यह सूक्त भी त्रिष्टुप् में है जो शक्ति है। होता इसे पढ़ कर शक्ति धारण कराता है।

अश्वी रक्षा के साथ आयें

विधि ९—होता २५ ऋचाओं का ऋ० १.११२ अश्वि-सूक्त पढ़ता है जिसकी पहली ऋचा यह है—

२९३. ईळे द्यावा-पृथिवी पूर्वचित्तये अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये। याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विनागतम् ॥

इसमें आये 'अग्निं घर्मं सुरुचं' शब्दों से इस में रूप-समृद्धता और सफलता है। यह जगती छन्द में है, जिसका सम्बन्ध पशुओंसे है, इससे होता पशुओंसे सम्पन्न करता है। इस में बताया गया है कि अश्विओं ने यह यह दिया—इससे होता उन सभी वस्तुओं को दिलाकर इस यज्ञ को समृद्ध करता है।

विधि १०—अब वह यह मन्त्र बोलता है—

२९४–९६. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ (ऋ० ९.८३.३, साम ६७३)

इसमें 'रुच' (दीप्ति) का वर्णन है अतः इससे वह दीप्ति-युक्त करता है।

विधि ११—वह नीचे के मन्त्रसे समाप्त करता है—

२९७-९८. द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान् अरिष्टेभि-

रश्विना सौभगेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ [ऋ १.११२.२५, य ३४.३०]

गौ की रक्षा और सेवा हो

इसमें अरिष्टेभिः आदि शब्द आये हैं, उनसे होता सभी आवश्यक सामग्री से युक्त कर देता है ॥

यह पहला पटल समाप्त हुआ । ४

खण्ड ५, पटल २

विधि १२—इस की अन्तिम २१ ऋचाएँ ये हैं—

२९९-३०१ उपह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् । श्रेष्ठम् सवं सविता साविषन् नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्रवोचम् ॥१

(अ० ७.३७.७, ६-१०.४ ऋ १.१६४.२६)

३०२-४ हिङ् कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् । दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्ये सा वर्धतां महते सौभगाय ।२। ऋ०१६४.२७,अ७ ३७.८,६.१०.५

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ॥ ३ ऋ० १. २४. ३(देखो सं०१६५)

३०५-६ समी वत्सं न मातृभिः सृजता वयसाधनम् । देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥४।ऋ० ६-१०४.२सा११५८

३०७-८ सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥५ ऋ६.१०५.२सा१०१६

३०९-११ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि । यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ६

ऋ० १.१६४.४९, अ० ७.१०.१, य० ३८.५

३१२-१३ गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन् मातवा उ । सृक्वाण धर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥७

ऋ० १.१६४.२८ अ० ९१०.६

३१४-१५ नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥८ ऋ ९.११.६ सा १४४६

३१६ संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् । रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ९ ऋ १.७२.५

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिवः ॥१० ऋ ८. ७२.८

३१८ दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥ ११ ऋ ८.७२.७

३१९ समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आगतम् । दुह्यते गावो वृषणेह धेनवो दस्रामदर्न्ति कारवः ॥ आ४.७

३२० समिद्धो अग्निर्वृषणारतिर्दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु । वयं हि वां पुरुतमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १३ (आ० ४.७)

३२१ तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः । उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥

३२२ आतमन्नभो दुह्यते घृतं पयः ऋतस्य नाभिरमृतं विजायते । समीचीनास्सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः । १५ (ऋ ६.७४.४)

३२३-२४. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवामन्तस्त्वेमहे । उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा । १६

(ऋ १.४०.१, य ३४.५३)

३२५- अधुक्षत् पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्तरश्मिभिः । !१७ (ऋ ८.७२ १६)

३२६, उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे रसंच पय उस्रियायाः । विनाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु द्यावा पृथिवी सुप्रणीतिः ॥ १८ (आ० ४,७)

३२७-२९. आसुते सिंचत श्रियम् रोदस्योरभि श्रियम् रसा दधीत वृषभम् । १९

(ऋ० ८.७२१३, य० ६१.२१ साम १४८०)

३३०-३१, आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मम् सिंचादथर्वणि ॥ २०

(ऋ ८-९ ७ अ २०-१४०-२)

३३२, समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रम् पर्वशो दधुः । २१ (ऋ ८-७-२२)

ये इक्कीस ऋचाएँ यज्ञ के अनुरूप और समृद्ध हैं क्योंकि इनमें गौ और उसके दुहने आदि का वर्णन है ।

विधि १३— महावीर-पात्र लेकर सब के उठ खड़े होने पर होता सब के पीछे खड़ा होकर कहता है—

३३३. उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः । घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥ (ऋ० ६-७१-१)

अब वह आगे जाकर कहता है —

३३४-३७ प्रैतु ब्राह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥
[ऋ० १.४०.३, सा ५६, य ३२.८९, ३७.७]

अर्थ— वेदज्ञ पुरुष और विदुषी स्त्री प्रगति करे, देव पंक्ति में श्रेष्ठ अच्छे वीर पुरुष को यज्ञ में लावें।

२१ मन्त्रों के अर्थ

१— मैं दूध देने वाली गाय के गुणों का वर्णन करता हूँ। अच्छा कुशल हो इसको दुहता है, दीप्त तेजस्वी सूर्य के समान आचार्य श्रेष्ठ ज्ञान और यज्ञ देता है, उसका मैं उपदेश करता हूँ।

२— हिंकारती हुई, बछड़े की प्यारी, मनुष्यों को धन देने वाली यह अवध्य गौ स्त्री-पुरुषों के लिये दूध देती है वह बड़े सौभाग्य के लिये बढ़े।

४-वत्स के समान प्यारे परमात्मा की वेद वाणियों से स्तुति करो। वह देवों में व्यापक और नर-नारी के बल का धारक है।

५. जैसे बच्चा माताओं से पोषित होता है वैसे ही तेजोमय परमात्मा का स्तुतियों द्वारा साक्षात्कार होता है।

६. हे सरस्वती (विद्या और गौ), जो तेरा स्तन शान्तिदायक, सुखप्रद है, और जिससे सब गुणों को तू पुष्ट करती है, जो रमणीय पदार्थ देनेवाला, ऐश्वर्यदायक, उत्तम कल्याणकारी है उसे तू हमें पुष्टि के लिये दे।

७- बछड़े को देखकर गो रँभाती और माता होकर सिर पर हुंकारती है। वह प्रेमाग्नियुक्त कामना करती हुई शब्द करती और दूध बरसाती है।

८- (हे मनुष्यो), तुम सोम को अन्न-दहीसे मिलाओ और उसे ऐश्वर्यशाली के लिये सेवन कराओ।

९. मनुष्य परस्पर जानते हुए आसन लगाकर बैठें। पत्नी-युक्त होकर नमस्करणीय को नमस्कार करते हुए मित्र के समान परस्पर रक्षा करते हुए ज्ञान वृद्धि में अपने शरीर को लगा दें।

१०. जीवात्मा दशों इन्द्रियों से विविध प्राणों वाले अन्नमय कोष को व्यवहार की त्रिगुणात्मक प्रेरणा से चलाता है।

११. ५ ज्ञान-इन्द्रियाँ और प्राण-अपान ये ७ मिलकर एक आत्मा से बल प्राप्त करते हैं और स्वयं प्रकाशमय मेरुदण्ड में प्रेरणा देते हैं।

१२. हे पति-पत्नी, जब अग्नि प्रदीप्त होता है तो तपा हुआ घर्म मिल जाता है। जब गौएं दुही जात हैं तो कार्य कर्ता शिल्पी प्रसन्न होता है।

१३. अग्नि प्रदीप्त होकर द्यौ से तप्त घर्म को प्रकट करता है, हम सब शिल्पी साथ चलने वाले शिल्पों में अश्वियों का प्रयोग करते हैं।

१४. इस दर्शनीय विद्युत् का यह प्रत्यक्ष उत्तम कर्म है कि आकाश में मधुर-जल-युक्त चारों दिशायें और नदियाँ तृप्त किया करती हैं।

१५—आकाश से अन्न का कारण जल हमें मिलता है। उस वायु में रखे जल को किरणें नीचे बरसाती हैं।

१६—हे विद्वान् उठ. हम दिव्य गुणों की कामना करते हैं। उत्तम वीर आगे बढ़ें। हे इन्द्र, तू साथमें हो।

१७—ईश्वर सूर्य की ७ तरह की किरणों के द्वारा ७ पदों [पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-सूर्य-जीव] वाली सृष्टि से पुष्टिकारक अन्न-रसको दुहा करताहै।

१८—श्रेष्ठ विद्वान् गौ-दूध और उस से पनीर आदि लेकर द्यौ-पृथिवीमें उत्तम नीति चलानेवाला हो।

१९. भूमि-आकाशमें श्रीयुक्त अग्निको घीसे सींचे, पृथिवी सुख-वर्षक पुरुष तथा मेघ को धारण करे।

२०-मन्त्र-द्रष्टा पति-पत्नी को निश्चय ही अच्छी रीति से मन्त्रका ज्ञान दे और अहिंसक यज्ञ में अति मधुर सोम तथा घर्म [पनीर] को सिद्ध करे।

२१-वे वीर पुरुष बड़ी प्रजा, पृथिवी तथा सूर्य-सम पुरुष और सैन्य-दलों में वज्र को धारण करें।

ऋ० ६.७१.१— प्रेरक, यज्ञ-कर्ता यज्ञ के लिए सुवर्ण-युक्त बाहों को ऊपर उठाता, हस्त घी से तपाता और सब लोकों को वश में रखता है। ❀❀

विधि १४—होता खर (यज्ञ-पात्र रखने की चबूतरी) की ओर देखकर कहता है—

३३८. गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः। गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत॥ [ऋ० ९.८३.४]

ईश्वर इसयज्ञ और देवोंके जन्मों की रक्षा करताहै, वह गन्धर्व जगको वशमें रखता है, सुकर्मी सुफल पातेहैं।

होता नीचे का मन्त्र पढ़ कर बैठ जाता है—

३३९. नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः। शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम्॥ (ऋ० ९.८५.११)

विद्वानों की वाणियाँ मोक्ष में स्थित तेजोमय ईश्वर की स्तुति करती हैं। सब स्तुतियाँ उसी से संबन्धित हैं।

प्रातः सायं की आहुतियां

विधि १४— नीचे के दो मंत्रों से पूर्वाह्न आहुतियां देता है —

३४०. (१) तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्व होता प्र वामध्वर्य्श्चरतु पयस्वान्। मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः॥ (वौषट्) (अ० ७.७३.५)

हे पति-पत्नी, गरम दूध तुम्हें मिले' होतो और अध्वर्यु के दिये पुष्ट गौ के मधुर दूध को तुम पियो।

३४१-४२. (२) उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥ (वौषट्)

(ऋ० १.४६.१५, य० ३४.२८)

दोनों पति-पत्नी सोमरस पियें और हमें दृढ़ रक्षा के उपायों से सुख दें।

आगे के दो मन्त्रों से अपराह्ण की आहुतियाँ—

३४३-यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयो यं स वाममश्विना भाग आगतम्। माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः॥(वौषट्) १ (अ० ७,७३.४)

हे पति-पत्नी, जो गौओं में स्थित घी-दूध है वह तुम दोनों का भाग है। हे यज्ञ-रक्षक, तुम तप्त दूध पियो।

३४४—अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः। मध्वो रातस्य धिष्ण्या॥ २ (ऋ० ७.५.१४)

हे अश्विनो, योग्य तुम इस मधुर रस को पियो।

आहुतियों के पश्चात् दोनों काल में होता के 'अग्ने वीहि वौषट्' बोलनेपर अध्वर्यु आहुति देता है।

स्विष्टकृत् आहुति सोम, घर्म और वाजिन के ३ भागों से दी जाती है।

विधि १५— अब ब्रह्मा इस मन्त्र को जपता है—

३४५— विश्वा आशा दक्षिणसाद् विश्वान्देवान् अयाळिह। स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मध्वः पिबतमश्विना॥

(आश्व० ४.७)

सब दिशाएँ अनुकूल हों, सब देव यहाँ आयें। दोनों पति-पत्नी मधुर घर्म [दूध-पनीर] का सेवन करें।

विधि-१८ आहुतियों के देने के पश्चात् होता नीचे लिखे सात मंत्रों को पढ़ता है —

३४६. स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः। तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति॥१ (अथ० ७.७३.३)

पवित्र यज्ञ देवों में स्थित है जो पति-पत्नी की शक्ति के लिए इन्द्रिय-रक्षक है। सब देव उसीका सेवन करते हुए उसे ईश्वर के उपदेश से प्राप्त होते हैं।

३४७. समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि। ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः॥ २ (ऋ० १०.१२३.२)

ईश्वर से उठी अमृत-लहर पाकर विवेकी उस प्रभु को प्रत्यक्ष करता है जो सत्य-शिखर पर प्रकाशित है।

३४८-४९. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्। भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि। ३

(ऋ० १०.१२३.८, सा० १८४८)

जो जीव उस प्रभु को अभिलषित दृष्टि से देखता है वह उसमें शुद्ध दीप्तिसे प्रकाशित होकर तीसरे लोक [मोक्ष] में प्रिय सुखों से युक्त होता है।

३५०. सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या। अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु। तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि॥ ४ (ऋ० ४.१.३)

हे शत्रु-नाशक सखा, जैसे घोड़े रथ को शीघ्रता से चलाते हैं वैसे ही आप मुझ सखासे व्यवहार करते हुए हमारे पास आइये। हे अग्रणी, आप वरुण और सूर्य-समान तेजस्वी मनुष्यों में सत्य के साथ सुख करावें। हे प्रकाशमान, अविद्या-नाशक, आप पुत्र पालनीय प्रजा और हमारे लिए सुख दीजिए।

३५१-५३ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता। ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥ ५(ऋ० १.३६.१३, य० ११.४२ सा०)

हे अग्नि [ईश्वर, विद्वान्, सभापति], सूर्य के समान ऊँचे आप हमारी रक्षा के लिए तत्पर हों। क्योंकि आप ऐश्वर्य के दाता हैं अतः हम विद्वानों के साथ

मिल कर आप की स्तुति करते हैं।

३५४. ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥६॥ (ऋ० १-३६-१४)

आप बुद्धि-द्वारा हमें पाप से बचाइये, दुष्टों का नाश कर धार्मिक जीवन के लिए उत्तम बनाइये और देवों के प्रति श्रद्धा दीजिये।

३५५-५६. तं घेमित्था नमस्विन उपस्वराजमासते। अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आ वर्तयन्ति दावने ॥७

[ऋ० ८-६६-१७, अ० २०.६२.१४]

उस स्वयं दीप्त प्रभु को नमस्कार करने वाले उसे अवश्य ही पाते हैं। इसका उत्तम धन पाकर वे उसे दान के लिए दे देते हैं।

विधि१६ यज्ञ-शेष-भक्षण

होता इस ऋचा से यज्ञशेष खाना चाहता है—

३५७. पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः। अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः॥ [ऋ० ६.२.६]

हे पवित्र दीप्ति वाली दाता अग्नि, यज्ञों में वृद्धि करनेवाले नर सेवा की इच्छा करते हुए निवास-योग्य तेरे घर की शरण लेते हैं, उनके लिए तू धन दे।

होता खाते हुए यह कहता है—

हुतं हविर्मधु हविरिन्द्रतमेऽग्नावश्याम ते देव घर्म। मधुमतः पितुमतो वाजवतोऽङ्गिरस्वतो नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः॥

विधि १७— अब वह प्रवर्ग्य-पात्र रखते समय नीचे लिखे दो मन्त्र बोलता है —

३५८. श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति। एरिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः॥ [ऋ० ९.७१.६]

जैसे बाज घोंसले में आता है वैसे ही सोम सुनहरे सदनमें आता है उसे आसन पर बिठाते हैं वह यज्ञ-योग्य पूज्य के समान, देवों को प्राप्त होता है।

३५९. आ यस्मिन्त्सप्त वासवा रोहन्तु पूर्व्यारुहः। ऋषिर्ह दीर्घश्रुत्तमः इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः॥

[आ० ४.७]

घर्म [यज्ञ, तप, प्रवर्ग्य] इन्द्र का अतिथि है।

अन्तिम दिन सायं पात्र उठाते समय का मन्त्र—

३६०. हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम्। राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ [ऋ० ९.८३.५]

हे हवियों के स्वामी, बड़े घर में रखी हवि दिव्य आकाश को आच्छादित करती हुई यज्ञ में सब ओर जारही है। पवित्र सोम राजा हजारों पाप भूनता हुआ महान् यश को विजय करता है।

विधि १८—नीचे की ऋचासे समाप्त करता है—

३६१-६३. सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम। अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥

[ऋ० १-१६४-४०, अ० ७-७३-११, ६-१०-२०]

हे अहन्तव्या गौ, तू अच्छा चारा खाकर भाग्य वाली हो और हम ऐश्वर्यशाली हों। तू सदा विचरती-हुई घास खाया कर और शुद्ध जल पिया कर।

प्रवर्ग्य की प्रशंसा

यह घर्म [प्रवर्ग्य यज्ञ] देवों का मिथुन है। घर्म-पात्र [मिट्टी का महावीर नामक बरतन] शिश्न है उसके लकड़ीके दो पकड़ दो शफ हैं। उपयमनी [नीचे का लकड़ी का आधार] नितम्ब की हड्डियाँ हैं। गर्म घी में डाले जानेवाला दूध वीर्य है जो देवयोनि अग्नि में प्रजनन में सींचा जाता है। अग्नि ही देव-योनि है जिसकी आहुतियों से यजमान-देव उत्पन्न होता है।

जो ऐसा जानता है और जान कर इस यज्ञकर्म से संगत होता है वह ऋग्, यजु, साम, अथर्ववेद से युक्त, ब्रह्मरूप, अमृतरूप होकर सब देवताओं को प्राप्त होता है। ॐ ५ (२८) ॐ

—※—

उपसद इष्टि

खण्ड ६ (२३)

❋ उपसद् की आख्यायिका ❋

देव और असुर इन लोकों में लड़ने लगे। असुरों ने बलवानों के समान इन्हीं तीनों लोकों को किला बनाया, इस पृथ्वी को लोहे, अन्तरिक्ष को चाँदी, द्यौ को सोने के परकोटे से युक्त गढ़ बनाये। देव बोले—हम इनका प्रतिरोध करें। यह निश्चय कर पृथ्वी पर 'सदः' (यज्ञ-स्थान) अन्तरिक्ष में 'अग्नीध्र' (कुण्ड), द्यौमें 'हविर्धान'(भंडार) बनाया। देवों ने कहा—हम 'उपसद' नामक होम करें। क्योंकि उपसद् (घेरा)से किला को जीतते हैं। पहली ही उपसद् से उनको देवों ने इस लोक से, दूसरी द्वारा अन्तरिक्ष से, तीसरी द्वारा द्यौ से निकाल दिया (आसुरी वृत्तियों को हटाया)।

इन लोकों से हटाये असुरों ने ६ ऋतुओं का आश्रय लिया। देवों ने ३ उपसद् दो बार पढ़ कर ६ आहुतियों द्वारा उन्हें ६ ऋतुओंसे निकाल दिया।

ऋतुओंसे हटाये असुर १२ मासों में गये। देवों ने ६ उपसद् दो-दो बार पढ़कर उन्हें १२ मासों से निकाला।

असुर १२ मासों से हटकर २४ पक्षों में घुस गये। देवों ने १२ उपसद् दो दो बार बोलकर २४ आहुतियों से उन्हें २४ पक्षों के बाहर कर दिया।

पक्षों से हटाये असुरों ने दिन-रात का आश्रय लिया। देवों ने पूर्वाह्न और अपराह्न में उपसदों की आहुतियाँ दे कर उन्हें दिन रातसे निकाल दिया। अतः पूर्वाह्नमें पहली और अपराह्न में दूसरी उपसद् से आहुति देनी चाहिए। द्वेषी असुर के लिए केवल सन्ध्या-काल ही बचा। ६(२३)

❋ खण्ड ७ [२४]— उपसदों की प्रशंसा ❋

ये उपसद् जिताने वाली हैं, इन से देवों ने विजय पायी। जो ऐसा जानता है वह शत्रु-रहित विजय प्राप्त करता है और उसी विजय को पाता है जो देवों ने लोक, ऋतु, मास, अर्धमास, दिन-रात में पायी थी।

❋ तानूनप्त्र नाम के निर्वचनार्थ आख्यायिका ❋

वे देव डरे कि हमारे विरोध को जान कर असुर यह राज्य ले लेंगे अतः उन्होंने अलग अलग बँटकर मन्त्रणा की, अग्नि वसुओं के साथ, इन्द्र रुद्रों के, वरुण आदित्यों के, बृहस्पति विश्वेदेवों के साथ बँट गये।

ये मन्त्रणा करके बोले— 'अहा ! हमारी जो प्री[illegible] सबसे प्यारी तनुएँ हैं उन को इस वरुण राजा के घर[illegible] धरोहर रख दें। हममें जो उल्लङ्घन करे, लुभाना चा[illegible] वह इन्हें न पाये। यह निश्चय कर उन्होंने अपने प्रि[illegible] वार आदि वरुण राजा के घर में रख दिये [और घी [illegible] स्पर्श कर परस्पर मित्रता के लिए शपथ की], यह 'ता[illegible] नप्त्र' (तनुओं का न पतन) हुआ। इसीलिए कहते हैं [illegible] तानूनप्त्र करने वाले से द्रोह न करना चाहिए। इसी[illegible] असुर नहीं आ पाते ॥ ७ [२४]

खण्ड ८ (२५)

आतिथ्य इष्टि यज्ञ का सिर है, उपसद् ग्रीवा है[illegible] दोनों के आसन समान होते हैं, जैसे सिर-गरदन[illegible]

देवों ने उपसदों को बाण बनाया— अग्नि [illegible] भाग, सोम उसका शल्य(लोहवाला भाग), विष्णु [illegible] वरुण पंख। उसे घी रूपी धनुष से छोड़ा और [illegible] को भेदते हुए आये। अतः उपसदों में इन ४ देवो[illegible] घी की हवि दी जाती है।

विधि १—यजमान पहले दिन सायं गौके ४ [illegible] का, दूसरे दिन प्रातः ३ का, सायं २ का, तीसरे [illegible] प्रातः १ थन का दूध पीने का व्रत करता है। क्यों[illegible] ये लोक—सत्य, द्यौ, भुवः, भू विस्तृत दशा से क्रम[illegible] संकुचित हो रहे हैं तदनुसार यजमान इन्हीं लोकों [illegible] विजय के लिए दूध पीना क्रमशः कम करता है।

विधि २—सामिधेनी ऋचाएँ—

पूर्वाह्न में ऋ० ७.१५.१–३ और अपराह्न में [illegible] २.३.१–३ की ३–३ ऋचाएँ रूप-समृद्ध एवं सफल हैं[illegible]

३६४—उपसद्याय मीळ्हुषे आस्ये जुहुता ह[illegible]
यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥१॥

जो हमारे पास प्राप्य है उस उपास्य, सुख-[illegible] अग्नि के मुख में हवि की आहुति दो।

३६५—यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे द[illegible]
कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

जो पञ्च जनों में विराजता है, कवि, गृहप[illegible] और युवा है।

३६६-३७—स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः ।
उतास्मान् पात्वंहसः ॥३ (साम १३८१)

वह लाभकारी अग्नि हमारे साथियों की सब ओर से रक्षा करे और हमें कष्ट से बचावे।

३६८—इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः।
इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥

हे अग्नि, तू मेरी इस समिधा और उपसद् को स्वीकार कर। हे गुरो, आप इस वाणी को सुनिए।

३६९ अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे।
एना सूक्तेन सुजात ॥ २॥

हे ऊर्जा न गिरने देने वाले, वेग-प्रद, उत्तमता से उत्पन्न अग्नि, हम इस सूक्त-रीतिसे तेरा प्रयोग करें।

३७०—तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः ।
सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥

हे जल देनेवाली विद्युत्, शीघ्र गति वाली, विशेष शब्द के साथ विभक्त होनेवाली तुझ को प्रयोक्ता हम वेद-वाणियों द्वारा वर्णन करें।

याज्यानुवाक्या ऋचाएँ

विधि ३—मारना अर्थवाली याज्यानुवाक्या हों।

१. अग्नि की अनुवाक्या— अग्निर्वृत्राणि०(सं० ३४)

३७१-७२. „ याज्या— य उग्र इव शर्यहा तिग्मश्रृंगो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥
(ऋ० ६.१६.३९, साम १७०७)

जो उग्र, दुष्ट-हन्ता, सूर्य-समान सेवनीय है वह अग्नि(अग्रणी) किलों को तोड़ता है।

२.सोम की अनुवाक्या— त्वं सोमासि० (सं० ३८)

३७३. „ याज्या– गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टि-वर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव ॥(ऋ० १.९१.१२)

प्राण-वर्धक, रोग-नाशक, पुष्टि-कारक सोम हमारा अच्छा मित्र हो।

३. विष्णु की अनुवाक्या— इदं विष्णु० (स० १५९

३७४-७७ „ याज्या—त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु-र्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥
(ऋ १.२२.१८, य ३४.४३, साम १६७०, अ ७.२६.५)

गौ (भूमि, किरण, वाणी, इन्द्रियों) का रक्षक अदम्य विष्णु ३ क्रमों से धर्मों को धारण करता है।

अपराह्न क्रम बदल जाता है, अनुवाक्या याज्या और याज्या अनुवाक्या बन जाती है।

इन उपसदों से देव असुरों के किले तोड़कर आये।

उपसद् मन्त्र एक समान छन्द वाले करने चाहिए भिन्न छन्दों वाले नहीं। भिन्न छन्दोंसे गरदनोंमें रोग हो जायेगा। होता ग्लानि उत्पन्न करने में समर्थ है।

इन उपसदों के व्यख्यान में जनश्रुता के पुत्र उपावि ने कहा है कि शोभा-हीन भी श्रोत्रिय का मुख तृप्त सा होकर मन्त्रोच्चारणमकरता है। यह इसलिए कि घी की हवि वाली उपसदें गरदन के ऊपर मुख को शोभा-युक्त कर देती हैं। ८ [२५]

खण्ड ९ [२६]

इस इष्टि में प्रयाज-अनुयाज नहीं किये जाते, क्योंकि वे तो देव-कवच हैं और यहाँ शत्रु पर घेरा डालने के लिए तेज बाण पर्याप्त हैं। होता वेदि और आहवनीय की बीच की सीमा को एक बार ही पार कर मन्त्र बोलता है जिससे आक्रमण और स्थैर्य हो।

ब्रह्मवादी कहते हैं कि सोम के पास घी से अनु-तानूनप्त्र करता है, क्योंकि घृत रूपी वज्र से इन्द्र ने वृत्र मारा था। अतः नीचे के मन्त्र से सोम पर जल छिड़क कर उसे शान्त करते और बढ़ाते भी हैं।—

३७८. अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायताम् आ त्वमिन्द्राय प्यायस्व आप्याययास्मान् सखीन्। सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामुदृचमशीय ।

हे सोम, इन्द्र के लिए तेरा अवयव बढ़े तेरे लिए इन्द्र बढ़ और तू इन्द्र के लिए बढ़। हमारे मित्रों को कल्याण और बुद्धि से बढ़ा। हे देव सोम, कल्याण हो। मैं अन्तिम ऋचावाली सोम-अभिषव-क्रिया तक पहुँच जाऊँ।

सोम द्यावा-पृथिवी का ही गर्भ है अतः इसकी रक्षार्थ यह मन्त्र पढ़कर दो प्रस्तरों (कुशा-मुष्टियों) को वेदि के दक्षिण कोने में रख देते हैं। मानो यह द्यावा-पृथिवी के लिए नमस्कार करते हैं और उन्हें बढ़ाते भी हैं। ९ (२४)

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी-अनुवादमें चौथा अध्यायसमाप्त।

—❋—

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

पहली पञ्चिका में पञ्चम अध्याय

खण्ड १ (२७)

❀ सोम-क्रय तथा अग्नि-प्रणयन ❀

सोम राजा गन्धर्वों में था। देवों और ऋषियों ने चिन्ता की कि यह हमें कैसे प्राप्त हो। वाणी बोली कि गन्धर्व स्त्री की कामना वाले होते हैं, उनसे स्त्री बनी हुई मुझे देकर खरीद लो। देव बोले— नहीं, हम तेरे बिना कैसे रहेंगे ? । वाणी बोली — खरीद ही लो। जब हीं तुम्हारा मुझ से प्रयोजन होगा तभी तुम्हारे पास मैं फिर आ जाऊँगी। देवों ने 'ऐसा ही हो' यह कह कर उस बड़ी और नग्नी द्वारा सोम राजा को खरीद लिया।

उसके साथ एक बछिया के बदले सोम को खरीदते हैं। क्योंकि वह वाणी फिर उनके पास आ गयी इसलिए उस बछिया को फिर खरीद लेना चाहिए।

सोम राजा के खरीद लेने पर बहुत धीरे बोलना चाहिए क्योंकि उस समय वाणी गन्धर्वों में होती है। वह अग्नि के प्रणयन (उत्तर-वेदि में ले जाने) पर फिर वापस आ जाती है। १(१७)

खण्ड २ (२८)

अध्वर्यु होता से कहता है — ले जायी जातीहुई अग्नि के लिए मन्त्र बोलो। होता ब्राह्मण यजमान के लिए गायत्री छन्द वाला मन्त्र बोलता है—

३८०. प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम्।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥१॥ (ऋ १०.१७६.२)

अर्थ— इस अग्नि देव को दैवी बुद्धि से धारण करो यह हमारे हव्यों का लेजाये।

ब्राह्मण गायत्री वाला है, गायत्री तेज और ब्रह्मवर्च वाली है अतः इससे उसे तेज और ब्रह्म-वर्चस से समृद्ध करता है।

क्षत्रिय यजमान के लिए त्रिष्टुप् छन्द बोले क्योंकि यह क्षत्रिय वाला, ओज-इन्द्रशक्ति-वीर्य से युक्त है अतः वह इन से यजमान को समृद्ध करता है —

३८१, इमं महे विदथ्याय शूषम् शश्वत्कृत्व ईड्या प्र जभ्रुः। शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोतु अग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥ (ऋ. ३.५४.१)

अर्थ— इस सुख-कारक अग्नि को महान् लाभ हेतु पूज्य क्षत्रिय के लिए ग्रहण करें। यह बोलकर होता इसको स्वबन्धुओं में श्रेष्ठता प्रदान करता है।

उत्तरार्ध—अग्नि दमनकारी सेनाओं के साथ हमारी बात निरन्तर दिव्य भोगों के साथ सुने।

जो ऐसा जानता है उसके घर में अग्नि वृद्धावस्था तक निरन्तर प्रकाशित रहता है।

नीचे का जगती छन्द वैश्य के लिए बोले क्योंकि वह उस जगती छन्द वाला है जिससे पशु सम्बन्धित हैं, अतः इस के द्वारा उस को पशुओं से समृद्ध करता है—

३८२-८५. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे ॥ १ ॥
(४ बार— ऋ० ४.७.१, य० ३.१५. १५.२६, ३.३१)

यह यहाँ विस्तृत, धारण करनेवालों से धारण किया गया, सुख-दाता, यज्ञ-कर्ता, यज्ञों में स्तुत्य (ईश्वर, अग्नि और विद्वान्) है जिस विचित्र, जन-जन में व्याप्त को सन्तानयुक्त, रूपवान् याज्ञिक विज्ञानी सेवनीय स्थानों में विशेष रूप से प्रकाशित करते हैं।

इस ऋचा के अन्त में 'विशे' आने से यह मन्त्र समृद्ध और सफल है।

३८६. अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते। रथो न योरभीवृतो घृणीवांचेतति त्मना ॥ (ऋ १०.१७६.३)

यह वही देवों का प्रिय दाता अग्नि यज्ञ के लिए लाया जाता है, जो रथ के समान घिरा हुआ, सूर्य सब को चेताता है।

अग्नि-प्रणयन

इस अनुष्टुप् छन्द से वह जोर से बोलता है। अनुष्टुप् वाणी है। इसे बोल कर वह वाणी को वाणी में छोड़ता है। 'अयमु ष्य' से संकेत है कि गन्धर्वों के पास की वाणी वापस आ जाती है।

३८७. अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः।
सहसश्चित्सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ॥४॥

यह अग्नि अपनी अमृत प्रकृति से हमें निडर बनाती है—यह पढ़कर होता यजमान को अमर बनाता है। देव अग्नि जीव के लिए शक्तिशाली बनायी गयी है—यह पढ़ कर अग्नि को जीव-रक्षक बनाता है।

३८८-८९. इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो निधीमहि अग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४॥
ऋ० ३.२९.४, य० ३४.१५

हे जातवेद अग्नि, हम तुझे पृथिवी की नाभि में इला के स्थान में हवि लेजाने के लिए रखते हैं।

इला का पद उत्तर-वेदि की नाभि है। उस में रखे हविको अग्नि ले जाती है।

३९०. अग्नेविश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्। कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ ५ ॥ ऋ० ६.१५.१६

हे अच्छी सेना वाले अग्नि, सब देवों के साथ पहले मुख्य होकर ऊनवाले आसन पर बैठ। सविता यजमान के लिए घी वाले यज्ञ को ले जा।

यह पढ़कर होता इसे सब देवों के साथ बिठाता है। देवदारु की परिधियों, गूगल, ऊन और सुगन्धित वस्तुओं से यज्ञ में घोंसला सा बना दिया जाता है और जो सरलता से स्थापित किया जाता है।

३९१-९२— सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ। देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ॥६॥
ऋ ३.२९.८

हे होता अग्नि, तू अपने लोक में बैठ, यज्ञ को अच्छे बनाये लोक में स्थापित कर। देवों के पास पहुँचने वाला तू हविसे देवों का यजन कर और यजमान में प्राण धारण करा।

अग्नि देवोंका होता है, उत्तर-वेदि की नाभि में उसका लोक है, यजमान ही यज्ञ है जिस को वह प्राण धारण का आशीर्वाद देता है।

३९३-९४— नि होता होतृषदने विदानः त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः। अदब्धव्रत प्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ७ ॥
(ऋ० २.६.१, य० ११.३६)

देवों का होता, प्रकाशवान् और दक्ष अग्नि अपने सदन उत्तर-वेदि-नाभि में स्थित होता है। उचितव्रत, ज्ञाता और वसिष्ठ(उत्तम) एक होकर, हजारों का पालन करनेवाला पवित्र चमकदार जीभ वाला अग्नि है।

जो ऐसा जानता है वह हजारों का लाभ पाता है।

३९५. त्वं दूतः त्वमु नः परस्पाः त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता। अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनाम् अप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ॥ ८ ॥ ऋ २.९.२

हे बलवान् अग्नि, तू हमारा दूत, श्रेष्ठ रक्षक, धन लाने वाला होकर हमारे सन्तान और शरीर-विस्तार में प्रमाद न करताहुआ प्रकाशमान रक्षक होकर जाग।

जहाँ ऐसा जानता हुआ होता इस अन्तिम ऋचा से समाप्त करता है वह अपने और यजमान के लिए अग्नि को ही सर्वतः रक्षक पाता और वर्षभर कल्याण लाभ करता है।

वह इन रूप-समृद्ध (क्रियमाण कर्म बताने वाली) ८ ऋचाएँ बोलता है। पहली और अन्तिम को ३-३ वार बोलने से ये १२ होजाती हैं. १२ ही मासोंका संवत्सर प्रजापति है। जो ऐसा जानता है वह प्रजापति की इन ऋचाओं से सिद्धि पाता और यज्ञ के ही स्थिर बल और न गिरनेके लिए सिरोंमें गाँठ लगाता है। २

खण्ड ३ [२६]

हविर्धान लाने के ८ मन्त्र

अध्वर्यु होता से कहता है—दोनों हविर्धान शकट ले जाये जाने के मन्त्र पढ़ो। वह पढ़ता है —

३९६-९८—युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ १ ॥
(ऋ १०.१३.१ य० ११.५, अ० १८.३.३९)

अर्थ— तुम दोनों को वेद से युक्त करता हूं जैसे ये देव वेद से युक्त हुए। वेदवाला कष्ट में नहीं पड़ता।

३९९— प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ २॥

४००— द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ ३॥

४०१— आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः।
इहाद्य सोमपीतये ॥ ४॥

द्यावा-पृथिवी देवोंके हविर्धान होनेसे ये पढ़े गये।

४०२-३. यमे इव यतमाने यदैतम् प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः। आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥५ (ऋ १०.१३.२ अ १८.३.३८)

दोनों हविर्धान जुड़वां के समान हैं जिन्हें मनुष्य लाते और इन्दु(सोम) के लिए इन्हें स्थानपर रखते हैं।

अधि द्वयो० ॥ ६॥ (संख्या २३५)

दो हविर्धानों के दो ढक्कनों पर तीसरा ढक्कन 'उक्थ्यं वचः' है, इससे यज्ञ को समृद्ध करता है। 'असंयत्त' पद से क्रूरता का शमन, पाद ४ से आशीः है।

४०४-५ — विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। विनाकमख्यत् सविता वरेण्यो अनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ७॥

यह मन्त्र रराटी (हविर्धान-मण्डप-पूर्वद्वार पर बँधी दर्भ-माला) को देखता हुआ पढ़ता है जिस पर सफेद, काली आदि अनेक वस्तुएँ टँगी रहती हैं।

ऐसे ज्ञाता मन्त्रपाठी को सभी वस्तुएँ मिलती हैं।

८ वें अन्तिम—परि त्वा ० (सं० २३४) को मंडप छा जाने पर पढ़ता है जिससे होता और यजमान की रक्षार्थ हविर्धानोंको अध्वर्यु—प्रतिप्रस्थाता मेथी (आगे की लकड़ी) लगाने के पश्चात यजुर्मन्त्र से ढँकते हैं। १ और ८ को ३-३ बार पढ़ने से ये १२ मन्त्र रूपसमृद्ध हो जाते हैं। १२ मास-संवत्सर-प्रजापति वाले मन्त्रों से सिद्धि मिलती है। पहला-अन्तिम मन्त्र ३ बार बालने से यज्ञ की स्थिरता के लिए सिरे जोड़ता हैं। ३ (२९)

❀ खण्ड ४ (३०) उत्तर-वेदि में अग्नि-सोम लाना ❀

अध्वर्यु के कहने से होता मन्त्र पढ़ता है—

४०६— सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै। अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवो दिव आ सुवा भूरि पश्वः ॥१॥ (अ० ७.१४.३, आ० ४.१०)

सविताका मन्त्र पढ़ा क्योंकि वह उनका जनक है।

प्रैतु.... ॥ २॥ (संख्या ३३४) । ब्रह्मणस्पति का मन्त्र पढ़ कर ब्रह्म को दोनों का नेता बनाता है।

४०७ —होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ ३

४०८ — वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ४॥

४०९ — धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे
दक्षस्य पितरं तना ॥ ५॥ (ऋ० ३-२७-७-)

अग्नि ने बीच में असुरों से घिरा सोम भाग बचाया। अतः सोम के आगे अग्नि को ले चलते हैं।

४१०—उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्
नमो भरन्त एमसि ॥ ६॥

४११—राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्
वर्धमानं स्वे दमे ॥ ७॥

४१२—स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव
सचस्वा नः स्वस्तये ॥८॥(ऋ० १.१.७-)

४१३—उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥९॥ (ऋ० ९.६७.२९)

पहले और अब लायी अग्नि सङ्गत करता है। इस से अग्नि को प्रिय आहुति देता है—

४१४—अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो। यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ १०॥ (ऋ० १.१४४.७)

४१५— सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम्। ऋतस्य योनिमासदम् ॥११॥

४१६—सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे। अनमीवा इषस्करत् ॥ १२॥

४१७—अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः। सोमः सधस्थमासदत् ॥१३॥ (ऋ० ३ ६२.१३-१५)

इन सोम के ३ गायत्री छन्दों से सोम को रखे ये तब पढ़े जब होता अग्नीत् से आगे हो जाये।

४१८—तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः। दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥१४॥ (ऋ० १.१५६.४)

देवों का द्वारपाल विष्णु द्वार खोल देता है।

४१९—अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य। इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥१५॥ (ऋ० ८.४८.२)

श्येनो न ०[सं० ३५८] से सोम को बैठाकर समाप्ति—

४२०— अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १७॥ ऋ ८.४२.१

४२१—एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम्। स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत् पातं नो द्यावा पृथिवी उपस्थे ॥१८॥ (ऋ० ८.४२.२)

इनमें १,१७ को ३ बार पढ़ने से २१[प्रजापति] होते हैं।

—❀— इति पञ्चमो अध्यायः समाप्तः —❀—

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

दूसरी पञ्चिका में प्रथम अध्याय

पशु (पुरोडाश) इष्टि [शिक्षा-यज्ञ]

खण्ड १ ❀ यूप (अध्यापक) का निर्माण ❀

यज्ञ से ही देवों ने ऊँचे होकर स्वर्ग लोक पाया। वे डरे कि हमारे इस यज्ञ को देखकर मनुष्य और ऋषि पीछे से जान लेंगे अतः उन्होंने यूप (स्तम्भ) से ही रोका और यज्ञ को मिश्रित किया। अतः इस का नाम यूप है। उन्होंने उसे, सिरा नीचे को कर, गाड़ दिया। तब मनुष्य-ऋषि देव-यज्ञ-स्थान पर आये। यज्ञ को जानने के लिए हम उस की कुछ खोज करें— यह निश्चित कर उन्होंने यूप को ही गड़ा पाया। जब उन्होंने उसे उखाड़ कर सिरा ऊपर कर गाड़ दिया, तब वे यज्ञ और स्वर्ग को जान पाये। इसलिए यज्ञ और स्वर्ग-लोक जानने के लिए यूप ऊँचा गाड़ते हैं।

विधि १ .यह यूप (दण्ड) वज्र है वह ८ कोण का हो, क्योंकि वज्र ८ धारों का होता है, उनसे द्वेषी शत्रु के वध, हिंस्य की हिंसा के लिए प्रहार किया जाता है। यूप निश्चय ही वज्र है, इससे उस द्वेषी की हानि होती है जो इसे देख कर कहता है कि उस का यह यूप है, उसका यह यूप है।

स्वर्गेच्छुक खैर का यूप बनाये। खादिर यूप से ही देवों ने स्वर्गलोक जीता, वैसे ही यजमान खादिर यूप से स्वर्गलोक को जीतता है।

अन्न-खाद्य-पुष्टि का इच्छुक बेल का यूप बनाये बेल प्रतिवर्ष फलता है, वह जड़ से शाखाओं तक फलों से लदता हुआ पुष्टि का रूप है। जो विद्वान् ऐसा जानकर बेल-यूप करता है वह प्रजा-पशुओं को पुष्ट करता है। बेल-यूप को ज्योति समझनेवाला अपने लोगों में ज्योति-रूप और श्रेष्ठ होता है।

तेज-ब्रह्मवर्च की कामना वाला पलाश का यूप करे। पलाश वनस्पति में तेज-ब्रह्मवर्च है। जो ऐसा जानता हुआ पलाश-यूप करता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी होता है। पलाश सब वनस्पतियों का कारण है अतः पलाश के पत्ते के कारण प्रत्येक पत्ते को पलाश कहते हैं। ऐसे ज्ञाता को सब कामना प्र ।प्त होती है॥ १॥

खण्ड २ [विधि २]—यूप का संस्कार

अध्वर्यु होता से कहता है—हम यूप अञ्जित करेंगे, मन्त्र पढ़ो! वह पढ़ता है—

४२२—अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन। यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥ [ऋ० ३.८.१]

हे वनस्पति यूप (शिक्षक), विद्वान् तुझे यज्ञ में दिव्य मधु (आज्य) के साथ चाहते हैं, तू खड़ा होकर या इस माता (भूमि) की गोद में बैठकर यहाँ धन (विद्या) प्रदान कर।

४२३—उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि। सुमितो नीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥२॥ ऋ.३.८.३

हे वनस्पति, पृथिवी पर ऊँचा उठ, अच्छे प्रकार संस्कृत होकर यज्ञ-वाहक के लिए तेज धारण करा।

यह मन्त्र अभिरूप और समृद्ध है।

४२४—समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्। आरे अस्मद् अमतिं बाधमानः उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥३॥ ऋ. ३.८.२

प्रदीप्त अग्निके पूर्व में स्थित तू अमर, वीरता से युक्त ज्ञान देता, और हमसे अज्ञान, भूख और पाप

दूर करता हुआ महान् सौभाग्य के लिए ऊँचा हो।

अब पढ़ता है—ऊर्ध्व ऊ षु० (सं० ३५१)॥४॥

यहाँ यूप को सूर्य के समान बता कर अन्न-दाता बताया और कहा कि देवोंको यज्ञ-भार-वाही ऋत्विजों के द्वारा छन्दों से बुलाते हैं कि मेरे यज्ञ में आओ, मेरे यज्ञ में आओ। यज्ञ तो बहुत से करते हैं किन्तु देव उसके यज्ञ में ही जाते हैं जहाँ ऐसा विद्वान् हो।

५ वाँ पढ़ता है—ऊर्ध्वो नः पाहि०॥५॥ (सं० ३५४)

छात्र विद्यालय से ले जाया जाता है तो भी १वर्ष के जीवन की प्रार्थना करता है।

४२५— जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः। पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥६॥ (ऋ. ३.८.५)

बालक अच्छे दिनों के लिए ज्ञान में बढ़कर दूसरा जन्म लेता है। धीर शिक्षक उसे बुद्धि से पवित्र करते हैं। विद्वानों का पूजक विप्र देव-वाणी बोलता हैं— यह कहकर उसको देवों के लिए निवेदन करता है।

होता इस अन्तिम मन्त्रसे समाप्त करता है—

४२६— युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ ७॥ (ऋ. ३.८.४)

जवान, प्राण-शक्ति-युक्त, सुन्दर वस्त्र और अङ्गों वाला, यज्ञोपवीतधारी विद्या पढ़ कर आता है, वह नया जन्म लेकर श्रेष्ठ होता है, उस को धीर, कवि और सुधी जन मन से दिव्य गुण दे कर बढ़ाते हैं।

ये ७ रूप-समृद्ध ऋचाएँ हैं, पहली और अन्तिम ३-३ बार पढ़ने से ११ हो जाती हैं। ११ अक्षरों का ही त्रिष्टुप् का पाद है जो इन्द्र का वज्र है। जो ऐसा जानता है वह इन इन्द्र सम्बन्धी ऋचाओं से समृद्धि पाता है। मन्त्र १ और ७ को ३-३ बार पढ़ कर वह यज्ञ की स्थिरता-बल-अविस्रंसन के लिए सिरों में गाँठें जोड़ता है॥ २॥

खण्ड ३ [विधि ३]

यूप का उपयोग

प्रश्न— समाप्ति के पश्चात् यूप खड़ा रहे या अग्नि में डाल दिया जाये ? उत्तर-पशुकाम का खड़ा रहे।

एक बार देवों को अन्न प्राप्त कराने के लिये पशु खड़े नहीं रहे। वे भाग कर देवोंसे कहते रहे कि तुम हमको न पाओगे। तुम हमको न पाओगे। तब देवों ने इस यूप वज्र को देखा और गाड़ दिया। इसप्रकार डरकर वह लौट आए। यही कारण है कि यूपकी ओर मुख करके ही आज भी खड़े होते हैं। इस प्रकार पशु देवों को भोजन प्राप्त कराने के लिये खड़े रहे। इसी भाँति जो इस रहस्य को समझता है और यूप को खड़ा रखता है उस के पशु भी उस को अन्नाद्य के लिए खड़े रहते हैं।

जिसे स्वर्ग की कामना हो वह अग्नि में डाल दे। पहले के यजमान भी अग्नि में छोड़ देते थे। यूप और दर्भ-मुष्टि यजमान हैं। अग्नि देव-योनि है। उससे इन आहुतियों द्वारा मिलकर वह चमकता-शरीर होकर आकाश को चला जायेगा।

और जो उनसे अर्वाचीन थे वे यूप के टुकड़े स्वरु को अग्निमें डालते थे। उससे दोनों कामनाएँ पूरी हो जायेंगीं।

दीक्षित अपने को सब देवताओं के लिए प्राप्त कराता है। अग्नि और सोम सब देवता हैं। जब वह उनके लिए पशु (बालक) को प्राप्त कराता है तो मानो सब देवताओं के लिए अपने को अर्पित करता है।

कहते हैं कि दो देवता वाले अग्निषोमीय पुरोडाश को दो रूप वाला होना चाहिए, परन्तु यह ठीक नहीं। पुरोडाश मोटा सा पुष्ट बनाना चाहिए जिससे पतला यजमान उसके सार से मोटा-पुष्ट हो सके।

कहते हैं कि अग्नि-षोमीय पुरोडाश का कुछ भी न खाये। ऐसा करना मनुष्य-मांस खाना है क्योंकि यजमान इससे अपने को छुड़ाता है। किन्तु इसको न मानना चाहिए। क्योंकि यह हवि वृत्र को मारने वाली है। अग्नि-सोम से ही इन्द्र ने वृत्र को मारा था। उन्होंने वर माँगा कि कल सोमाभिषव में जो हवि होगी वह इन दोनों के लिए अवश्य करनी है। वही इन दोनों का वर से माँगा हुआ भाग है अतएव इसमें से खाना चाहिए और पाने के लिए यत्न करना भी चाहिए॥ ३॥

खण्ड ४ [विधि ४]

अब होता आप्री नामक १२ मन्त्र बोलता है—

१२ आप्री प्रयाज मन्त्र

आप्री मन्त्र तेज और ब्रह्मवर्च के देनेवाले हैं अत: इन्हें पढ़कर वह यजमानको तेज और ब्रह्मवर्च दिलाताहै। ये ऋ० १०.११०.१-११, य० २९.२५-२६, २८-३६, अथर्व ५.१२.१-११, के ११-११ सब ३३ और ऋ० ११३.३ सब मिलकर ३४ हुए (क्रम संख्या ४२७ से ४६० तक हुई)—

४२७-२९—समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः। आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ १ ॥

वह समिधाओं के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। प्राण ही समिधा है। प्राण ही इस सब जगत् को प्रज्ज्वलित करते हैं! इसप्रकार वह प्राणों को संतुष्ट करता है और यजमान में प्राण धारण कराता है।

४३०-३२— तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व। मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २ ॥

अब तनूनपात् के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। प्राण ही तनूनपात् है क्योंकि वह तनू अर्थात् शरीर की पाति अर्थात् रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्राणों को संतुष्ट करता है और प्राण ही यजमान में धारण कराता है।

४३३— नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उपह्वये। मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ (ऋ.१.१३.३)

अब नराशंस के लिये याज्य मंत्र बोलता है। नर का अर्थ है संतान और शंस का अर्थ है वाणी। इस प्रकार वह संतान और वाणी को संतुष्ट करता है और यजमान में सन्तान और वाणी को धारण करता है।

४३४-३६— आ जुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः। त्वं देवानामसि यह्व होता स एतान् यक्षीषितो यजीयान् ॥ ४ ॥

अब इला के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। इला का अर्थ अन्न। इस प्रकार वह अन्न को सन्तुष्ट करता है और यजमान में अन्न धारण कराता है।

४३७-३९—प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तो-रस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्। व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ ५ ॥

अब बर्हि के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। बर्हि पशु हैं। इस प्रकार वह पशुओं को सन्तुष्ट करता है और यजमान में पशुओं को धारण कराता है।

४४०-४२—व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तामपतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः। देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ६ ॥

अब वह यज्ञशाला के द्वारों के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। द्वार वृष्टि हैं। इसप्रकार वह वृष्टि को सन्तुष्ट करता है और वृष्टि तथा अन्न आदि को यजमान में धारण कराता है।

४४३-४५— आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषा-सानक्ता सदतां नि योनौ। दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ७ ॥

वह उषा-रात्रि के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। उषा और रात्रि का अर्थ है दिन और रात। इस प्रकार वह दिन और रात को सन्तुष्ट करता है और यजमान में दिन और रात को धारण कराता है।

४४६-४८— दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै। प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ८ ॥

दो दिव्य होताओं के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। प्राण और अपान दिव्य होता हैं। इस प्रकार वह प्राण और अपान को संतुष्ट करता है और प्राण व अपान को यजमान में धारण कराता हैं।

४४९-५१— आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु इळा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनम् सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ९ ॥

तीन देवियों के लिये याज्य मन्त्र बोलता है। प्राण अपान और व्यान ये तीन देवियां हैं। इस प्रकार यह इनको संतुष्ट करता है और प्राण, अपान और व्यान को धारण कराता है।

वह त्वष्टा के लिये याज्य मन्त्र बोलता है—

४५२-५४— य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ १० ॥

णी ही त्वष्टा है। वह सब को बनाती है। इस प्रकार वह वाणीको सन्तुष्ट कर धारण कराता है।

वह वनस्पति के लिए याज्या ऋचा बोलता है—

४५५–५७— उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि। वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ११ ॥

वनस्पति प्राण हैं। वह प्राणको सन्तुष्ट कर यजमान में धारण कराता है। अब व स्वाहाकृतियों के लिए ऋचा बोलता है—

४५८-६०— सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम् अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ १२ ॥

स्वाहाकृतियाँ प्रतिष्ठा हैं। इस प्रकार वह यज्ञको ठीक ठीक स्थापित करता है। ऐसे मन्त्र बोलना चाहिए जिनका सम्बन्ध ऋषियों से मिल सके। इस प्रकार वह ऋषियोंसे यजमान की बन्धुता कराता है।

खण्ड ५ [विधि ५]

पशु का पर्यग्निकरण

अध्वर्यु मैत्रावरुण से कहता है — चारों ओर अग्नि घुमाने के लिए मन्त्र बोलो। वह बोलता है—

४६१. अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते।
देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥

अर्थ—अग्नि होता हमारे यज्ञ में घोड़े के समान बन जाता है। यह देवों में यज्ञ सम्बन्धी देव है।

४६२. परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव।
आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥

रथी के समान अग्नि यज्ञ के चार ओर तीन बार जाता है। वह तेजों के लिए आहुति को धारण करता है।

४६३. परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥ (ऋ. ४,१५.१–३)

अन्न का पति, कवि (वस्तुओं का प्रकाशक) अग्नि, हवियों की परिक्रमा करता है। वह यजमान को धन देता है।

इस लाई हुई अग्नि को इस प्रकार इसी के देवता और इसीके छन्दों द्वारा बढ़ाता है।

विधि ६— अब अध्वर्यु कहता है, "हे होता, देवों के हव्य के लिए आदेश कर"।

अब मैत्रावरुण आदेश करता है, 'अग्नि की विजय हो। अग्नि हमको अन्न दे'।

यहाँ प्रश्न होता है कि जब अध्वर्यु ने आदेश देने के लिये होता को कहा तो मैत्रावरुण ने क्यों आदेश दिया। इसका उत्तर यह है कि मैत्रावरुण तो यज्ञ का मन है। होता यज्ञ की वाणी है। मन से प्रेरित होकर वाणी बोलती है। जो बिना मन के बोलता है वह देवों से अग्राह्य आसुरी वाणी है। जब मैत्रावरुण आदेश देता है तो वह मनसे वाणी को प्रेरित करके हव्य को देवोंके योग्य बनाता है।

खण्ड ६ [विधि ७]— १२ आदेश

शिक्षा-सत्र का आरम्भ

❀ विद्यालय में बालक का प्रवेश ❀

होता कहता है, १—हे दोष-शमन करने वाले देवो और मनुष्यो, आरम्भ करो।

२—'यज्ञ-रक्षक' (पति-पत्नी तथा अग्नि-सोम) केलिए सफलता की आशा करते हुए द्वार बनाओ। यहाँ पशु (बालक) मेध है, यजमान मेध का रक्षक है होता उसी के यज्ञ से उसे बढ़ाता है। अथवा जिस किसी विद्वान् के पास बालक लाया जाता है वही 'यज्ञ-रक्षक' है। यदि वह १ हो तो एकवचन, २ हों तो द्विवचन, और बहुत हों तो बहुवचन बोले।

३—इसके लिए अग्नि (अग्रणी संरक्षक) लाओ। ले जाये जाते हुए बालक ने मृत्यु (आचार्य) को सामने देखा और देवों के पीछे जाना न चाहा, तब देव बोले— आ, तुझे स्वर्ग लोक (विद्यालय) ले जायेंगे। उसने कहा— अच्छा, तुममें से एक मेरे आगे चले। 'तथास्तु' कह कर अग्नि उसके आगे-आगे चला और वह अग्नि के पीछे। इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक पशु अग्नि का है, क्योंकि वह उसके पीछे चलता है, अतः अग्नि को आगे ले जाते हैं।

४—'बर्हि (बैठने-सोने केलिए आसन) बिछादो'। बालक औषधियों पर आश्रित है, इसलिए उसे औषधि-युक्त करता है।

बालक के अंगों की पुष्टि

५—'माता, पिता, भाई, बहिन, मित्र और साथी इसको अनुमति दें'। इसे अनुमति लेकर प्रवेश देते हैं।

६— 'इसके पैर उत्कृष्ट गतिवाले बनाओ। आँख को सूर्य की, प्राण को वायु की, जीवन को अन्तरिक्ष की, कान को दिशाओं की, शरीर को पृथिवी की शक्ति धारण कराओ'—यह कहकर वह उसको इन इन लोकों में स्थापित करता है।

७—'इसकी त्वचा को एक विधि से मैल-रहित करो, नाभि के नियन्त्रण से पहले इसकी चरबी (मोटापा) (व्यायाम द्वारा) कम करो, श्वास को (कुम्भक प्राणायाम से) अन्दर ही रोक दो'— इस प्रकार बालकों में उनके प्राणधारण कराता है।

८– इसकी छातीको श्येन (गरुड़) के समान, बाहों को प्रशस्त दण्ड के समान और दण्ड-सहित करो, भुजाओं के अगले भागों को भाले के, कन्धों को कछुओं के समान करो। नितम्बों को पूर्ण, जांघों को ढालों के, घुटनों को स्रेक वृक्ष के पत्तों के समान करो। इसकी २६ पसलियों को अनुकूलता से उत्कृष्ट रूप में धारण करो। इसके शरीर को पूरा रक्खो'— इस प्रकार वह उसके अङ्गों को पुष्ट करता है।

९—'इसका मल–मूत्र छिपाने के लिए भूमि में गढ़ा खोदो'। मल–मूत्र औषध है। यह पृथिवी ओषधियों की प्रतिष्ठा है। अत' इसे भूमि में अन्दर रखवाता है।

खण्ड ७

१०— 'दूषित रक्त से राक्षस को संयुक्त करो'। (बालक के तन में खराब खून न रहे)—यह बोले।

देवों ने भूसी और अन्नकण देकर राक्षसों को हवि-र्यज्ञों से, और खून के द्वारा महायज्ञ से बाहर रक्खा। यही यहाँ कहा कि खून बहाकर भी राक्षसों को बाहर निकालो।

कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञ में किसी राक्षस का नाम न ले क्योंकि यज्ञ राक्षस-रहित होता है।

उत्तर में कहते हैं कि नाम लेना ही चाहिए। जो भागी को उसके भाग से वञ्चित करता है वह दण्डनीय होता है, यदि वह नहीं तो, उसका पुत्र–पौत्र।

यदि नाम ले तो धीरे से ले, क्योंकि धीमी आवाज और राक्षस—दोनों छिपे रहते हैं। यदि जोर से बोलेगा तो उसकी वाणी राक्षसी हो जायेगी जैसी कि घमंडी या पागल की। जो ऐसा जानता है वह न तो स्वयं दृप्त होता और न उसकी सन्तान में कोई दुष्ट उत्पन्न होता है।

११—'हे दोष-शमन-कर्ताओ, इस की उल्लू की सी इसकी वनिष्ठु आँत है उसमें आवाज (गुड़-गुड़) न होने दो। न ही तुम्हारे पुत्र-पौत्र में कोई रोगी हो या रोए'— यह कह कर होता इस के स्वास्थ्य का भार देवों–मनुष्यों के शमिताओं के लिए सौंप देता है।

१२—'हे अध्रिगु, हे अपाप, शान्ति करो, अच्छी तरह दोष दूर कर शान्ति करो'—यह ३ बार बोले।

अध्रिगु स्वास्थ्य-शिक्षक, और अपाप धर्माचार्य हैं। होता इसे उन दोनों के लिए सौंप देता है।

होता कहता है— हे शमिताओ, जो यहाँ अच्छा कर्म करते हो वह हममें रहे, जो बुरा कर्म है वह दूर हो'। अग्नि देवों का होता था। उसने इसे वाणी से शासन किया। वाणीसे ही होता विशेष शासन करता है इसमें जो इधर-उधर, अधिक-कम हो जाता है उसे शमिता और निगृहीता के लिए बता देता है। होता सकुशल मुक्त रहता है और पूर्ण आयु देकर पूर्णायु प्राप्त करता है। ऐसा ज्ञाता भी पूर्णायु पाता है॥७॥

खण्ड ८

देव पहले पुरुष को द्रष्टा रूप में पाते हैं। उससे जब शक्ति निकल गयी तो अश्व में प्रविष्ट हुई और शक्ति-हीन पुरुष निन्दनीय हो जाता है।

जब प्राप्त अश्व से शक्ति निकल गयी तो वह गाय-बैल में आयी और शक्ति-हीन अश्व छोड़ दिया गया, वह गौरमृग के समान हो गया।

वे प्राप्त गौ के (पर्वत पर) शक्ति-हीन होने पर भेड़ से काम लेते हैं और गौ नीलगाय के समान हो जाती है।

जब भेड़ की कार्य–शक्ति समाप्त हो जाती है तो वे बकरी से काम लेने लगे और भेड़ का स्थान (मरु भूमि में) ऊँट ने लिया।

बकरी में शक्ति अधिक देर तक रहती है अतएव वह इन सब पशुओं में सबसे अधिक प्रयुक्त है।

प्राप्त हुई बकरी से निकल कर शक्ति इस पृथिवी

में प्रविष्ट हो जाती है और बकरी ऊंट के बच्चे के समान शक्ति-रहित बन जाती है। ये जो पशु शक्ति-रहित हो जाते हैं, इन (से उत्पन्न वस्तु) का सेवन न करे। उस शक्ति को पृथिवी में खोजा तो धान के रूप में मिली। घी-दूध के साथ चावलके पुरोडाश से पूरा लाभ होता है, केवल घी-दूध-दधि से भी लाभ होता है। जो ऐसा जानता है उसे चावल-घी-दूध आदि से लाभ पहुँचता है ॥ ८ ॥

खंड ९

पुरोडाश व बीजों से यज्ञ

जो यह पुरोडाश है वह पशु के समान है — धान का पुआल रोम, छिलका त्वचा, लाल कण रुधिर, चावलकी पिट्ठी और उसके कण मांस, कठोर पिट्ठी हड्डी के समान हैं। जो पुरोडाश से यज्ञ करता है, वह मानो सब पशुओं के यज्ञीय भाग (घी आदि) से यज्ञ करता है। इसलिए कहते हैं— 'पुरोडाश का सत्र दर्शनीय होता है'।

अब होता वपा (अन्न-बीजों) के लिए याज्या मन्त्र पढ़ता है—

४६४— युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्। युवँ सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमा-वमुञ्चतं गृभीतान् ॥ (ऋ० १.९३.५)

हे अग्नि और सोम, तुम दोनों समानकर्माओं ने आकाश में इन प्रकाशमान लोकों को धारण किया और सिन्धुओं को अपवित्रता से बचाया है।

दीक्षित तो सभी देवताओं से प्राप्य होता है, अतः कहते हैं कि दीक्षित का न खाये, वही जब इस ऋचा से यज्ञ करके उसे सब देवताओं से छुड़ाकर यजमान होजाता है, तब उसका खा लेना चाहिए।

अब वह पुरोडाश के लिए याज्या ऋचा पढ़ता है—

४६५— आन्यं दिवो मातरिश्वा जभार अमथ्ना-दन्यं परि श्येनो अद्रेः। अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधाना उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ (ऋ. १.९३.६)

वायु द्यौ से सोम लायी और अग्नि को मेघ से मथा। ब्रह्म से बढ़ाये गये ये अग्नि-सोम यज्ञ के लिए विशाल लोक बनाते हैं।

भाव यह कि पुरोडाश भी इधर-उधर से बनता है।

पुरोडाश की स्विष्टकृत् आहुति का मन्त्र—

४६६— स्वदस्व हव्या समिषो दिदीहि अस्म-द्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि। विश्वाँ अग्ने पृत्सु याञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥

ऋ० ३.५४.२२

हे अग्नि, तू हव्यों को स्वादिष्ठ कर और हमें अन्न दे—यह कहकर होता हविको स्वादिष्ठ करता और अपने लिए अन्न-रस प्राप्त कराता है।

अब वह 'इला' को बुलाता है। पशु ही इला हैं। इस प्रकार वह पशुओं (पुरोडाश और बालकों) को बुलाकर यजमान के लिए प्राप्त करा देता है ॥९॥

खण्ड १० [विधि ६]

मनोता सूक्त

अध्वर्यु होता से कहता है —" मनोता अग्नि के लिए हवि देने के निमित्त मन्त्र पढ़ो। वह ऋग्वेद मंडल ६ का पहला सूक्त पढ़ता है जिसमें तेरह मन्त्र हैं

४६७. त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता। त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १॥

हे अग्नि, तू पहला मनोता अर्थात् विचारों का बुनने वाला है, हे दस्म अर्थात् दर्शनीय अग्नि ! तू इस बुद्धि का होता अर्थात् बुलाने वाला है। हे वृषन् अर्थात् बलवान् अग्नि ! तू ऐसा है जिसको कोई सता नहीं सकता। तूने सब बलवान् शत्रुओं को पराजित करने के लिए बल धारण किया है।

४६८. अधा होता न्यसीदो यजीयानिलस्पद इषयन्नी-ड्यः सन्। तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२॥

हे अग्नि ! तू आज बड़ा यज्ञ करने वाला होता बनकर पृथ्वी या वेदी के ऊपर बैठा है, पूज्य होता हुआ और इषयन् अर्थात् हमारा भला चाहता हुआ। नेता लोग पहले तेरी इच्छा करते हुए हों और बड़े धन का विचार करते हुए तेरे ही पीछे चले।

४६९. वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवांसो

३ मनोता गौ, वाणी, अग्नि

अनुग्मन्। रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३॥

कोई ऐश्वर्य में सावधान मनुष्य बहुत धनों के साथ सत्पथ से जानेवाले के समान, प्रकाशमान, दर्शनीय, बड़े, बीज बोने की शक्ति रखनेवाले, सदा तेजस्वी अग्नि का अनुगमन किया करते हैं।

४७०—पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्। नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ४॥

देव का पद नमस्कार द्वारा पाते हुए अन्नेच्छुक अक्षय अन्न पाया करते हैं। वे भद्र सम्यक् दृष्टि रखते हुए पूज्य नामों को धारण करते हैं।

४७१— त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्। त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५॥

मनुष्य और उनके दोनों लोक-सम्बन्धी ऐश्वर्य तुझे पृथिवी पर बढ़ाते हैं। तू सदा ही मनुष्यों का रक्षक, संसार में चिन्तनीय, पिता और माता है।

४७२—सपर्येण्यः स प्रियो विश्वग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्। तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६॥

वह अग्नि पूज्य, प्रजाओं में सुखदायी, यज्ञ का अधिकारी स्थित है। हम घर में प्रकाशमान उसको घुटने मोड़ कर नमस्कार द्वारा प्राप्त हों।

४७३. तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः। त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहतारोचनेन ॥७॥

बुद्धिमान सुख चाहने वाले देवों की पूजा करने वाले हम लोग उस तुझ पूजनीय को खोजते हैं। हे प्रकाशवान अग्नि, तू बहुत प्रकाश के साथ लोगों को द्यौ लोक में ले जाता है।

४७४. विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्। प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८॥

हम तुझ अग्नि की उपासना करते हैं जो तू सदा रहने वाले लोगों का उपदेश या प्रकाश करने वाला स्वामी, शत्रुओं का घातक, कामनाओं की वर्षा करने वाला, स्तुति करने वालों को प्राप्ति योग्य अन्न देने वाला, पवित्र करनेवाला प्रकाशयुक्त धनों द्वारा पूज्य है।

४७५. सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम्। य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ६॥

हे अग्नि, वही मनुष्य पूजता है और स्तुति करता है जो तुझको समिधा के साथ हवियों को देता है। जो स्तुतियों द्वारा पूजा को समझता है वह तुझसे रक्षा किया होकर सब सुखों को धारण करता है।

४७६— अस्मा उते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः। वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १०॥

हे बलके उत्पादक अग्नि, हम इस तुझ बड़े की समिधाओं हव्यों, और स्तुतियों से बड़ा सत्कार करें। वेदी में वाणी और स्तोत्रों से तेरी कल्याण-सुमति के लिए यत्न किया करें।

४७७— आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः। बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११॥

जो द्यौ-पृथिवी को प्रकाश से व्याप्त करता, जो स्तुतियों से प्रशंसित और तारनेवाला है वह तू अग्नि, हमारे लिए बड़े अन्नों और ऐश्वर्यों से हमें विशेष प्रकाशित करे।

४७८— नृवद् वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः। पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२॥

हे वसु, हमारे लिए मनुष्यों से युक्त घर दो, पुत्र-पौत्रों के लिए बहुत पशु दो। हमारे लिए पाप-रहित, उत्तम अन्न बड़े कल्याणकारी हों।

४७९— पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम्। पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्ति अग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ १३॥

हे राजन् अग्नि, तेरे बहुत से धनों को तेरी कृपा से मैं भोग करूँ। हे बहुतों से वरणीय अग्नि, तुझ राजा में उपासक के लिए बहुत धन हैं।

अग्नि ही मनोता क्यों?

यहाँ एक प्रश्न है कि जब पशु अन्य (अग्नि-सोम) देवता का है तो मनोता के लिए अग्नि के सूक्त को क्यों पढ़ते हैं। इसका उत्तर यह है कि देवों में तीन मनोता हैं जिन में मन ओत प्रोत है। देवों में वाणी, गौ और अग्नि मनोता है जिसमें उनके विचार ओत-प्रोत हैं। अग्नि पूरा मनोता है। क्योंकि इसमें सब मनोता शामिल हैं। इसलिए मनोता के लिए हव्य देने में अग्नि-सम्बन्धी सूक्त पढ़ा गया।

विधि १०—

प्रधान हवि की आहुति

४८०— अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य
वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम्
अथाधत्तं यजमानाय शं योः॥
(ऋ० १.९३.७)

हे अग्नि और सोम ! बलवान् आप इस उपस्थित हवि को व्याप्त हो कर, ग्रहण कीजिए और प्रसन्न होइए। हमको कल्याण और कृपा से युक्त कीजिए। यजमान के लिए कल्याण दीजिये।

इसमें हविष् शब्द है। यह रूप की समृद्धता है। प्रस्थितस्य शब्द भी रूपसमृद्धता देता है। जो इस रहस्य को समझता है उसका हवि समृद्धि को देता और देवों को पहुँचाता है।

विधि ११ —

वनस्पति के लिए याग

वह वनस्पति के लिए आहुति देता है। प्राण ही वनस्पति है। जो इस रहस्य को समझ कर वनस्पति की आहुति देता है उसका हव्य शक्ति-युक्त होकर देवों को प्राप्त होता है।

विधि १२ —

अब वह स्विष्टकृत् आहुति देता है। स्विष्टकृत् प्रतिष्ठा है अर्थात् स्विष्टकृत् से अन्न में वह यज्ञ को स्थापित करता है।

विधि १३ —

इला से समाप्ति

अब वह इला का आह्वान करता है। पशु (पुरोडाश और बालक) ही इला हैं। इस प्रकार पशुओं का आह्वान करता है। पशुओं को यजमान में धारण कराता है।

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम.ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का पहला अध्याय पशु इष्टि समाप्त।



महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

सातवाँ (दूसरी पञ्चिका में द्वितीय) अध्याय

खण्ड १ (११)

देवों ने यज्ञ का विस्तार किया। उनपर असुरों ने आक्रमण किया कि इनके यज्ञ का विनाश करें। आप्री मन्त्रोंके पश्चात् पर्यग्निकरण से पहले, यूपके प्रति वे सामने से आये। देवोंने यज्ञकी ओर अपनी रक्षार्थ सावधान होकर, १ तरफ अग्नि के परकोटे बनाये जिन्हें चमकते देखकर वे आये असुर भाग गये। अग्नि से ही उन्होंने असुर-राक्षसों को पूर्व-पश्चिमसे हटाया। वैसेही यजमान यज्ञ और अपनी रक्षार्थ पर्यग्निकरण करते और मन्त्र पढ़ते हैं।

तब पशु(बालक)को उत्तर-मुख करके ले जाते हैं और यज्ञाग्नि उसके सामने रखते हैं। विचारनेपर यह बालक भी यजमान ही है जो इस ज्योति से स्वर्गलोक (सुखमय स्थान) को जायेगा—इसलिए वह स्वर्ग (गुरुकुल) जाता है।

उसे जहाँ लेजाने वाले हों वहाँ दर्भ बिछा कर आसनस्थ करते हैं, मल का गोपन-स्थान बनाते हैं, जो खाद है, अतः उसे भूमि में प्रतिष्ठित करते हैं।

प्रश्न है कि इसके जो भाग क्षीण होजाते हैं उन की पूर्ति कैसे होती है? उत्तर यह है कि पुरोडाश से उसकी पूर्ति होती है। जब पशुओं से मेध निकल गया तो चावल-जौ उत्पन्न हुए। अतः पुरोडाश-युक्त यज्ञ से पूरा इष्ट होता है। जो ऐसा जानता है उसका भी इष्ट पूरा होता है ॥ १ (११) ॥

खण्ड २ (१२)

उसके लिए वीजों को लाते हैं और उनपर स्रुवा से घी टपकाता हुआ अध्वर्यु कहता है 'मन्त्र पढ़ो'।

जो बूंदें टपकती हैं वे सभी देवताओं की होती हैं वे देवों तक प्रीतिरहित न पहुचें, अतः मन्त्र बोले—

४८१—जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्।
हव्या जुह्वानि आसनि ॥(ऋ० १.७५.१)

हमारी अति विस्तीर्ण और देवों के लिए प्रिय वाणी को स्वीकार कर, जब तेरे मुँहमें आहुतियाँ पड़ती हों।

इस मन्त्र से वह अग्नि के मुख में बूंदें डालता है, अब तीसरे मंडल के २१वें सूक्त को पढ़ता है—

४८२—इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व। स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १ ॥

हमारे इस यज्ञको अमर लोगों में रख। हे जात-वेद अग्नि, हमारी आहुतियों को स्वीकार कर। हे होता, पहले बैठकर चिकने घी की बूंदों को खा।

४८३—घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२ ॥

हे पवित्र करने वाले, चिकनी घी-युक्त बंदें तेरे लिए पड़ रही हैं। अपने धर्म के अनुसार श्रेष्ठ वर, जो देवों के योग्य है, हमको दे।

४८४—तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

हे अग्नि तुझ विप्र के लिए घी युक्त बूंदें पड़ रहीं हैं। ऋषि और श्रेष्ठ तू प्रज्वलित होता है। तू यज्ञ का रक्षक बन।

४८५—तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य। कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥

हे तेज चलने वाले और शक्तिशाली अग्नि, तेरे लिये घीकी चिकनी बूंदें पड़ रहीं हैं। कवियों द्वारा प्रशंसित और मेधिर अर्थात् प्रज्ञावान् अग्नि, तू बड़े

पशाक से आया है। आहुतियों को स्वीकार कर।

४८६— ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे। श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ ५ ॥

हम तेरेलिए (दूध के) मध्य से लीगयी, अत्यन्त ओजवाली चिकनाई को अर्पण करते हैं। हे वसु, तेरी त्वचा पर बूँदें पड़ती हैं, उन्हें देवों तक लेजा।

इन मन्त्रों के पश्चात् वह वषट् बोलता है।

बूँदें सब देवताओं की होती हैं, अत: यह वर्षा बूँद बूँद करके आती है। (२)

खण्ड ३ (१३)

अन्नबीजों का होम

प्रश्न— स्वाहाकृतियों की पुरोऽनुवाक्या, प्रैष और याज्या क्या है? उत्तर— ये जो ऋचाएँ पढ़ी गयीं वे पुरोनुवाक्या हैं, ऐसे ही प्रैष और याज्या।

प्रश्न— स्वाहाकृतियों के देवता क्या हैं?

उत्तर–'विश्वेदेवाः'। क्योंकि 'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवा:' कहकर यज्ञ करते हैं।

देवों ने यज्ञ, श्रम, तप और आहुतियों से स्वर्ग लोक जीता। उन को अन्न-बीजों के ही दान करने पर स्वर्ग प्रख्यात हुआ। वे बीजों का ही होम-दान कर अन्य कर्मों का अनादर करके ऊपर स्वर्ग लोक आये। तभी मनुष्य–ऋषि देवों के यज्ञस्थान पहुँचे कि यज्ञ के ज्ञान के लिए कुछ खोजेंगे। वे सब ओर घूमते हुए गये, पशुको ही आँतों [के रोगों]से रहित सोता पाया। उन्होंने जाना कि इतना ही पशु है कि जितना अन्न। अब जो इसको तीसरे सवन में पक्का करके प्रदान करते हैं वह इसलिए कि हमारा यज्ञ बहुत दानों से पूर्ण हो, केवल जीवात्मा से इष्ट हो। जो ऐसा जानता है उसका बहुत से दानों और केवल जीवात्मा से इष्ट होता है॥ ३ (१३)॥

खण्ड ४ (१४)

ये अन्न, अग्नि, घी और सोम की आहुतियाँ हैं वे अमृत, अशरीर आहुतियाँ हैं, उनसे यज्ञ करने वाला अमृतत्व (मोक्ष) को जीतता है।

जो यह अन्न है वह वीर्य ही है, क्योंकि दोनों लीन हो जाते, सफेद और अशरीर होते हैं। जो खून मांस है वह शरीर है। इसलिए कहे कि जितना खून-रहित है उतना प्रयुक्त करो।

वह आहुति ५ भागोंमें होती है—१. घी का उपस्तरण, २. सुवर्ण–टुकड़ा, ३. अन्न, ४-५ ऊपर से २ बार घी डालना। यदि सोना न हो तो पहले ही घी २ बार डाले। घी और सोना अमृत हैं। सोनाके बदले घी डालने से वही कामना प्राप्त होती है। इस प्रकार ५ भाग हो जाते हैं। यह पुरुष ५ भागों का है—लोम, त्वचा, मांस, अस्थि,मज्जा। वह जितना पुरुष है उतना ही यजमान का संस्कार करके अग्नि देवयोनि में आहुति देता है। वह उस में आहुतियों से सुवर्ण-शरीर के साथ उन्नत होकर सुखमय लोक को प्राप्त करता है॥ ४ (१४)

खण्ड ५ (१५)

प्रात: अनुवाक

अध्वर्यु—हे होता, प्रात: आनेवाले देवों के लिए अनुकूल ऋचाएँ बोलो। अग्नि, उषा और अश्विनौ प्रात: आनेवाले देव हैं। वे ७–७ छन्दों के द्वारा आते हैं। जो ऐसा जानता है उसके यज्ञमें वे आते हैं।

कभी स्वयं होता प्रजापति के द्वारा प्रातरनुवाक बोलने पर दोनों देव-असुर यज्ञ में आगये कि 'यह हमारे लिए कहेंगे, हमारे लिए'। किन्तु वह देवों के लिए ही बोले। इससे असुर हार गये। जो ऐसा जानता है उसका द्वेषी पापी शत्रु पराजित होता है।

क्योंकि प्रजापति ने उस ऋक्समूह को प्रात: बोला था अत: यह प्रातरनुवाक कहाता है।

यह बड़ी रात से ही बोलना चाहिए। जो सब के लिए वाणी और सब वेद के ग्रहण कराने के लिए श्रेष्ठ होता है उसकी पहले बोलीगयी वाणी का अनुसरण सब करते हैं। अत: बड़ी रात से, मनुष्यों की वाणी के पूर्व, पाठ करे। यदि वह बाद में पाठ करेगा तो उसकी वाणी 'अनुवाद' बन जायेगी।

पक्षियों के बोलने के पहले इसका पाठ करे। वे पृथिवी के मुख हैं, अत: उनसे पहले पाठ न करने से यज्ञ-वाणी न सुनी जा सकेगी, अत: पहले बोले।

अथवा जब अध्वर्यु आदेश दे तभी होता प्रातरनुवाक बोले। वे दोनों वाणी से ही पाठ करते हैं जो वेद है। वहाँ वही कामना पूरी होती है जो वाणी और वेद से पूरी होती है॥ ५ (१५)

खण्ड ६ (१६)

स्वयं होता प्रजापति के प्रातरनुवाक बोलने पर सब देवताओं ने चाहा कि पहले मेरा नाम ले। तब उसने ईच्छा की कि यदि एक का नाम लूंगा तो अन्य कैसे तृप्त होंगे। तब उसने यह ऋचा देखी—

४८७— आपो रेवती: क्षयथा हि वस्व: क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च। रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नी: सरस्वती तद् गृणते वयो धात्॥

(ऋ० १०.३०.१२)

अर्थ—हे धनयुक्त आप: (व्यापक ईश्वर), आप ऐश्वर्ययुक्त, धनों के ऊपर शासक हैं, यज्ञ, कल्याण और अमृत के धारक, धन और उत्तम सन्तान के पालक हैं। विद्या स्तोता के लिए अन्न-आयु दे।

'आप:-रेवती' सब देवता हैं। उसने इस ऋचा से प्रातरनुवाक किया जिससे सब देवता प्रसन्न हुए कि यह मेरे लिए कथन हैं, मेरे लिए कथन है। जो ऐसा जानता है उस का प्रातरनुवाक सब देवताओं से स्वीकृत होता है।

वे देव डरे कि बलवान् असुर हमारे इस प्रात: यज्ञ को ले लेंगे। इन्द्र ने कहा—मत डरो, मैं इन के लिए त्रिसमृद्ध प्रात:-वज्र से मार दूँगा। तब उसने यही ऋचा पढ़ी। १. अपोनप्त्र देवता २. त्रिष्टुप् छन्द, ३. वाणी—इन ३ वज्रों से असुरों को मारा और देव जीत गये। ऐसा जानने वाले के द्वेषी पापी शत्रु पराजित होते हैं।

कहते हैं कि होता वही हो जो इस ऋचा में सब छन्द उत्पन्न करदे। इसको ३ बार बोलने से [४४ गुणित ३=१३२ अक्षरों में] सब छन्द बन जाते हैं।

खण्ड ७ (१७)

कितने मन्त्र बोले जाएँ?

बड़ी आयु की कामना वाला १०० मन्त्र पढ़े। पुरुष की आयु, १०० वर्ष, १०० वीर्य और १०० इन्द्रियाँ (१० नाड़ियों में १०-१०) हैं, वह इनमें इसको स्थापित करता है।

यज्ञ की कामनावाला ३६० मन्त्र बोले। संवत्सर में ३६० दिन हैं। वह प्रजापति=यज्ञ है। जिसका ज्ञाता ३६० मन्त्र पढ़ता है यज्ञ उस के पास आता है।

प्रजा-पशु की कामना वाला ७२० मन्त्र पढ़े। संवत्सर में ७२० दिन-रात हैं, वह प्रजापति है जिस के होने पर प्रजा उत्पन्न होती है। ७२० मन्त्र पढ़ कर वह प्रजा-पशु पाताहै,जो ऐसा जानताहै वह भी।

अब्राह्मण या बदनाम अपराधी यज्ञ-कर्ता ८०० मन्त्र पढ़े। ८ अक्षरों का गायत्री-चरण होता है। गायत्री से ही देवों ने पाप-अपराध दूर किया। गायत्री से ही होता, और जो ऐसा जानता है वह, पाप-अपराध दूर करता है।

जिसको स्वर्ग की कामना हो वह १००० मन्त्र पढ़े। स्वर्गलोक यहाँ से घोड़े की १००० दिन की यात्रा पर है। अत: १००० संख्या स्वर्गलोक की प्राप्ति, सम्पत्ति और सङ्गति के लिए है।

सब कामनाओं की पूर्ति के लिए अपरिमित मन्त्र बोले। प्रजापति अपरिमित है,जिसका यह प्रिय प्रातरनुवाक है जिसमें सब कामनाएँ पूरी होती हैं। वह सर्वकामना-पूर्त्यर्थ मध्यरात से प्रात: तक असंख्य मन्त्र पढ़ता है। ऐसे ज्ञाता की सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। अत: अपरिमित मन्त्र बोलना चाहिए।

पहले अग्नि के ७ छन्द पढ़ता है क्योंकि ७ ही देवलोक हैं। जो ऐसा जानता है वह सब लोकों में सिद्धि पाता है।

फिर उषा के ७ छन्द पढ़ता है। ७ ही ग्राम्य पशु हैं। जो ऐसा जानता है वह गांव के पशुओं को प्राप्त करता है।

अन्त में होता दोनों अश्वि देवताओं के लिए ७ प्रकार के छन्द पढ़ता है, क्योंकि वाणी ७ प्रकारसे ७ छन्दों में बोली थी। सब वाणी और सब वेद प्राप्त करने के लिए वह ७ छन्दों में मन्त्र पढ़ता है।

तीनों देवों (अग्नि-उषा-अश्विनौ) के लिए मन्त्र पढ़ता है क्योंकि ये ३ ही लोक (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ) परस्पर मिलकर सत्त्व, रजस्, तमस से त्रिवृत हैं,इनके ही विजयार्थ मन्त्र पढ़ता है।

खण्ड ८ (१८)

प्रातरनुवाक कैसे बोलें ?

प्रश्न— प्रातरनुवाक कैसे बोलना चाहिए ?

उत्तर—छन्दों के क्रम के अनुसार बोलना चाहिए क्योंकि छन्द प्रजापति के अङ्ग हैं और जो यज्ञकर्ता है वह प्रजापति है अतः यह यजमान के हित में है।

प्रश्न—क्या छन्द प्रत्येक पादपर रुककर बोले? चौपाये पशुओं के पाने के लिए ४ पादों में बोलना ठीक है।

उत्तर— प्रतिष्ठा के लिए प्रातरनुवाक आधी ऋचा पर ही रुककर बोलना चाहिए। पुरुष २ पैर का है, पशु ४ का। होता आधी आधी ऋचा बोल कर यजमान को चौपाये पशुओं में २पैर के मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित करता है।

प्रश्न— ७ छन्दों का क्रम यह है— गायत्री २४ अक्षर, उष्णिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, पंक्ति ४०, त्रिष्टुप् ४४, जगती ४८ अक्षर। इसके विपरीत प्रातरनुवाकमें क्रम है—गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती, उष्णिक्, जगती, पंक्ति। यह व्यूढ़ हुआ, यह अव्यूढ़ कैसे होता है ?

उत्तर— क्योंकि बृहती छन्द दोनों क्रमोंके बीच में है, इसके बीच से नहीं हटता, अतः अव्यूढ है।

कुछ देवता आहुति के भागी हैं, कुछ सामवेदीय स्तोमों और छन्दों के भागी हैं। पहले आहुतियों से और अन्य स्तोमों तथा शंसन (मन्त्रपाठों) से तृप्त होते हैं। जो ऐसा जानता है उसके ये दोनों प्रकार केदेवता प्रसन्न और अभीष्ट-दाता होते हैं।

३३ देव सोमपा हैं— ८ वसु, ११ रुद्र, [१२] आदित्य, १ प्रजापति और १ वषट्कार। इन्हें सो[म] से तृप्त किया जाता है। ३३ असोमपा हैं—११ प्रया[ज] ११ अनुयाज और ११ उपयाज। इन्हें पुरोडाश [से] सन्तुष्ट किया जाता है। जो ऐसा जानता है उस[के] दोनों ही प्रकार के ये देवता प्रसन्न और अभी[ष्ट-दाता] होते हैं।

इष्टि की समाप्ति

अब होता इस अन्तिम मन्त्रसे समाप्त करता [है]

४८८. अभूदुषा रुशत् पशुः
आग्निरधायि ऋत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू
रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हव[म्]
(ऋग्वेद मण्डल ५, सूक्त ७५, मन्त्र [९])

अर्थ— पशु पालने वाली उषा आती है, ऋतु अनुकूल अग्नि का आधान किया जाता है, हे [धन]वान्, दुःखनाशक, मधुर-स्वभाव, अश्विनौ, [तुम] दोनों का मर्त्य-रहित अमर रथ युक्त किया जा[ता] है। मेरी पुकार सुनिए।

प्रश्न— इस सोम-याग के प्रातरनुवाक के [अग्नि,] उषा और अश्विनौ सम्बन्धी ३ भाग बताये, तो एक ही ऋचा से समाप्ति क्यों और कैसे की गयी?

उत्तर— क्योंकि इस एक ही ऋचा में तीनों [का] वर्णन है—पहले चरण में उषा का, दूसरे में [अग्नि] का और अन्तिम चरणों में अश्वियों का, अतः एक में ही सब तीनों भाग समाप्त होते हैं॥

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम.ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का दूसरा अध्याय पशु इष्टि समाप्त।

——❀——

ऐतरेय ब्राह्मण (अध्याय ८)

पञ्चिका २, अध्याय ३

खण्ड १ (१९)

अपोनप्त्रीय सूक्त

सरस्वती के किनारे सत्र (१२ से अधिक दिन तक चलनेवाला बहुत यजमान-युक्त यज्ञ) करते हुए ऋषियों ने इलूषा के पुत्र कवष को यह कहकर यज्ञ से दूर किया कि यह दासी-पुत्र, ज्वारी अब्राह्मण हमारे मध्य कैसे दीक्षित हुआ ? उन्होंने उसे मरु में निकाल दिया कि प्यासा मरजाय, सरस्वती का जल न पी सके। निर्जल स्थान में प्यासे उसने अपोनप्त्रीय सूक्त (ऋ० १०.३०) के दर्शन किये, और जल के प्रिय धामको प्राप्त हुआ। जल पास आया, सरस्वती उसके चारों तरफ बहने लगी। इसलिए इस स्थान को परिसारक कहते हैं।

वे ऋषि बोले— इसे देव जानते हैं, इसे पास में बुलालें। उसे बुलाकर यहाँ अपोनप्त्रीय सूक्त प्रयुक्त किया। उससे वे जल और देवों के प्रिय धाम पहुँचे।

जो ऐसा जानता और इस अपोनप्त्रीय को करता है वह जल और देवों का प्यारा धाम पाता है तथा परम लोक जीतता है। अत: इसका पाठ सदा करना चाहिए। जहाँ ऐसा विद्वान् इसका निरन्तर पाठ करता है वहाँ प्रजा के लिए बादल सदा बरसता है। यदि रुक रुक कर पढ़ता है तो बादल पहाड़ पर ही बरसेगा। अत: लगातार ही पढ़ना चाहिए। यदि पहली ऋचा को बिना रुके ३ बार पढ़े तो पूरा सूक्त निरन्तर पढ़ा हुआ माना जा सकता है॥ १(१९)

खण्ड २ (२०)

ऋ० १०.३० की १-९ ऋचाएँ क्रमश: पढ़ कर ११ वीं पढ़े और १० वीं ऋचा उस समय पढ़े जब 'एकधना' नामक जल लाये। जल को आता हुआ देखकर १२ वीं ऋचा पढ़े—

४८९. प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु अपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति। महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥ १ ॥

मन के योग के समान, ब्रह्म के लिए स्तुति देवों के द्वारा आप: [जल, लोकों और आप्त जनों] को अच्छी तरह प्राप्त हो। मित्र - वरुण (हाइड्रोजन-आक्सीजन) की बड़ी शक्तिको बड़े बली (जल)के लिए दान कर।

४९०. अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूत अच्छाप इतोशतीरुशन्त:। अव याश्चष्टे अरुण: सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ता: ॥२॥

हे अहिंसक वैज्ञानिको, तुम उत्तम सामान के साथ होओ और चाहे हुए जलको पाओ जिसे अरुण सुरश्मि सूर्य एकत्र करता है उस तरङ्ग को फेंको।

४९१. अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम्। स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥

हे वैज्ञानिको, समुद्र तक जाओ, सामानसे सूर्य और जहाजको सङ्गत करो। वह तुम्हें पवित्र जलतरङ्ग दे।

४९२-९३. यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्त: यं विप्रास ईळते अध्वरेषु। अपां नपान्मधुमतीरपो दा: याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय॥ ४॥ (अथ० १४.१.३७)

जो बिना ईँधन के, अन्तरिक्ष में दीप्त होता है, जिसे मेधावी यज्ञों में चाहते हैं वह सौर तेज और मेघ मधुर जल देता है जिनसे विद्युत् और वायु बढ़ता है।

४९४. याभि: सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्य:। ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभि: पुनीतात् ॥ ५ ॥

कल्याणी स्त्रियों के साथ मनुष्य के समान जिससे सोम प्रसन्न होता है उस जल का, हे अध्वर्यु, अच्छी तरह पाने के लिए यत्न कर, उससे सींच तथा ओषधियों के साथ पवित्र कर।

४९५. ए वेचूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरे-त्यच्छ। सं जानते मनसा संचिकित्रेऽध्वर्यवो धिष-णापश्च देवीः ॥ ६ ॥

जैसे युवाके लिए युवतियाँ झुकती हैं, कामनावाला कामनावाली को पाता है वैसे ही अध्वर्यु मनसे जान कर क जल पर विचार करते हैं।

४९६. यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुंचत्। तस्मा इन्द्राय मधुमन्त-मूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥

जो घिरे हुए पानी के लिए स्थान बनाता है, जो बड़ी बाधा से छुड़ाता है उस सूर्य और वायु के लिए जल मधुर तरङ्ग को देता है।

४९७. प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः। घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८॥

हे नदियों, जो तुम्हारे अन्दर मधुरता का भंडार है वह इस के लिए प्राप्त कराओ। यज्ञों में स्तुति-योग्य घृतसे पुष्ट इसको पाकर,हे प्रजाओं, मेरा वचन सुनो।

४९८. तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानम् ऊर्मिं प्रहेत य उभे इयर्ति। मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥

नदियाँ शुद्धि और तृप्ति— दोनों देती हैं वे उस हर्षप्रद, इन्द्र की पेय, सुखदाती, चाहनेयोग्य, आकाश से उत्पन्न, चारों तरफ बहनेवाली, प्राण-उदान-तेज इन ३ कारणोंवाली, शक्तिस्रोत तरङ्ग को बहाती हैं।

४९९. आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः। ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥ १० ॥

हे द्रष्टा, तू आवर्तनशील, दो धाराओं वाले, मेघों में गति करनेवाले, नियम से चलनेवाले, अन्नोत्पादक, संसार के पालक, वृद्धि-कारक, कारण-सहित जल की प्रशंसा के साथ वर्णन कर।

५००. हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्। ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टी-वरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥ ११ ॥

हे आप्त जनो, देवों के यजन के लिए हमारे यज्ञको बढ़ाओ, धन के पाने के लिए वेद-ज्ञान प्राप्त कराओ जल के योग में बाधक को हटा दो और हमारे लिए फलदायक होओ।

[१२ वें मन्त्र के लिए देखो सं० ४८७]

जब होता जल को आता देखे तो कहे—

५०१. प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि। अध्वर्युभिः मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥ १३ ॥

हे आपः (जल), मैं तुम्हें घी, मधुर दूध धारण किये, अध्वर्युओं द्वारा मनसे जाने हुए और आत्मा केलिए उत्पादित सोमको धारण किये हुए देखता हूं।

जब जल आ जाये तो यह मन्त्र पढ़े—

५०२. आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा। महो राये बृहतीः सप्तविप्रो मयो-भुवो जरिता जोहवीति ॥ (ऋ० ५.४३.१)

स्तोता विद्वान् बड़े ऐश्वर्य के लिये जिनका उपदेश बार बार किया करते हैं, वे गौएँ और ७ छन्दों में वेद-वाणियाँ मधुर दुग्ध के साथ, सुख देती हुई हमारे पास आयें।

जब वसतीवरी-एकधना मिलाये तो यह पढ़े—

५०३-४. समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति। तनू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ (ऋ० २.३५.३ सा ६०७)

कुछ नदियाँ साथ मिलकर चलती हैं कुछ अकेली ही जाकर महान् समुद्र को भर देती हैं। पवित्र जल उसी पवित्र, प्रकाशमान, जल-मध्य-वर्तमान अग्नि के आश्रय में स्थित हैं।

जो जल पहले दिन लाये जाते हैं उनको 'वसतीवरी' और जो उसी दिन प्रातःकाल लाये जाते हैं उनको "एकधन" कहते हैं। ये दोनों जल इस बात पर स्पर्धा करने लगे कि हम यज्ञ को पहले ले जावें। भृगु ने देखा, उसने इनको (ऋ० २.३५.३)से शान्त किया। जो इस रहस्य को समझ कर जलों को शान्त करता है वह इसी प्रकार यज्ञ को पहले ले जायेगा।

होता के चमसे में वसतीवरी और एकधना जलों के डालने पर यह मन्त्र पढ़ता है—

५०५-६. आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्य-न्ति विततं यथा रजः। प्राचैर्देवासः प्रणयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ (अ २०.२५.२, ऋ१.८३.२)

जल के समान विदुषी स्त्रियाँ विद्वान् को प्राप्त करें तथा सूर्य के समान विस्तृत रक्षा-स्थान को देखे। विद्वन् जन, अग्रगामी विद्वानों के साथ योग्य व्यक्ति

को प्रमुख पद पर स्थापित करते हैं और श्रेष्ठों के समान ईश्वर–वेद के प्रेमी जन को प्राप्त करते हैं।

अब होता अध्वर्यु से पूँछता है— क्या तुमको जल मिल गये ? जल ही यज्ञ है। इस प्रश्न से तात्पर्य यह हैं कि क्या यज्ञ मिल गया ? इस पर अध्वर्यु उत्तर देता है — मिल गये। देख लो ।

अब होता अध्वर्यु से कहता है —

हे अध्वर्यु, इन जलों से तुम इन्द्र के लिये मधु सहित सोमको, जो वर्षा लानेवाला और शुभ परिणाम वाला है, बीच में अन्य कृत्य करके निचोड़ो। वह इन्द्र कैसा है ? वसु वाला, रुद्र वाला, आदित्य वाला, ऋभुवाला विभुवाला, अन्नवाला, बृहस्पतिवाला और विश्वदेववाला है जिसको पीकर इन्द्रने वृत्रोंको मारा और शत्रुओं को पराजित किया। ओ३म् — यह कह कर होता अपनी जगह से उठता है। उठ कर जलों का सम्मान करता है जैसे जब कोई प्रतिष्ठित पुरुष निकट आताहै तो उठकर सम्मान करते हैं। इसलिये होता को सम्मानार्थ जलों के पीछे जाना चाहिए। यदि दूसरा कोई भी यज्ञ करे तो भी यश होता का है। इसलिये मन्त्र पढ़ने वाले को जल के पीछे जाना चाहिये। उसके पीछे जाते हुए यश की कामना वाले उसे यह मन्त्र बोलना चाहिए—

५०७-८. अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ (अ०१.४.१ ऋ० १.२३.१६)

रक्षक जल –धारायें भाई–बहिनों के समान यज्ञ कर्ताओं के मार्गों से, जल को मधुरता से युक्त करती हुई गति करती हैं ।

जो यश की कामना करे वह यह मन्त्र पढ़े ।

जो तेज, ब्रह्मवर्चस् की कामना करे वह यह मन्त्र पढ़े–

५०९–१०. अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥(य० ६.२४, ऋ०१.२३.१७)

वे जल धारायें हमारे यज्ञ को पुष्ट करें जो सूर्य में पास रहती हैं और जिनके साथ सूर्य वर्तमान रहताहै।

जो पशु की कामना हो तो यह मन्त्र पढ़े —

५११-१२. अपो देवीरुपह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ (अ० १.४.३, ऋ १.२३.१८)

मैं उन दिव्य जलों को प्राप्त करूँ जहाँ हमारी गौएं (गायें, भूमियाँ, सूर्य-किरणें) उन्हें पीती हैं। नदी–नहरों से मनुष्य अन्न उत्पन्न करें ।

५१३. एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः। नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥ (ऋ० १०.३०.१४)

जीवों के पालक ये ऐश्वर्य – युक्त जल पृथिवी पर आते हैं। हे मित्र अध्वर्युओं, इन्हें प्राप्त करो और हे जलविद्या जाननेवालो, जल वर्षक (सूर्य-वायु आदि) से सम्बन्धित होकर इन जलों को पृथिवी के क्षितिज पर धारण करो।

५१४. आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन् देवयन्तीः। अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥ (ऋ० १०.३०.१५)

गति-शील, सूर्य –किरणों के प्रति जाने वाले ये जल इस वायु-मण्डलस्थ आकाश में आते हैं और वायुमण्डलमें रहते हैं। हे अध्वर्युओ, सूर्य वा वायु के लिये तेजोयुक्त वाष्पमय पदार्थ उत्पन्न करो, तुम्हारा देवयज्ञ सुख से सम्पन्न हो। २ (२०

खण्ड ३ (२१) ❁ उपांशु और अन्तर्याम ❁

प्रातरनुवाक यज्ञ का शिर है । उपांशु और अंतर्याम प्राण और अपान हैं। (उपांशु और अंतर्याम दो घड़े होते हैं जिनमें सोम रखा जाता है । घड़ों के ऊपर जो छोटे प्याले से होते हैं उनको उपांशु ग्रह और अंतर्याम ग्रह कहते हैं) वाणी वज्र है। जब उपांशु और अंतर्याम से आहुतियाँ दी जाती हों तो होता शब्द न बोले, यदि वह बोलेगा तो इस वाणी रूपी वज्र के द्वारा यजमान के प्राण ले लेगा। यदि बोल पड़े तो किसी अन्य को चाहिए कि होता से कह दे कि तुमने वाणी बोल कर वाणी रूपी वज्र से यजमान के प्राण ले लिये, अब तुम्हारे भी प्राण चले जायँगे। सदा ऐसा ही होता है। इसलिये जब उपांशु और अन्तर्याम से आहुतियाँ दी जायं तो होता वाणीको न निकाले। जब उपांशु से आहुति दी जा चुके तो वह बोले—

प्राणं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय।

अब वह श्वास खींचे और कहे—

हे प्राण, मुझ में प्राण धारण करो।

अन्तर्याम ग्रह से आहुति के पश्चात् वह बोले—

अपानं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय ॥

प्रश्वास बाहर निकाल कर कहे—

हे अपान, मुझमें अपान धारण करा।

फिर जिस पत्थर पर उपांशु का सोम पीसा गया उसको यह कहकर छूना है—"व्यानाय त्वा" और वाणी को छोड़ता है। यह उपांशु-सवन आत्मा है। होता इस प्रकार आत्मा में प्राण धारण करा के मौन को छोड़ता है और पूरी आयु को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वह भी जो इस रहस्य को समझता है॥ ३(२१)[५१]

खण्ड ४ (२२)

बहिष्पवमान स्तोत्र

ऋग्वेद ९.११.१

प्रश्न-होता बहिष्पवमान केलिए जाते हुए अध्वर्यु के साथ चले या न चले। कुछ लोग यह कहते हैं कि चले, क्योंकि बहिष्पवमान का स्तोत्र मनुष्यों और देवों दोनों के लिए है। इसलिये यह भी उनमें चल सकताहै। परन्तु यह विचार ठीक नहीं। यदि वह चलेगा तो ऋक् को साम के पीछे डाल देगा।

यदि कोई उसे ऐसा करते भी देखे तो उससे कह दे— "यह होता साम गाने वालों के पीछे हो लिया और हमने अपना यश उद्‌गाता को दे दिया, यह अपने स्थानसे गिर गया और गिरता रहेगा"। ऐसा सदा होता है। इसलिये जहाँ बैठा है वहीं बैठा रहे और यह अनुमन्त्र पढ़ता रहे—

यो देवानामिह सोमपीथो यज्ञे बर्हिषि वेद्याम्।
तस्यापि भक्षयामसि॥

अर्थात् इस बर्हि यज्ञ में देवों के लिए सोम निकाला गया, उसे हम खावें।

इस प्रकार होता उस सोमसे वंचित नहीं रहता, अब उसको कहना चाहिए —

"मुखमसि मुखं भूयासम्"

तू मुख है। मैं भी मुख अर्थात् मुख्य हो जाऊँ। बहिष्पवमान यज्ञ का मुख (मुख्यभाग) है। जो इस रहस्य को समझता है वह मुख्य होता है।

❀ पयस्या की प्रशंसा ❀

दीर्घजिह्वी (लम्बी जवान वाली) नाम की एक आसुरी स्त्री थी। उसने देवताओं के प्रातः-सवन को चाट लिया। उस में विष आ गया। देवों ने इसका उपचार करना चाहा। उन्होंने मित्र और वरुण से कहा—तुमदोनों इसका उपचार करो।

उन्होंने कहा—अच्छा पहले हम तुमसे वर मांग लें। देवों ने कहा—माँगो। उन्होंने पयस्या (मट्ठा) माँग लिया। उससे सोमको ठीक करदिया॥४(२२)

खण्ड ५ (२३)

पुरोडाश

देवों के सवन साथमें जुड़े नहीं रहते थे। उन्हों ने पुरोडाशोंको देखकर प्रत्येक सवनका भाग अलग कर दिया। इनको सोम से पहले दान दिया। अतः इनका नाम पुरोडाश हुआ।

कुछ का मत है कि पुरोडाश इस प्रकार बांटे— प्रातःसवन के लिए— ८ कपालों का, मध्यके लिए- ११ का और तीसरे सवन के लिए — १२ कपालों का। क्योंकि सवन छन्द के अनुसार हैं। किन्तु यह मान्य नहीं। सवनों के पुरोडाश सब इन्द्रके हैं,अतः उनको ११ कपालों का ही होना चाहिए।

कुछ का कथन है कि सोम की रक्षाके लिए पुरोडाश का बिना घी लगा भाग ही खाये क्योंकि इन्द्र ने घृत-वज्र से ही वृत्र मारा था। किन्तु यह मान्य नहीं। क्योंकि हवि और सोम दोनों अग्नि में छोड़े जाते हैं अतः जो भाग चाहे, खाले। ये हवियाँ यजमान के पास और इस रहस्य को समझने वाले के पास सब ओर से आजाती हैं॥ ५ (२३)

खण्ड ६ (२४)

हविष्पंचक

५ प्रकार की हवियों को समझने वाला समृद्धि पाता है। वे ये हैं—धान, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और पयस्या। यज्ञ के अक्षर-पञ्चक को समझने वाला समृद्धि पाता है। ये हैं—सु, मत्, पद्, वग्,दे। [ये निम्नलिखित होतृ-जप के आद्य अक्षर हैं—

सुपूजितं मत्प्रहृष्टं पतु सर्वव्यापि तच्च वक्।
सर्वस्य वक्त्र ब्रह्मैव दे फलानां प्रदात् तत्॥

—सम्पादक]

नराशंस-पंचक

जो यज्ञ की नराशंस-पंक्तिको जानता है वह इस के द्वारा समृद्धि पाता है। प्रातः सवन के २ नराशंस (चमस), मध्याह्नके २, और तीसरे सवन का १ हैं।

सवन-पंचक

जो यज्ञ की सवन-पंक्ति को समझता है वह इस के द्वारा समृद्धि पाता है। ये हैं— सोम-याग के पहले दिन का पशु-उपवसथ, ३ सवन, पशुरनूबन्ध्य।

हविष्पञ्चक की याज्या ऋचा यह है—

हरिवाँ इन्द्रो धाना अत्तु पूषण्वान् करम्भं सरस्वतीवान् भारतीवान् परिवापः इन्द्रस्यापूपः।

२ हरियोंवाला इन्द्र धान खाये, पशुओंवाला पूषा करम्भ, सरस्वती-भारती का परिवाप और इन्द्र का पूआ है। इन्द्र के २ हरि ऋक् और साम, पशु पूषन् हैं, करम्भ अन्न, सरस्वती वाणी, प्राण भरत, परिवाप (खीलें) अन्न और पूआ इन्द्रिय है। इस प्रकार यज्ञ करके होता यजमान को देवताओं का सायुज्य, सारूप्य और सालोक्य प्राप्त करा देता है तथा स्वयं और इस रहस्य का जानने वाला भी श्रेय के सायुज्य तथा श्रेष्ठता को पाता है।

पुरोडाश के हर सवन की स्विष्टकृत् आहुति यह है— 'हविरग्ने वीहि' (हे अग्नि, हवि खा)।

इस प्रकार अवत्सार ऋषि अग्निके प्रिय धाम को पागया और परम लोक को पहुंच गया। जो इस को समझ कर हवि-पंचक की आहुति देता और याज्य मन्त्र बोलता है वह भी यही लाभ पाता है। ६(२४)

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त।



महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ

नवाँ (दूसरी पञ्चिका में चतुर्थ) अध्याय

खण्ड १ (२५)

सोम-पान का अधिकार

सोम को पहले पीने के लिए देव झगड़ पड़े कि मैं पहले पिऊँ। वे इस बात पर एकमत हुए कि दौड़ में जो जीत जाये वही पहले पिये। तदनुसार वे दौड़े। उनमें वायु नियत स्थानपर प्रथम पहुँचा, फिर इन्द्र, फिर मित्र-वरुण, फिर अश्विनौ। इन्द्र ऐसा दौड़ा कि वायु के पास गिर पड़ा। तब बोला—दोनों साथ आये। अतः दोनों जीते अतः आधा भाग मुझे मिले। वायु बोला— नहीं, मैं ही जीता हूं। इन्द्र ने

कहा—तीसरा भाग ही मिले। वायुने कहा—नहीं। इन्द्र ने कहा— चौथाई ही मिले, हम दोनों ही जीते हैं। वायु मान गया। तभी से इन्द्र को चौथाई और वायु का ३ भाग मिलते हैं। इन्द्रवायु के बाद मित्र-वरुण, फिर अश्वी जीते। वे जिस क्रम से जीते उसी क्रम से उन्हें सोम-पान-अधिकार मिला।

ऐन्द्र-वायवीय ग्रह (पात्र)

इन्द्र-वायु के ग्रह (सोम के घड़े) में इन्द्र का चौथाई भाग है। ऋ० ४.४६.२ (आगे सं० ५१८) में वायु को इन्द्रसारथि बताता है। अतः जब वीर पुरुष युद्ध में लूट का माल लेते हैं तो सारथि कहते हैं कि चौथाई भाग हमारा है क्योंकि इन्द्रने वायुका सारथि बनकर विजय पाई थी ॥ १ ॥ (२५)

खण्ड २ (२६)

ये जो २-२ देवोंके सोम-ग्रह हैं उनमें इन्द्र-वायु के वाणीप्राण, मित्र-वरुण के चक्षु-मन और अश्विओंके श्रोत्र-आत्मा हैं। कुछ लोग इन्द्र-वायु के घड़े में से आहुति देते समय २ अनुष्टुभों की पुरोनुवाक्या व २ गायत्री छन्दों की याज्या पढ़ते हैं [अनुष्टुप् वाणी की और गायत्री प्राण की], किन्तु यह मान्य नहीं। क्योंकि पुरोनुवाक्या याज्या से बड़ी हो गई। जब याज्या ऋचा बड़ी या बराबर हो तब ही सफलता होती है।

❀ इन्द्र-वायु की पुरोनुवाक्या-याज्या ❀

वायु की पुरोनुवाक्या यह है—

५१५. वायवायाहि दर्शत इमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ [ऋ० १.२.१]

हे वायु, आओ, ये सोम सुशोभित हैं, उनकी रक्षा करो, इस पुकार को सुनो।

दूसरी इन्द्र-वायु की पुरोनुवाक्या यह है—

५१६. इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ [ऋ० १.२.४]

वायु की याज्या ऋचा यह है—

५१७. अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु।
त्वं हि पूर्वपा असि ॥ [ऋ० ४.४६.१]

हे वायु, तू सोमको पहले धारण कर, तू पूर्वपा है। इससे यजमानमें प्राण धारण कराता है, क्योंकि वायु प्राण है। आगे इन्द्र-वायु की याज्या है—

५१८. शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ [ऋ० ४.४६.२]

इसमें इन्द्र के पद से वाणी को धारण कराता है क्योंकि वह इन्द्र की है। इस प्रकार यज्ञ को विषम किए प्राण-वाणीकी कामना पूरी करता है।

खण्ड ३ (२७)

२ देवों का सोम प्राण है। उसे एक ही पात्र से लेते हैं क्योंकि सब प्राण एक ही हैं। आहुति दो देते है क्योंकि प्राण २ हैं। जिस मन्त्र से अध्वर्यु सोमपात्र देता है उसी से होता लेता है—

५१९. एष वसुः पुरूवसुरिहवसुः पुरूवसुर्मयि वसुः पुरूवसुर्वाक्पा वाचं मे पाहि ॥

हे वाणी के रक्षक, मेरी वाणी की रक्षा कर। होता ऐन्द्र-वायव्य ग्रह से सोम पीकर कहता है—

५२०. उपहूता वाक् सह प्राणेनोप मां वाक् प्राणेन ह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस् तनूपावानस्तन्वस् तपोजा उप मां ऋषयो दैव्यासो ह्वयन्तु तनूपावानस्तन्वस्तपोजाः।

दिव्य शरीरोंके रक्षक और तपसे उत्पन्न ऋषि (प्राण) बुलाये गये, वे मुझे बुलावें।

मैत्रावरुण ग्रह

अब होता मित्र-वरुणके पात्र से सोम पीता है—

५२१. एष वसुर्विदद् वसुरिह वसुर्विदद् वसुर्मयि वसुर्विदद् वसुश्चक्षुष्पा चक्षुर्मे पाहि।

हे आँख के रक्षक, मेरी आँख की रक्षा कर। अब वह पढ़ता है —

५२२. उपहूतं चक्षुः सह मनसोप मां चक्षुः मनसा ह्वयतामुप हूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उप मामृषयो दैव्यासो ह्वयन्तु तनूपावानस्तन्वस्तपोजाः।

मनके साथ आँख बुलाई गई। वह मुझे बुलावे। दिव्य तनूपा और तपोजा ऋषि (प्राण) बुलाये गये, वे मुझे बुलायें।

अब होता अश्विओं के पात्र से सोम पीता है

अश्विओं का ग्रह (पात्र)

एष वसुः संयद्वसुरिह वसुः संयद्वसुर्मयि वसुः संयद् वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि ।

हे कान के रक्षक, मेरे कान की रक्षा कर ।

अब वह पढ़ता है—

५२४. उप हूतं श्रोत्रं सहात्मनोप मां श्रोत्रं सहात्मना ह्वयताम् ...... इत्यादि ।

कानको आत्माके साथ बुलाया वह मुझे बुलाये ।

इन्द्रवायु के ग्रह से पीते समय होता पात्र के मुँह को अपनी ओर करता है, क्योंकि प्राण–अपान उस के सामने हैं । इसी प्रकार मित्र-वरुण के ग्रह में से पीता है क्योंकि दोनों आँखें उसके सामने हैं. अश्विओं के ग्रह से पीते समय अपने मुखको पीछे फेर लेता है क्योंकि मनुष्य और पशु चारों ओर से शब्द सुनते हैं । (३)

खण्ड ४ (२८)

सभीदो देवताओं के सोम –पात्र प्राण हैं । इसलिए प्राणों को जारी रखने और उनको टूटने न देन के लिये याज्यं मन्त्रों को निरन्तर पढ़ना चाहिए । दो देवताओं के सोमपात्र प्राण हैं । अतः एव होता अनुवषट्कार न पढ़े । इससे प्राणों का क्रम टूट जायगा । क्योंकि अनुवषट्कार क्रम टूटने का द्योतक है । यदि कोई होताको अनुवषट्कार करते देखे तो कहे कि तुमने प्राणों का क्रम वन्द कर दिया, जो अन्यथा बन्द न होता और इसलिए तुम्हारा जीवन समाप्त हो जायगा । ऐसा सदा होता है । इसलिये दो देवताओं के सोम-पात्रों पर अनुवषट्कार न पढ़े ।

इस पर कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि जब मैत्रावरुण पुरोहित दो बार प्रतिज्ञा करता है और दो वार याज्य मन्त्र पढ़ने की प्रेरणा करता है तो होता एक बार प्रतिज्ञा करके दो बार वषट्कार क्यों बोलता है ? (आगू का अर्थ यह है कि पुरोहित कहता है " होता यक्षत " या "होतर्यज" यह वह दो बार कहता है । होता एक बार उत्तर देता है " ये३ यजामहे । " प्रश्न यह है कि दो प्रश्नों का होता एक ही उत्तर क्यों देता है) इसका उत्तर यह है कि दो देवदाओं के सोम-पात्र प्राण हैं और आगू वज्र है । इसलिए होता यदि दो याज्य मन्त्रों के बीच में आगू बोल दे तो वह वज्र से यजमान का जीवन काट दे । (यदि कोई होता को ऐसा करते देखे तो) कहे कि तूने यजमान के जीवन को आगू वज्र से काटकर अपना जीवन भी काट डाला । सदा ऐसा ही होता है । होता दो याज्य मन्त्रों के बीच में आगू न बोले ।

इसके अतिरिक्त मैत्रावरुण पुरोहित यज्ञ का मन है और होता वाणी है । मन से प्रेरित होकर होता वाणी बोलता है । जो मन से विरुद्ध वाणी बोलता है वह वाणी असुरों को प्यारी होती है, देवों को नहीं । होता का आगू १ मैत्रावरुण पुरोहित के दोनों आगुओं के अनुकल है । (४)

खण्ड ५ (२९) ❀ (ऋतु-याग) ❀

ऋतु–याज्य प्राण हैं । जो ऋतु–याग करते हैं अर्थात् जो ऋतुओं के लिए आहुतियाँ देते हैं वे यजमान को प्राण धारण कराते हैं । 'ऋतुना' से आरम्भ होते हुए ऋतुओं के छः मन्त्र बोल कर प्राण, 'ऋतुभिः' से आरम्भहुई ४ ऋचाओंसे अपान, और 'ऋतुना' से आरम्भ हुई पिछली २ ऋचाओं से व्यानको धारण कराते हैं । इन ऋतुकी ऋचाओंको प्राणों का क्रम जारी रखने के लिए बिना रुके पढ़ते हैं । ऋतु–याजों के पीछे वषट्कार न कहे : इस से वे रुकेंगीं और आपत्ति होगी, अतः वषट् न बोले ।

खण्ड ६ (३०)

दो देवोंवाले सोम–ग्रह प्राण हैं । उनमें से पीकर इला (पशुओं) को बुलाता है ।

प्रश्न— पहले पुरोडाश खाये या सोम पिये ?

उत्तर—पहले भोजन फिर सोम–पान करे । पहले अपने हाथ का पुरोडाश फिर चमस में से सोम-पान करे । इसप्रकार उसे दोनों (खाना-पानी) मिलते हैं । ग्रहों में से चमस में सोम उड़ेलने का तात्पर्य यह है कि होता आत्मा में प्राण धारण करता है । जो इस भेद को समझता है वह पूर्ण आयु पाता है । (६)

खण्ड ७ (३१)

तूष्णीं-शंस

देवों ने जो यज्ञ किया वही असुरों ने किया। वे बराबर शक्तिवाले होगये और देवोंके अधीन न रहे तब देवों ने 'तूष्णीं शंस' (मौन प्रार्थना) को देखा। इसे असुरों ने नहीं किया। यह सार रूप है। देव जिस यजुर् को उठाते थे असुर उसे जान लेते थे। किन्तु वे इसको न जान सके। देवों ने इसका प्रहार किया और जीत गये। जो इस को समझता है वह अपने अत्याचारी शत्रु पर विजय पा लेता है।

देवों ने अपने को विजयी समझकर यज्ञ आरम्भ किया। जब असुरों को विघ्न डालने के लिए पास आते देखा तब उन्होंने कहा इसको समाप्त कर दें जिससे असुर इसका विध्वंस न कर सकें। उन्होंने तूष्णींशंस द्वारा उसे समाप्त किया। 'भूरग्निर्ज्योतिरग्निः' से आज्य-प्रउग (प्रातः-प्रार्थना) को, 'इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्रः' से निष्केवल्य-मरुत्वती (मध्याह्न-प्रार्थना) को और 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यः' से वैश्वदेवअग्नि-मारुत (सायं-प्रार्थना) को समाप्त किया।

इस प्रकार तूष्णींशंस से यज्ञ समाप्त करके यज्ञ-रक्षार्थ उन्हें अन्तिम ऋचा मिल गयी। उसे जब वह कह लेता है तब यज्ञ समाप्त हो जाता है। तूष्णींशंस पढ़ने पर यदि कोई होता को निन्दा-शाप दे तो उससे कहे— 'यह शाप तुम्हीं को हानि पहुँचायेगा।' तो आज प्रातः इस यज्ञ को तूष्णींशंस में उसी प्रकार स्थापित करते हैं जिस प्रकार घर आये का सत्कार किया जाता है।' ऐसा कहने पर भी जो निन्दा करे वही हानि उठाता है, अतः होता की निन्दा न करे।

खण्ड ८ (३२)

तूष्णींशंस तीनों सवनों की आँखें हैं—
भूरग्निर्ज्योतिः, ज्योतिरग्निः—प्रातः सवन की
इन्द्रो ज्योतिः, भुवो ज्योतिरिन्द्रः—माध्यन्दिन की
सूर्यो ज्योतिः, ज्योतिः स्वः सूर्यः—सायंसवन की

२-२ आँखें हैं। ऐसा समझने वाला आँखों वाले सवनोंसे समृद्ध होकर स्वर्ग लोक को जाता है। यह एक ही आँख है, किन्तु २-२ बार बोलने से २-२ हैं, जैसे आँख के गोलक २ हैं पर आँख एक ही है।

यह तूष्णींशंस यज्ञ की जड़ है। जो यजमान की जड़ ही खोदना चाहे वही इसे न पढ़े, क्योंकि इसके न पढ़ने से यज्ञ बिना जड़ के हो जाता है और वह यज्ञ के साथ ही नष्ट हो जाता है।

इस पर कहते हैं कि होता को तूष्णींशंस पढ़ना ही चाहिए। यह ऋत्विज के लाभ के लिए है। ऋत्विज में ही यज्ञ प्रतिष्ठित है और यजमान यज्ञ में प्रतिष्ठित है अतः तूष्णींशंस पढ़ना ही चाहिए।

प्रारम्भ से नवाँ (दूसरी पञ्चिका का चौथा अध्याय) समाप्त।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण [अध्याय १०] दूसरी पञ्चिका में पाँचवाँ अध्याय

आज्य शस्त्र के 3 भाग

सामगों के १२ स्तोत्र और ऋग्वेदी होताओं के १२ शस्त्र (पठनीय मन्त्र) होते हैं— १-१ स्तोत्र के लिए १-१ शस्त्र। १२ शस्त्र निम्नलिखित हैं—

प्रातःसवन के ५— आज्य, प्रउग, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि और अच्छावाक्।

माध्यन्दिन सवन के ५—मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि और अच्छावाक्।

सायं सवन के २—वैश्वदेव और अग्निमारुत।

आज्य शस्त्र के ३ भाग हैं— १. आहाव। यह ब्राह्मण है। २. निविद्। यह क्षत्रिय है। ३. सूक्त। यह वैश्य है। आहाव के बाद निविद् को कह कर होता ब्राह्मण को क्षत्रिय से मिला देता है। सूक्त से पहले निविद् को कहकर क्षत्रिय से वैश्य को मिला देता है। यदि होता यजमान को क्षत्र-रहित करना चाहे तो निविद् के मध्य में सूक्त कह दे।

होता अगर चाहे कि यजमानको ठीकर सब वर्णों से युक्त रखे तो पहले आहाव 'शोंसावोम्' कहे, फिर निविद् फिर सूक्त।

निविद की प्रशंसा

पहले अकेला प्रजापति ही था। उसने चाहा बहुत हो जाऊँ। उसने तप तपा। उसने मौन धारण कर लिया। एक वर्ष के पश्चात् उसने बारह पद कहे— यही निविद् हैं। निविद् कहने के बाद सब प्राणी उत्पन्न हुए। इसको (कुत्स) ऋषिने देखतेहुए पढ़ा—

५२५. स पूर्वया निविदा कव्यतायोइमा प्रजा अजनयन्मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥ (ऋ० १.९६.२)

उस ईश्वर ने पहले निविद् (वेदवाणी) काव्य से विचारशीलों की प्रजा को उत्पन्न किया। चमकते हुए सूर्य से (प्रकाश) और जलोंको उत्पन्न किया। देव धन देनेवाली अग्नि को धारण किया करते हैं।

इसीलिये जब होता सूक्त से पहले निविद् को कहता है तो उसे सन्तान का लाभ होता है। जो इस रहस्य को समझता है उसको सन्तान और पशु प्राप्त होते हैं। १ (३३)

खण्ड २ (३४) ❀ निविद के १२ पद ❀

होता निविद् के १२ पद कहता है —

१—अग्निर्देवेद्धः [अग्नि देवोंसे प्रज्वलित कीगई]

देवों की प्रज्वलित की हुई वह अग्नि आदित्य है जिसको देवों ने प्रज्वलित किया। इसी को वह इस द्युलोक में फैलाता है।

२—अग्निर्मन्विद्धः [अग्नि मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित की गई]

मनुष्यों से प्रज्वलित की गई अग्नि यह [पृथ्वी] की अग्नि है। क्योंकि मनुष्यों ने इसे जलाया है। इसके द्वारा वह इसको इस पृथिवी में फैलाता है।

३—अग्निः सुषमित् [अग्नि जो अच्छी प्रज्वलित है।] यह वायु है। वायु अपने द्वारा अपने को और जो कुछ संसार में है उसको प्रज्वलित करता है इस को वह अन्तरिक्ष में फैलाता है।

४—होता देववृतः [देवों से वरण किया होता] वह आदित्य है। क्योंकि वह हर जगह देवों से वरण किया हुआ है। इस प्रकार वह उसे द्युलोक में फैलाता है।

५—होता मनुवृतः [मनुष्यों से वरण किया गया होता] यह (यज्ञ) अग्नि है। क्योंकि यह अग्नि हर जगह मनुष्यों द्वारा वरण की जाती है। इस प्रकार होता इस लोक में इसे फैलाता है।

६—प्रणीर्यज्ञानाम् [यज्ञों को ले जाने वाला] वायु यज्ञों का ले जानेवाला है। जब वह चलता है तब यज्ञ होता है, तभी अग्निहोत्र होता है। इस प्रकार अन्तरिक्षमें वायुपर आधिपत्य प्राप्त करता है।

७—रथीरध्वराणाम्। [अध्वरों का रथी]

वह सूर्य है, क्योंकि वह रथीकी तरह चलता है। इस प्रकार वह सूर्य का ज्ञान यहाँ फैलाता है।

८—अतूर्तो होता [अपराजित अग्नि] क्योंकि इसका कोई मुकाबला नहीं करसकता। वह इस लोक में इस अग्नि पर आधिपत्य करता है।

९—तूर्णिर्हव्यवाट् [हव्यको लेजानेवाला] वायु है जो संसार में शीघ्रता से चलता है और हवियों को देवोंतक लेजाता है। होता वायुपर अधिकार पाताहै।

१०—आ देवो देवान् वक्षत् [देव देवों को लाये] वह आदित्य देवों को यहाँ लाता है। इस प्रकार वह उस पर उस लोक में आधिपत्य पाता है।

११—यक्षदग्निर्देवो देवान् [अग्नि देवोंका संगठन करे।] इस से अग्नि पर आधिपत्य करता है।

१२—सो अध्वरा करति जातवेदाः [उत्पन्न हुए संसार में विद्यमान वायु यज्ञ पूर्ण करे]—इस से वह अन्तरिक्ष में वायु पर आधिपत्य प्राप्त करता है। २

खण्ड ३ (३५)

शस्त्र-तूका भाग ३—'सूक्त'

अब होता ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त १३ के ७ अनुष्टुप् छन्द पढ़ता है। मन्त्रके पहले और दूसरे पाद को अलग अलग करके पढ़ता और तीसरे-चौथे पाद को मिलाकर पढ़ता है। इसप्रकार मैथुन का रूप करके यजमान को व इस बातके समझनेवाले को सन्तान और पशुओं से युक्त करता है। और वज्र

दंड तथा कुठार का रूप(पहले पतला फिर स्थूल) बनाकर, शत्रु पर आक्रमण करके उसे दबा लेता है।

खण्ड ४ (३६)

इन लोकों में देव-असुर लड़ते थे। देवों ने सदस् [ऋत्विजोंके बैठनेके स्थान]को ग्रहणकिया, असुरों ने उनको वहाँसे उठा दिया। तब वे अग्नीध्र के स्थान पर चले गये। वहां वे नहीं हारे अतः ऋत्विज अग्नीध्र के पास बैठते हैं, सदस्पर नहीं। वहीं अग्नि से धारण किये जाने के कारण उसे 'आग्नीध्र' कहते हैं।

आज्य क्यों कहते हैं ?

असुरोंने सदस् को अग्नि बुझा दी, किन्तु देवोंने उसे आग्नीध्रसे फिर जला दिया और असुरोंको हरा दिया, अतः यजमान आग्नीध्रसे अग्नि लेते हैं। उन्हों ने प्रातः के आज्यों से ही विजय पाई अतः ये आज्य कहाते हैं। [आ=सब ओर से, जय =आज्य]

अच्छावाक का शस्त्र

उन जीतते आते हुए प्रशास्ता-ब्राह्मणाच्छंसी—अच्छावाक में से अच्छावाक सदः में नहीं आ सका उसमें इन्द्र-अग्नि स्थित होगये जो देवों में ओजिष्ठ, बलिष्ठ, सहिष्ठ, श्रेष्ठ, पार लगानेवाले हैं; अतः प्रातः-सवनमें अच्छावाक ऐन्द्राग्न का शंसनकरता है। अत एव सदः में पहले अन्य होता पहुँचते हैं फिर अच्छावाक। लोकमें भी हीन पीछे ही जाना चाहता है। अतः जो ब्राह्मण बहुत ऋचाएँ जानने वाला, वीर्यवान् हो वही अच्छावाकका शस्त्र ऋ० ३.१२.१ पढ़े उसीसे वह श्रेष्ठ होता है। ४ (३६)

खण्ड ५ (३७)

शस्त्र, स्तोत्र अनुकूल

यह यज्ञ देव-रथ है। आज्य-प्रउग उसकी दो रस्सियाँ हैं। होता आज्य से पवमान-स्तोत्र का और प्रउग से आज्य का अनुशंसन करता है। वह सावधानी के लिए रस्सियोंको थाम लेता है। उसी तरह मनुष्य-रथों की लगामोंको सारथि थामते हैं जो ऐसा जानता है उसका रथ नहीं टूटता।

कहते हैं कि जैसा स्तोत्र वैसा शस्त्र हो। यहां साम-गायक पवमानकी ऋचा गाते हैं और होता अग्नि का याज्य पढ़ता है—यह कैसे अनुकूल है?

समाधान यह है कि अग्नि पवमान है—जैसा कि कहा—

५२६—ऋग्निॠषिःपवमानः ॥(ऋ०९.६६.२०)

ऐसे आग्नेयीसे पावमानी अनुकूल हो जाती है।

प्रश्न—गायत्री छन्द के स्तोत्र के साथ अनुष्टुप् छन्द का आज्य-शस्त्र कैसे अनुकूल होगा ?

उत्तर-आज्यके ७ अनुष्टुप् पहले और अन्तिम को ३-३ बार बोलने से ११ हुए। १२ वीं याज्या के विराट् छन्दके ३३ अक्षरों को ३२ का अनुष्टुप् मान लेनेसे (क्योंकि १ या २ के बढ़ने से छन्दोभेद नहीं होता) १२ अनुष्टुप् १६ गायत्री के बराबर हैं इस प्रकार अनुष्टप्-शस्त्र गायत्री-स्तोत्र के अनुकूल हो जाता है। आज्य-शस्त्र की याज्या यह है—

५२७. अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्। अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा:॥ (ऋ० ३.२५.४)

अग्नि-इन्द्र यहाँ यज्ञ के पास आयें।

यहाँ अग्नि-इन्द्र की याज्या विजयार्थ पढ़ता है यह ३३ अक्षरों का विराट् छन्द है। देव ३३ हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति, १ वषट्कार। इस प्रकार वह पहले ही शस्त्रमें १-१ अक्षर १-१ देवके लिए कहता है। अक्षर-क्रम से देव सोम पीते हैं। इस प्रकार देव-पात्र से देव तृप्त होते हैं।

याज्य शस्त्रानुकूल

प्रश्न— यहाँ इन्द्राग्नि की याज्या केवल अग्नि वाले शस्त्र के अनुकूल कैसे है ?

उत्तर—शस्त्र भी इन्द्राग्नि का है, जैसा कि आ ग्रह-मन्त्र और तूष्णींशंस से प्रकट होता है—

५२८. इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता॥ (ऋ० ३.१२.१)

हे इन्द्र और अग्नि,आकाश के समान श्रेष्ठ को

के पास आओ और बुद्धि-प्रेरित होकर इसे पिओ।

खण्ड ६ (३८)

होतृ-जप के ६ भाग—

होता का जप वीर्य है, जिसका सिंचन चुपचाप होता है। यह आहाव से पहले होता है, उसके बाद शस्त्र। होता के जप के ६ भाग ये हैं—

१— पिता मातरिश्वा (प्राण पिता है)। इसे कह कर मानो वीर्य-सिंचन करता है।

२— अच्छिद्रा पदाऽधात् (वीर्य पूर्ण है)।

३— अच्छिद्रोक्था कवयः शंसन् (कवियों ने इस पूर्ण वीर्य को उत्पन्न किया)।

४—सोमो विश्वविन् नीथा निनेषद् बृहस्पतिरुक्थामदानि शंसिषद्। बृहस्पति ब्राह्मण है। स्तुति किया गया सोम क्षत्रिय है। 'नीथानि' तथा 'उक्थामदानि' शस्त्र हैं। दैवी ब्राह्मण-क्षत्रिय से प्रेरित हो कर होता शस्त्र पढ़ता है। ये दोनों जगत्पर शासन करते हैं। इनकी प्रेरणा के बिना होता के द्वारा किया कार्य न किये के बराबर है। जो ऐसा जानता है उसका किया सब सुकृत होता है, अकृत नहीं।

५— वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुः। आयु प्राण है, प्राण वीर्य है, वाणी योनि है—यह पढ़कर मानो वह वीर्य सींचता है।

६— क इदम् शंसिष्यति, स इदम् शंसिष्यति। 'क' प्रजापति है, वही उत्पन्न करेगा॥ ६(३८)

खण्ड ७ (३९)

आहाव के पश्चात् तूष्णींशंस पढ़ता है। मानो वीर्य में विकार उत्पन्न करता है। यह ६ पदोंमें रुक रुक कर पढ़ता है। इस प्रकार वह पुरुष को ६ अंगवाला बना देता है।

तूष्णींशंस के पश्चात् वह पुरोरुक् निविद उच्च स्वरसे पढ़ता है। मानो वह बच्चेको जन्म देता है। पुरोरुक् १२ पदों में होती है। १२ मासों का संवत्सर होता है। वह प्रजापति है, जो सृष्टि को बनाता, यजमान को उत्पन्न करता और उसे पशु तथा सन्तान से युक्त करता है। जो यह जानता है वह प्रजा और पशुओं से युक्त होता है।

यह पुरोरुक् को जातवेदः के लिए पढ़ता है जिसका नाम अन्तिम पद में आता है।

प्रश्न—जातवेदः तीसरे सवन का देवता है, प्रातः सवन में उसके लिए पुरोरुक् क्यों पढ़ते हैं?

उत्तर— जातवेदः प्राण है। वह उत्पन्न हुओं को जानता है। जिनको वह नहीं जानता, वे कैसे हो सकते हैं? जिसने समझ लिया कि आज्य-शस्त्र से मेरी आत्मसंस्कृति होगयी वही ज्ञानी है। ७(३९)

खण्ड ८ (४०)

आज्य शस्त्र का सूक्त

अब वह आज्य-शस्त्र-सूक्त(ऋ.३.१३)पढ़ता है—

५२९. प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत्॥१॥

हे मनुष्यो, तुम में जो देवों के साथ यज्ञकर्ता हो वह आये और आसन पर विराजे। उस आसनस्थ देव अग्नि (विद्वान् नेता)का सत्कार करो।

५३०. ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे॥ २॥

सत्य-पालक रक्षक और द्यावा-पृथिवी जिसके बल का आश्रय लेते हैं उसकी सभी प्रशंसा करते हैं।

५३१. स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम्॥३॥

वह विप्र तुम्हारा और इन यज्ञों का नियामक है ऐश्वर्य-दाता है, उस अग्नि की सेवा करो।

५३२. स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा॥४॥

वह अग्नि हमें रक्षार्थ घर और सुख दे, जिससे हमें द्यौ, अन्तरिक्ष तथा पृथिवीसे ऐश्वर्य-धन मिले।

५३३. दीदिवांसमपूर्व्यम् वस्वीभिरस्य धीतिभिः।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम्॥५

स्तोता प्रकाशमान, अपूर्व, सुखदायक, प्रजापति अग्नि को, धनवाली धारक नीतियों से दीप्त करें।

५३४. उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः।
शं नः शोचा मरुद्वृधो अग्ने सहस्रसातमः॥३॥

हे अग्नि, हजारों उपदेश देनेवाला, मनुष्यों द्वारा बढ़नेवाला, श्रेष्ठोंमें प्रशंसित तू ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए

हमारी रक्षा कर और हमारा कल्याण कर।

४३४. नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु।
द्युमदग्ने सुवीर्यम् वर्षिष्ठमनुपक्षितम्॥ ७॥

हे अग्नि, तू हमें उत्तम सन्तान-युक्त, पुष्टिकर, असंख्य धन और दीप्तियुक्त, उत्तम अक्षय बल दे।

सूक्तका अध्यात्म अर्थ

१—प्र का अर्थ प्राण है। सब जीव उसे पाकर ही चलते हैं। इस प्रकार होता प्राण धारण कराता है।

५—मन ही दीदिवान् (प्रकाशवान्) है। उससे पहले कुछ नहीं। वह मन का संस्कार करता है।

४—वाणी ही शर्म है। जो दूसरों की बात को दुहराता है उसे कहते हैं कि हमने इसे चुप कर दिया। इस मन्त्र से वह वाणीका संस्कार करता है।

६—श्रोत्र ब्रह्म है। उससे ब्रह्म को सुनता है। इस प्रकार वह कान का संस्कार करता है।

३—अपान यन्ता है,क्योंकि प्राण अपानके द्वारा नियन्त्रित है। इस से अपान का संस्कार करता है।

२—आँख ऋत है। यदि कोई कहे कि मैंने स्वयं अपनी आँख से देखा तो उसका विश्वास कर लेते हैं। इस प्रकार वह आँख का संस्कार करता है।

७—आत्मा सहस्रवान् और पुष्टिमान् है। इसे पढ़ कर वह समस्त आत्मा को सुसंस्कृत करता है।

अब वह एक याज्य मन्त्र पढ़ता है जो पूर्ति, पुण्य और लक्ष्मी है, उससे वह आत्मा का संस्कार करता है। जो यह समझता है वह छन्दों, देवताओं, ब्रह्म और अमृतसे युक्त होकर देवताओंमें मिल जाता है।

खण्ड ६ (४१)

सूक्त का दैविक अ[र्थ]

वह तूष्णींशंस को ६ पदों में पढ़ता है। ६ ऋ[तुएँ] होती हैं, वह उनमें प्रवेश करता है। पुरोरुक् को [१२] पदों में पढ़ता है। १२ मास होते हैं, वह उनमें प्रवे[श] करता है।

१—प्र अन्तरिक्ष है, ये सब भूत उसमें ही रहते [हैं,] वह उसमें प्रवेश करता है।

५—यह सूर्य ही दीदिवान् है, वह इसमें प्रवे[श] करता है।

४—अग्नि 'शर्माणि' है, वही अन्न आदि दे[ता] है। वह उन्ही में प्रवेश करता है।

६—चन्द्रमा ही ब्रह्म है,वह उसमें प्रवेश करता है।

३—वायु नियन्ता है, उससे ही अन्तरिक्ष नि[य]न्त्रित रहता है। वह उसमें प्रवेश करता है।

२—द्यौ और पृथिवी रोदसी हैं। वह इ[न] उन्हीं में प्रवेश करता है।

७—संवत्सर ही सहस्रवान् और पुष्टिमान् है, वह उसीमें प्रवेश करता है। इससे समाप्त करता है।

वह याज्या (संख्या ५२७) पढ़ता है। वृ[ष्टि] और विद्युत् याज्या हैं, क्योंकि ये अन्न को उत्प[न्न] करती हैं। इस प्रकार वह उन में प्रवेश करता है।

जो इस रहस्य को समझता है, वह इन सब[से] युक्त होकर देवतामय हो जाता है।

—❀—

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की दूसरी पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

——❀——

महर्षि महीदास ऐतरेय कृत

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ३, अध्याय १

ग्यारहवाँ (तीसरी पञ्चिका में प्रथम) अध्याय

खण्ड १

दूसरा प्रउग शस्त्र

प्रउग शस्त्र ग्रहों (प्यालों) में से सोम की आहुतिको देने के लिए उपयुक्त है। प्रातः काल के ९ ग्रह हैं—१ .उपांशु, २. अन्तर्याम, ३. वायव्य, ४. ऐन्द्रवायव्य, ५. मैत्रावरुण, ६. आश्विन, ७. शुक, ८. मन्थी, ९. आग्रायण। बहिष्पवमान सूक्त (ऋ० ९.११)के ९ मन्त्रों से इनकी स्तुति कीजाती है। तत्पश्चात् अध्वर्यु १०म ग्रह लेता है। हर एक मन्त्रके साथ बोला गया 'हिं' १०वां मन्त्र मान लिया जाता है। संख्या बराबर है।

१—होता वायुके ३मन्त्र(वायव्य-ग्रह-शस्त्र) पढ़ता है वायवायाहि ० (संख्या ५१५)

५३६, वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः।
सुतसोमा अहर्विदः ॥

५३७, वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे।
उरूची सोमपीतये ॥ (ऋ० १.२.१-३)

२—अब इन्द्र-वायव्य शस्त्र के ३ मन्त्र पढ़ता है—
इन्द्रवायू ० (संख्या ५१७).

५३८. वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥

५३९. वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वित्था धिया नरा ॥ (ऋ० १.२.४-६)

हम सूर्य-वायु को जानकर ठीक उपयोग करें।

३—अब मित्र-वरुण के ३ मन्त्र (शस्त्र) पढ़ता है—

५४०-४२. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ (साम८४७, य ३३.१७)

५४३-४४. ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ (साम ८४८)

५४५-४६. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम् ॥[साम ८४९, ऋ० १.२.७-९]

जल बनानेवाले हाइड्रोजन-आक्सीजन को जानकर हम उनका यथोचित उपयोग करें। वे बल-धारक हैं।

४—अब वह अश्विओं के लिए ३ मन्त्र पढता है—

५४७. अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥

५४८. अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥

५४९-५०. दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आयातं रुद्रवर्तनी ॥[य० ३३.५८, ऋ० १.३.१-३]

अग्नि-जल, सूर्य-चन्द्र,धन-ऋण विद्युत्, प्राणापान को जानकर उनका यथोचित उपयोग करो।

५— अब वह इन्द्र के ३ मन्त्र [शुक्र और मन्थी ग्रहों के शस्त्र] पढ़ता है—

५५१-५४ इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥

५५५-५८.इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥

५५९-६१. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ [अ० १०.३१.१-३]
[ऋ० १.३.४-६, य० १०.८७-८९,साम११४६-४८]

६—अब विश्वेदेवों के ३ मन्त्र (आग्रयणशस्त्र)पढ़ता है—

५६२-६४. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ [य० ७.३३]

५६५. विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमागन्त तूर्णयः।
उस्रा इव स्वसराणि ॥

५६६. विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः।
मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ [ऋ० १.३.७-९]

अब वह सरस्वती के ३ मन्त्र पढ़ता है—

५६७-६९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ [साम १८९]

५७०-७१. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥

५७२-७३. महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा विराजति ॥
[ऋ० १.३.१०-१२, यजु० २०.८४-८६]

सरस्वतीका ग्रह नहीं है। इच वाणी है। वाणी से जो कोई ग्रह लिये जाते हैं उन्हीं को इन शस्त्रों से स्तुति हो जाती है। जो इस रहस्य को समझता है उसके सभी ग्रह शस्त्रवाले हो जाते हैं। (१)

७ देवों केलिए २१ मन्त्र

खण्ड २—प्रउग से अन्नाद्य को प्राप्त करता है। प्रउग में अन्यान्य देवताओंकी स्तुति होती है और अन्यान्य का ही कृत्य होता है। जो इस रहस्य को समझता है वह ग्रहों में अन्यान्य खाद्य पदार्थों को रखता है॥ यह जो प्रउग शस्त्र है वह यजमान का सबसे निकटस्थ सम्बन्धी है। इसलिये उसको इसका बहुत ध्यान रखना चाहिए – ऐसा कहा जाता है। क्योंकि होता इसी से संस्कार करता है।

१—वह वायुके ३ मन्त्रों को पढ़ता है, इसीलिये कहते हैं कि वायु प्राण है। प्राण वीर्य है। शरीर में वीर्य पहले उत्पन्न होता है, फिर मनुष्य पैदा होता है। यह जो वायु के मन्त्रों को पढ़ता है उससे यजमान में प्राण का संस्कार करता है।

२—इन्द्र और वायु के ३मन्त्र इसलिये पढ़ता है कि जहाँ प्राण है, वहाँ अपान है। इन के पढ़ने से यजमान में प्राण और अपानका संस्कार करता है।

३–यह मित्र और वरुण केलिए ३ मन्त्र पढ़ताहै। यह इसलिए कहते हैं कि जब आदमी बनता है तो पहले आँख बनती हैं। मित्र और वरुण के लिए मन्त्र पढ़ कर मानों वह यजमान की आँख का संस्कार करता है।

४— वह अश्विओं के ३ मन्त्र पढ़ता है क्योंकि बच्चे के पैदा होने पर कहते हैं कि यह सुनने की इच्छा करता है। यह ध्यानदे रहाहै. अश्वि के मन्त्र पढ़कर वह यजमानके कानोंका संस्कार करता है।

५–इन्द्र के ३ मन्त्र पढ़ता हैं क्योंकि उत्पन्न हुए बच्चे के विषयमें कहा करते हैं कि यह पहले गर्दन उठाता है, बाद में सिर। इन्द्रके मन्त्र पढ़कर मानों वह यजमान में वीर्य का संस्कार करता है।

६–विश्वेदेवों के ३ मन्त्र पढ़ता है क्योंकि जब बच्चा पैदा होता है तो पीछे से हाथ पैर हिलाता है। अङ्ग विश्वे देवों के है। इन मन्त्रों को पढ़कर मानो यजमान के अंगोंका संस्कार करता है।

७–,वह सरस्वती के ३ मन्त्र पढ़ता है। क्योंकि जब बच्चा पैदा होताहै तो वाणी सबसे पीछे आती है। सरस्वती वाणीहै। सरस्वती के तीन मन्त्र बोल कर वह यजमान में वाणी का संस्कार करता है।

जो इस रहस्य को समझता है या जिस यजमान के लिए होता मन्त्र पढ़ता है, वह एक बार उत्पन्न होने पर भी इन सब देवताओं, सब स्तुतियों, सब छन्दों, सब प्रउगों, सब सवनों द्वारा फिर नया जन्म पाता है। (२)

खण्ड ३—प्रउग शस्त्र प्राणों के लिए हैं। ७ देवों के लिए मन्त्र पढ़कर वह सिरमें ७ प्राण रखता है।

प्रश्न— क्या होता पाप या भद्र कर सकता है?

उत्तर— हाँ, मन्त्रों में गड़बड़ करने या पद छोड़ देने से अनर्थ कर सकता है। वायु के मन्त्रों में त्रुटि से यजमान प्राणों से, इन्द्र-वायु के मन्त्रोंकी गड़बड़से प्राण-अपान से, मित्र-वरुणके मन्त्रों में गड़बड़ से आँखसे, अश्वि-मन्त्रों की गड़बड़ द्वारा कान से, इन्द्र के मन्त्रों में गड़बड़ द्वारा वीर्य से, विश्वेदेव-मन्त्रों में गड़बड़ द्वारा अङ्गों से, और सरस्वती की ऋचा में गड़बड़ द्वारा वाणी से वञ्चित हो सकता है।

यदि वह यजमान को ठीक रखना चाहे तो मन्त्रों को यथाविधि पढ़े। जो यह समझता है वह अपनेको सब अङ्गों और आत्मा से युक्त रखता है। (३)

खण्ड ४ — प्रश्न--अग्नि के स्तोत्र के साथ इन वायु आदि के शस्त्रों की अनुकूलता कैसे होगी?

उत्तर—ये सातों देवता अग्नि का ही शरीर हैं— १. वायु जलती अग्नि का रूप, २. इन्द्र-वायु २ भागों में जलती अग्निके रूप, ३.मित्र-वरुण अग्निके ऊपर नीचे होने का मित्र–भयानक रूप, ४. अश्वि अग्नि का २ भुजाओं और अरणियों से घिसने का रूप, ५. इन्द्र अग्नि का बड़े जोर से बबबब करके जलने का रूप, ६. विश्वेदेव अग्नि को कई भागों में करने का रूप, ७. सरस्वती शोर करके जलने का रूप है। इस प्रकार साम और ऋक्पाठ अनुकूल होते हैं।

होता विश्वेदेवों के लिए याज्या पढ़ता है—
५७४-७५. विश्वेभिः सोम्यं मधु अग्ने इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ [ऋ१.१४.१०, य ३३.१०]

इसप्रकार विश्वेदेवोंको भाग देकर सन्तुष्ट करताहै।

खण्ड ५—

वषट्कार

वषट्कार देवोंका पात्र है। उससे होता देवताओंको तृप्त करता और अनुवषट्कार से पुनः तृप्त करता है जैसे गाय-घोड़े को बार बार घास-पानी देते हैं।

प्रश्न— उत्तरवेदि की अग्नि में ही फिर वषट्कार क्यों करते हैं, धिष्ण्या के पास क्यों नहीं?

उत्तर— अनुवषट्कार 'सोमस्याग्ने वीहि' कहकर वषट्कार करता और धिष्ण्यों को तृप्त भी करता है।

प्रश्न— सोम का वह स्विष्टकृत् भाग कौन सा है जिसमें से बिना समाप्त किये खा लेतेहैं और अनुवषट्कार करते हैं?

उत्तर— अनुवषट्कार से वे कृत्य समाप्त कर सोम पी लेते हैं। यही सोम का स्विष्टकृत् भाग है। [५]

खण्ड ६—वषट्कार वज्र है। यदि कोई शत्रु हो तो वषट् कहते हुए उसे स्मरण करले, उसे नष्ट कर देगा।

वषट्के षट् (६) शब्द से वह ६ ऋतुओंको स्थापित करता है। जो इसे जानता है वह सुस्थित होजाता है।

वेद के पुत्र हिरण्यदन् ने कहा— षट् कहकर होता ६ को प्रतिष्ठित करता है—द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, सत्य और तप। यदि ये स्थापित होगये तो शेष सभी स्थापित हो जाते हैं।

वौषट् का 'वौ'=आदित्य ६ ऋतुओंका बोधक है। उसे कहकर वह यजमानको ऋतुओंमें प्रतिष्ठित करता है। जैसा वह देवोंके साथ करता वैसा देव उसके साथ करते हैं। (६)

खण्ड ७— वषट् ३ होते हैं—१.वज्र, २.धामच्छद् ३, रिक्त। ऊँचे स्वर से बोला गया वज्र शत्रु को दबा सकता है। धामच्छद् ऋचाका भाग बनकर प्रजा और पशु देता है। धीरे से बोला गया रिक्त वषट् यजमान और अपने को शून्य कर देता है। इसे बोलने-सुननेवाले दोनों पापी हैं। अतः वषट् धीरे न बोलना चाहिए।

प्रश्न—क्या होता यज्ञ-फल से वंचित कर सकताहै?

उत्तर— हाँ, ऋचा-वषट् दोनों को एक स्वर से पढ़ कर वह यज्ञ-फलसे वंचित, और वषट्को ऋचासे धीमा पढ़कर पापी कर सकता है। यदि वह यजमान को श्री से युक्त करना चाहे तो वषट् को मन्त्रसे मिलाकर जोर से पढ़े। इसको समझनेवाला प्रजा-पशु-युक्त होता है।

खण्ड ८ — वषट् कहते समय जिस देवता के लिए आहुति दीजाये उसीका ध्यान करे। इस प्रकार साक्षात् देवता के लिए याज्या ऋचा पढ़ी जा सकेगी।

वषट्कार-वज्र बिना शान्त किये प्रयुक्त किया जाये तो वह हानिकारक होता है। इसकी शान्ति-प्रतिष्ठा को सभी नहीं जानते। अतः वषट् के बाद 'वाक्ओजः' अनुमन्त्र बोलने से वह हानि नहीं पहुंचाता।

यजमान इस अनुमन्त्र को बोले—

वषट्कार, मा मां प्रमृक्षो, माऽहं त्वां प्रमृक्षम् बृहामन उपह्वये, व्यानेन शरीरं प्रतिष्ठासि प्रतिष्ठां गच्छ, प्रतिष्ठो मां गमय।

कुछ लोग कहतेहैं कि यह बहुत बड़ा है, इसके स्थान में 'ओजः सहोजः' बोलना चाहिए। ओज-सहः वषट्के २ बड़े प्यारे शरीर हैं। इस प्रकार वह यजमान को प्यारा धाम दिलाता और जो इसे समझता वह प्यारा धाम पाता है।

वाणी-प्राण-अपान रूपी वषट् के बोलने पर जब ये तीनों निकलतेहै तब 'वागोजः सहोजो मयि प्राणापानौ' पढ़ना चाहिए। इससे होता और इस रहस्य को जाननेवाला वाणी-प्राण-अपान-पूर्णायु को पाता है। (८)

खण्ड ९—जब यज्ञ देवताओं के पास से चला गया तब उन्होंने उसे प्रैष मन्त्रों से बुलाना चाहा, इसीलिए ये प्रैष (प्र-इष्) कहाते हैं। पुरोरुक् से चमकाया अतः (पुरः रुच्) पुरोरुक्, वेदी में पाया अतः(विद् प्रापणे) वेदी, ग्रहोंमें ग्रहण किया अतः ग्रह, निविद्से देवताओं से निवेदन किया अतः निविद् नाम हुआ।

जब कोई किसी खोई वस्तु को पाना चाहता है तो इसका अधिक भाग चाहता है। जो बुद्धिमान होता है वह अच्छा भाग चाहता है। जो समझता है कि प्रैष बलवान हैं वह यहभी जानता है कि श्रेष्ठ है। प्रैष का अर्थ है खोये हुये को चाहना। इसलिये प्रैष को सिर झुका कर बोलते हैं। (९)

खण्ड १०—

निविद

निविद् जो हैं वे 'उक्थ' अर्थात् शस्त्रोंके गर्भ हैं। प्रातः सवन में वे उक्थ या शस्त्रोंसे पहले रखे जाते हैं। क्योंकि गर्भ में बच्चे नीचे को सिर किये रहते हैं। और नीचे को सिर किये पैदा होते हैं।

दोपहर के सवन में वे शस्त्र के मध्य में रक्खे जाते हैं। क्योंकि गर्भ योनि के मध्य में होते हैं। सायं के सवन में निविद् पीछे रखे जाते हैं। क्योंकि गर्भ ऊपर से पैदा होते हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशु से युक्त होता है।

जो निविद् हैं वे 'उक्थों' के पेश (किनारे की-बेल) हैं। यह प्रातः सवन में उक्थों के पहले रखे जाते हैं। जैसे जुलाहा कपड़ेके सिरेपर बेल बनाता है। दोपहर के सवन में बीच में रखे जाते है; जैसे जुलाहा कपड़े के बीच में बेल बनाता है। सायंकाल के सवन में ये पीछे रखे जाते हैं। जैसे जुलाहा कपड़े के पीछे बेल बनाता हैं। जो इस रहस्य को समझता है वह यज्ञके बेल बूटों से अपने को सजा लेता है। (१०)

खण्ड ११— यह जो निविद् हैं वे सूर्य के हैं। यह प्रातः सवन में उक्थों से पहले पहले रक्खे जाते हैं, दोपहर के सवन में बीच में और तीसरे सवन में पीछे। ये सूर्य ही के मार्ग का अनुसरण करते हैं।

देवों ने यज्ञ को थोड़ा २ करके (पच्छः) पाया। इसलिये निविद भी टुकड़े २ करके पढ़े जाते हैं।

जब देवों ने यज्ञको पाया तो उसमें से एक अश्व निकला। इसलिये कहते हैं कि यजमान निविद् पढ़ने वालोंको एक अश्व दे। यह वर बहुत अच्छा समझा जाता हैं।

निविद पढ़ने वाला किसी पद को न छोड़े। क्योंकि पद छोड़ने से मानो यज्ञ में छेद करता हैं। यज्ञ में छिद्र हो जाने पर यजमान बड़ा पापी हो जाता है। इसलिये निविद में कोई पद न छोड़े।

निविद् के दो पदों में उलट-पलट न करे। यदि करेगा तो यज्ञ और यजमान उलट-पलट हो जायेंगे।

निविद् के दो पदों को मिलाना भी न चाहिए। यदि मिला देगा तो यज्ञ की दशा को बिगाड़ देगा और यजमान के लिए कष्टदायक होगा।

केवल दो पदों को मिलाना चाहिए— 'प्रेदं ब्रह्म' 'प्रेदं क्षत्रम्'। ऐसा करने से ब्राह्मण और क्षत्रिय को जोड़ता है। ब्रह्म और क्षत्र मिले रहते हैं।

निविद् के लिए ३ ऋचाओं से अधिक के सूक्त चुने, क्योंकि निविद् के पद सूक्त की भिन्न भिन्न ऋचाओं के अनुकूल होने चाहिए। निविद् के द्वारा स्तोत्र बढ़ जाता है।

तीसरे सवन में निविद् को एक ऋचा शेष रहने पर कहे। यदि दो ऋचाएँ शेष रहने पर कहेगा तो उत्पत्ति की शक्ति को नष्ट कर देगा और गर्भों को बालकों से रहित कर देगा।

निविद् को सूक्त से आगे न जाने दे। यदि आगे हो जाये तो फिर उसको पीछे न लौटाये क्योंकि उस का स्थान नष्ट होगया। अब दूसरे देवता और दूसरे छन्द का एक सूक्त चुने और उसमें निविद् रक्खे।

दूसरे निविद् सूक्त को पढ़नेसे पूर्व ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त ५७ को पढ़े—

५७६-७७. मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः माऽन्तःस्थुर्नो अरातयः ॥१॥ (अ० १३.१.५६)

अर्थ— हम मार्ग और सोमी-यज्ञ से न भटकें। हमारे अन्दर शत्रु न रहें।

जो यज्ञ में भूल जाता है वह मानो मार्ग से भटक जाता हैं। यह ऋचा पढ़कर वह उसको भूल करने से बचा लेता और शत्रुको हराकर मार भगाता है।

५७८-७९. यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतं नशीमहि ॥२॥ (अ० १३.१.६०)

इसको पढ़कर वह सन्तान का विस्तार करता है।

५८०-८१. मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन। पितॄणां च मन्मभिः ॥ ३॥ (यजु० ३.५३)

होता यह ऋचा पढ़ता है। क्योंकि मन से ही यज्ञ ताना और किया जाता है। यही प्रायश्चित्त है ॥(११)

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेयब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय ११ (तीसरी पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण [अध्याय १२]

होता का आहाव, अध्वर्यु का प्रतिगर

खण्ड १(१२). देवताओंके लिये प्रजा (सेना)की कल्पना होनी चाहिए। अर्थात् एक छन्द को दूसरे में रखना चाहिए। प्रातः सवन में होता तीन अक्षर का 'शोंसावोम्' कहता है और अध्वर्यु पांच अक्षर का 'शंसामोदैवोम्' कहता है। इसप्रकार आठ अक्षर हो जाते हैं। आठ अक्षर की गायत्री होती है। इस प्रकार प्रातः सवन में पहले इसको गायत्री बना देते हैं। प्रातः सवन के अन्त में होता चार अक्षरों का 'उक्थं वाचि' कहता है। इस पर अध्वर्यु चार अक्षरों का ओमुक्थशः' कहता है इस प्रकार प्रातः सवन के आरम्भ और अन्त में गायत्री की कल्पना हो जाती है।

दोपहर के सवन में होता छः अक्षरों का 'अध्वर्यो शोंसावोम्' कहता है। इस प्रकार अध्वर्यु पांच अक्षरों का 'शंसामोदैवोम्' कहता है। इस प्रकार ११ अक्षर हो जाते हैं। ११ अक्षर का त्रिष्टुप् होता है इस प्रकार दोपहर के सवन के पहले त्रिष्टुप् की कल्पना हो जातीहै। सवनके अन्तमें होता ७ अक्षरों का 'उक्थं वाचि इन्द्राय' कहता है। अध्वर्यु चार अक्षरों का 'ओमुक्थशाः' कहता है। यह ११ अक्षर हो जाते हैं। ११ अक्षरों का त्रिष्टुप् होना है। इस प्रकार दोपहर के सवन के आरम्भ और अन्त में त्रिष्टुप् की कल्पना हो जाती है।

तीसरे सवनके आरम्भमें होता ७ अक्षरका 'अध्वर्यो शोशोंसावोम्' कहता हैं। अध्वर्यु ५ अक्षर का 'शंसामोदैवोम्' कहता है। यह १२ अक्षर हो जाते १२ अक्षर की जगती होती है। इस प्रकार तृतीय सवन के अन्त में होता ११ अक्षर का 'उक्थं वाचि इन्द्राय देवेभ्यः' अवध्यु एक अक्षर का ओम् कहता हैं। इस प्रकार१२ अक्षर हो जाते हैं। बारह अक्षरों की जगती होती है। इस प्रकार तीसरे सवन के आरम्भ और अन्त दोनों में जगती छन्द की कल्पना की जाती है।

ऋषि ने इसको देखा और कहा —

५८२-८३. यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत। यद्वा जगज् जगत्याहितं पदं य इत्तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः॥

(अ० ६.१०.१, ऋ० १.१६४.२३)

जो गायत्री को गायत्री पर रखना जानते हैं, जिनको ज्ञान है कि त्रिष्टुप् से त्रिष्टुप् निकलता है और जगती जगती में रखा जाता है वह अमृतत्व को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार जो इस रहस्य को समझता है वह छन्द में छन्द को रखता है और देवताओं के लिये प्रजा की कल्पना करता है। १(१२)

खण्ड २ (१३)—प्रजापति ने देवों के लिये यज्ञ और छन्दों के भाग अलग अलग कर दिये। उसने प्रातः सवन में अग्नि और वसुओं के लिये गायत्री छन्द दिया। दोपहर के सवनमें इन्द्र और रुद्रों के लिये त्रिष्टुप् को, विश्वेदेवों और आदित्यों के लिये तीसरे सवन में जगती को दिया।

उसका अपना छन्द अनुष्टुप् था। उसको उसने अन्तिम मन्त्र में जो 'अच्छावाक' का मन्त्र है कर दिया। इस पर अनुष्टुप् ने कहा कि तू देवों में बड़ा पापी है कि तूने अपने ही मुझ अनुष्टुभ् छन्द को अन्त की अच्छावाकीय ऋचा में ढकेल दिया। उसने भूल स्वीकार करली और उसने अपना सोम यज्ञ लिया और अनुष्टुप् को उसके पहलेही अर्थात् मुख पर ही रख दिया। इसलिए सब सवनों में पहले अनुष्टुप् रखा जाता है। जो इस रहस्य को समझता है वह पहला और मुख्य हो जाता है। और श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

प्रजापति ने अपने ही सोम यागमें ऐसा किया। इसलिये ऐसा करने से यजमान यज्ञ का स्वामी हो जाता है और यज्ञ ठीक हो जाता है। जब कभी यजमान इस प्रकार यज्ञ का स्वामी होकर यज्ञ करता है वह यज्ञ जनताके लिए होता है। २(१३)

खण्ड ३(१४)— अग्नि देवताओं का होता था। मृत्यु उसके लिये १.बहिष्पवमान स्तोत्र में बैठा छिपा रहा। अनुष्टुप् छन्द में आज्य शस्त्र आरम्भ करके उसने मृत्यु को जीता। मृत्यु आज्य में छिप रहा। प्र-उग शस्त्र आरम्भ करके उसने मृत्यु को हराया। दोपहर के सवन में वह २.पवमान में बैठा रहा। होता ने अनुष्टुप् के साथ मरुत्वतीय शस्त्र आरम्भ करके मृत्यु को जीता। वह उस सवन में बृहती छन्दों में न बैठ सका, क्योंकि बृहती प्राण हैं। इस प्रकार वह प्राण न ले सका, इसीलिए होता स्तोत्रिय तृच के द्वारा कहता है कि बृहती प्राण हैं, ऐसा करने का उद्देश्य ही प्राणोंकी रक्षा है।

तीसरे सवनमें मृत्यु अग्निके लिए ३.पवमानमें छिपा रहा। अनुष्टुप् के साथ वैश्वदेव शस्त्र आरम्भ करके उसने मृत्युको जीता, तो वह यज्ञायज्ञीय में जा छिपा। वैश्वानरीय अग्निमारुत सूक्त का आरम्भ करर उसने मृत्यु को जीता। यह वज्र है। यज्ञायज्ञीय साम प्रतिष्ठा है। मृत्यु के सब पाशों और स्थाणुओं को पार करके अग्नि छूट आया। जो इस रहस्यको समझता है वह झंझटोंसे छूट जाता और पूरी आयु पाता है। ३

मरुत्वतीय शस्त्र

खण्ड ४ (१५)—इन्द्रने वृत्रको मारकर यह सोचा कि शायद मैं इसे न हरा सका और दूर दूर तक फिरता रहा, यहांतक कि बहुत दूर पहुंच गया। यह सबसे दूर वाणी अनुष्टुप् है। वह उसमें घुसकर वहीं पड़ा रहा, सब तलाश करते रहे। पितरों ने उसे एक दिनढूंढ़ लिया, देवोंने एकदिन पीछे। इसीलिए पितरों का कृत्य १ दिन पहले और देवोंका १ दिन पीछे है।

उन्होंने कहा—हम सोम निचोड़ें, इन्द्र हमारे पास शीघ्र ही आयेगा। और सोम निचोड़ा। आगे लिखी प्रतिपद् ऋचा पढ़कर उसे सोम के पास लाये—

५८४—८६. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते॥
[ऋ० ८.६८.१, साम ३५४, १७७१]

हे बलिष्ठ, सच्चे पति, रथ के समान अनन्त-कर्म और विघ्ननिवारक तुम्हें रक्षा-सुखार्थ ध्याते हैं।

आगे की अनुचर ऋचा से इन्द्र'सुत' शब्दके द्वारा देवताओं के सम्मुख प्रकट हुआ—

५८७—८६. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरं अनाभयन् ररिमा ते॥ ऋ० ८.२.१,साम १२४,...

हे इन्द्र, इस सिद्ध सोम को पेट भरकर पी।

आगे की इन्द्र-निह्व ऋचासे उसे यज्ञमें बैठाया—

५९०—९१. इन्द्रनेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः
[ऋ० ८.५३.५, साम २८२]

हे इन्द्र, तू बुद्धियों, रक्षाओं, शान्तिप्रद पूर्ति और शक्तियों के साथ हमारे निकटतम आ।

जो इस रहस्य को समझता है वह स्वयज्ञ इन्द्र के सम्मुख करता है जिससे यज्ञ सफल होता है। (४)

खण्ड ५(१६)— जब इन्द्रने वृत्र को मारा तो देवता समझे कि यह मार न सका, और भाग... उसे स्वापि मरुतों (सोते समय भी वर्तमान) ने नहीं छोड़ा। अतः यह प्रगाथ पढ़ा जाता है।

इसके बाद इन्द्रसम्बन्धी, छन्दः-शब्दवाला ... 'स्वापि'वाला जो मन्त्र हो वह मरुत्वतीय होता ...

खण्ड ६(१७)—होता 'प्र नूनं' आदि ब्रह्मणस्पति के प्रगाथ [२ ऋचाओं] को पढ़ता है। बृहस्पति पुरोहित बनाकर जैसे देवोंने स्वर्ग और इस लोक जीता वैसे ही यहाँ यजमान विजय पाता है।

प्रश्न—साम-गायकों से न गाये इन दो प्रगाथों को, पुनः पठित पाद भी लेकर क्यों पढ़ा जाता है और यहाँ मरुत्वतीय शस्त्र पवमान-सम्बन्धी ९ गायत्री, ६ बृहती, ३ त्रिष्टुप्— इन ३ छन्दों ... १५ ऋचाओं के स्तोम का सामंजस्य कैसे होगा?

उत्तर—यहाँ पहले तृचमें दूसरी-तीसरी गायत्री हैं, दूसरे तृच में ३ गायत्री है इनसे और २ प्रगाथों से बृहतियों का सामंजस्य होता है। इन में सा... रौरव और योधाजय नामक सामोंसे पुनःपठित पा... से स्तुति करते हैं इससे शस्त्रका सामंजस्य होता है। जो त्रिष्टुप् छन्द की २ धाय्या और सूक्त हैं उन... ही इस की और इस रहस्य के ज्ञाता की त्रिष्टुप् का सामंजस्य होता है। ६ (१७)

खण्ड ७(१८)—अब होता धाय्याएँ पढ़ता है।

धाय्या

अग्निर्नेता०, त्वं सोम०, पिन्वन्त्यपः०— इन ३ धाय्याओं से प्रजापति ने इन लोकोंको धारण और कामनाओंको पूर्ण किया वैसे ही यजमान करता है। जहाँ जहाँ देवों ने यज्ञ का छिद्र देखा वहाँ धाय्या से ढँक दिया। अतः ये धाय्या कहाती हैं। ये यज्ञ की सुइयाँ हैं। जैसे सुईसे वस्त्रसीते हैं वैसे ही इनसे यज्ञ के छिद्र को सिया जाता है। जो यह जानता है उसका यज्ञ छिद्र-रहित होता है।

यह जो धाय्या हैं वे ३ उपसदों के उक्थ हैं—

नीचेका अग्नि का मन्त्र पहले उपसदका उक्थ है–

५६२. अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा। स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम्॥ (ऋ० ३.२०,४)

नीचे का सोमका मन्त्र दूसरे उपसद्का उक्थ है-

५६३- त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः। त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥ (ऋ० १.९१.२)

नीचे विष्णु का मन्त्र तीसरे उपसद्का उक्थ है

५९४. पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः। अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्॥ (ऋ० १.६४.६)

सोम यज्ञके द्वारा जिस किसी लोककी कामना करके वह उसे जीतता है जो इस रहस्यको समझता है धाय्यों को पढ़कर इन उपसदों द्वारा जीतता है।

कुछ लोगों का कहना है कि ('पिन्वन्त्यपो' आदि के स्थान में) नीचे का मन्त्र पढ़ना चाहिए —

५९५. तान् वो महो मरुत एव यान् वो विष्णो रेषस्य प्रभृथे हवामहे। हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे॥ (ऋ २.३४.११)

उनका कहना है कि हमने भरतों को इस प्रकार पढ़ते सुना है। लेकिन यह बात माननीय नहीं है। यदि होता इसको पढ़ेगा तो मेघ को रोक देगा। क्योंकि पर्जन्य वृष्टि का स्वामी है। अगर 'पिन्वन्त्यपो' पढ़ेगा तो मेघ अवश्य ही बरसेगा क्योंकि इस मन्त्र में 'अत्यं न मिहे' पद में मेघ की ओर संकेत है और पहले पद में मरुतों की ओर संकेत है 'विनियन्ति' विष्णुके लिये हैं इसका अर्थ है 'विक्रांत' विष्णु विक्रांत वाला है (जो तीनपग चला)। वाजिन इन्द्रके लिये हैं। इसमें चार पद हैं, एक वर्षा के लिए दूसरा मरुतों के लिये तीसरा विष्णु के लिये और चौथा इन्द्र के लिये। यद्यपि यह तीसरे सवन की है लेकिन दोपहर के सवन में पढ़ी जाती है। इसीलिये भरतों के पशु को शाम को गोष्ठ में होते हैं दोपहर को संगविनी (दोपहर को धूप से बचने के स्थान) में आ जाते हैं। 'पिन्वन्त्यपो' यह जगती छन्द है। पशु भी जगती है। यजमान का आत्मा दोपहर है। इस प्रकार यजमानमें पशुओंको धारण कराता है।(७)

खण्ड ८ (१९)–वह मरुत्वतीय प्रगाथ को पढ़ता है–

मरुत्वतीय प्रगाथ

५९६–९८. प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥ (ऋ० ८.८९.३, यजु ३३.९६, साम २५७)

मरुत् पशु हैं, पशु ही प्रगाथ हैं, अर्थात् प्रगाथ पशुओं को पाने के लिए हैं।

अब वह ऋ० १०.७३.१–११ मन्त्र पढ़ता है—

५९९-६००. जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः। अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यत् वीरं दधनद् धनिष्ठा ॥१॥ यजु ३३.६४

जिस वीर को माता धारण करती है वह उग्र, बली, स्वाभिमानी शत्रु-नाशार्थ उत्पन्न होता है, उस इन्द्र को मरुत् बढ़ाते हैं।

यह यजमान– जन्मार्थ है। उसे वह यज्ञसे पैदा करता है। इससे विजय होती है।

इस सूक्तके शक्तिके पुत्र गौरवीति ऋषिने देखा और सुख पाया। यजमान भी इससे सुख पाता है।

इस सूक्तके ६ मन्त्रोंके बाद बीचमें निविद पढ़ता [देखो अध्याय १०] है। ये स्वर्गकी सीढ़ी हैं। प्रिय यजमान को वह साथ लेकर चलता है।

यदि हानि पहुँचाना चाहे तो निविद को सूक्त में ३ बार [पहले; मध्य और अन्त में] पढ़े। यदि वह यजमानको दोनों ओरसे प्रजा से अलग करना चाहे

तो निविद के 'ओंशात्रोम्' द्वारा दो टुकड़े कर दे। इस प्रकार वह यजमानको उसके प्रजाओं या सम्बन्धियोंसे दोनों ओर से अलग कर देगा (अर्थात् पूर्वजों और सन्तान दोनोंसे) । ऐसा वह करे जिसकी कामना दुष्ट हो । स्वर्ग की कामनावाला ठीक ठीक रीति से करे ।

वह इस ऋचा से समाप्त करता है —

६०१–६०२. वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयोनाधमानाः । अप ध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥ (ऋ १०-७३.११,साद६१९)

प्रिय विचार वाले ऋषि लोग सुन्दर परों वाले पक्षियों के समान,इन्द्रके पास गये और प्रार्थना की , कि जो अन्धकार में छिपा है उसे खोल दे। आँखको (प्रकाश से) भर दे। और रस्सी से बंधे हुए जैसे के समान हम को मुक्त कर दे।

जब कहे 'अप ध्वान्तमूर्णु हि'(अँधेरे से हटा) उस समय मन में विचार करे कि अँधेरे से हट रहा हूं। इस प्रकार वह अँधेरे से हट जायगा । जब कहे 'पूर्धि चक्षुः' (आँख को प्रकाश से भर दे) तो दोनों आँखें भले । जो इस रहस्य को समजता है उसकी आँखें बुढ़ापे तक ठीक रहती हैं । ' मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान् ' में निधा का अर्थ है पाश या रस्सी । रस्सी से बंधे हुए के समान । ८ (१६)

खण्ड ९ (२०) — इन्द्र जब वृत्र को मारने लगा तो उसने सब देवताओं से कहा, ' मेरे पास रहो, मेरी मदद करो।' उन्होंने ऐसा ही किया। वे मारने को दौड़े । उसने सोचा कि ये मुझे मारने आते हैं । उसने सोचा 'मैं इनको डरा दूँ ।' उसने उनकी ओर फुसकार मार दी, वह फुसकार से डर कर भाग गये । मरुतोंने उस (इन्द्र) को न छोड़ा । उन्होंने उससे कहा, 'भगवन् मारो ! अपने वीर्य का परिचय दो'। एक ऋषि ने यह देखा और कहा—

६०३–४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः । मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्तु अथेमे विश्वाः पृतना जयासि ॥ (ऋ० ८.९६.७, ३२४)

अर्थ—हे इन्द्र[जीवात्मा], जब सब इन्द्रियाँ तेरा साथ छोड़ दें तो प्राणों के साथ तेरी मित्रता रहे और तू इन सब शत्रुओं को विजय कर।

उस इन्द्र ने मरुतों को सखा विचार कर निष्केवल्य शस्त्र में साथी बनाया । अतः अध्वर्यु मरुतों का ग्रह लेता है, उनका प्रगाथ व सूक्त पढ़ता है और निविद् को सूक्त में रखता है— यह मरुतों का भाग है ।

अब मरुतों की याज्या को पढ़कर यज्ञ करता है—

६०५–६. ये त्वाऽहिहत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ । ये त्वा नूनमनु मदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ऋ३.४७.४, य३२.६७

हे इन्द्र, जो मरुत् , तुझको शत्रु-संहार में सहायता दें, और तेरे अनुकूल प्रसन्न रहें उनके साथ सोम पी।

जहाँ जहाँ इन्द्र इनके साथ जीता उसे कहकर होता इनको इन्द्र के सोमपान का भागी बनाता है । ९(२०)

निष्केवल्य शस्त्र

खण्ड १० (२१)— इन्द्र वृत्र को मारकर, सब को जीतकर प्रजापतिसे बोला—मैं तेरे समान और महान् होजाऊँ । प्रजापति ने कहा— अहं कः (मैं कौन हूं ?) इन्द्र ने कहा—तू 'क' (सुखस्वरूप) है । तभीसे उसका नाम 'क' है, और इन्द्र का 'महेन्द्र' । वह महान् होकर देवों से बोला— मेरा सत्कार करो जैसा कि बड़ों का होता है । देव बोले—तुम्ही बताओ । उसने बताया-सोम का ग्रह(पात्र) दो। माध्यन्दिन सवन, निष्केवल्य शस्त्र, त्रिष्टुप् छन्द, पृष्ठ (दो तृच मिलाकर बना बृहद् रथन्तर, वैरूप आदि)साम उन्होंने उस के लिए दिये । यह रहस्य जाननेवाले को भी देव यह सत्कार देते हैं ।

उससे देव बोले— यहाँ हमारा भी कुछ हो । इन्द्रने कहा —नहीं । देवोंने कहा—कुछ तो होना ही चाहिए । तब उसने उनकी ओर कृपा-दृष्टि से देखा । १० (२१)

खण्ड ११ (२२) — देव बोले, 'इन्द्र की प्रासहा नाम की वावाता(सेना)बहुत प्यारी है, उसीसे पूछें । (राजा की बड़ी स्त्री महिषी कहलाती हैं, उससे छोटी वावाता, उससे छोटी परिवृक्ता) । उन्होंने उससे पूछा । उसने कहा, 'कल सवेरे बताऊँगी ' । क्योंकि स्त्रियों को जो पतियों से पूछना होता है, रात को ही पूछती हैं । प्रातः को देव उसके पास गये । उसने इनसे नीचे का मन्त्र पढ़ा —

६० — यद् वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः । अचेति प्रासहस्पतिस्तुविस्मान् यदीमुश्मसि कर्त्तवे करत्तत् ॥ (ऋ० १०.७४.६)

इन्द्र सेनापति है । देव जो चाहते हैं उसे वह करता है— सेना देवों से यह कहती है ।

वे देव बोले—इस सेनाका भी इसमें भाग हो जिसे कुछ नहीं मिला । अतः यह ऋचा यहाँ पढ़ी जाती है ।

सेना इन्द्र की पत्नी है, प्रजापति उस सेना का ससुर है। इसलिये यदि कोई चाहे कि उसकी सेना विजयी हो जाए तो एक तृण (अस्त्र) ले और शत्रु की ओर फेंक दे और कहे 'प्रासहे कस्त्वा पश्यति' तुझे सेनापति देखता है। तो वह सेना छिन्न भिन्न हो जाएगी ; जैसे ससुर के सामने आते ही पुत्र-वधू शर्मा जाती है।

इन्द्र ने उन देवों से कहा इस शस्त्र में आपको भी भाग मिलेगा । देवों ने कहा 'निष्केवल्यशस्त्र में विराट् छन्द में आज्यशस्त्र हमारा भाग हो ; विराट् में ३३ अक्षर होते हैं । देव भी ३३ होते हैं, ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति और वषट्कार । देवता अक्षर अक्षर बाँट लेते हैं और अक्षर अक्षर करके देव-पात्र से पीते और संतुष्ट होते हैं ।

यदि कोई होता चाहे कि यजमान को घरसे वंचित कर दे तो विराट् छन्द में आज्य शस्त्र न पढ़े, किसी और छन्द अर्थात् गायत्री या त्रिष्टुप् में पढ़े । और यजमान घर आदि से वंचित रह जायगा ।

यदि होता यजमान को घर से युक्त करना चाहे तो विराट् छन्द के नीचे के मन्त्र से याज्य पढ़े इससे उसे अवश्य ही घर की प्राप्ति हो जायगी —

६०८–११. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ११(२२) (ऋ० ७.२२.१, सा० ३९८,९२७ अ० २०.११७.१)

खण्ड १२[२३]—पहले ऋक् और साम अलग थे, 'सा' ऋक् ने 'अमः' साम से कहा—हम दोनों परस्पर सम्बन्ध करलें । साम ने कहा — नहीं, मेरी महिमा बड़ी है । उस ने २ ऋचाओं की भी बात न मानी । ३ की बात मान ली । इसलिए ३ ऋचाओं से आरम्भ करते हैं । सा और अमा मिलकर साम बन गया । जो इसे समझनेवाला सामान्य [न्यायवाला] और न्याय-शून्य असामान्य है, जो निन्दा-सूचक है ।

वे दोनों ५-५ भाग करके बनाये गये—१.आहाव और हिंकार, २. प्रस्ताव और पहली ऋचा, ३. उद्गीथ और दूसरी ऋचा, ४. प्रतिहार और तीसरी ऋचा, ५. निधन और वषट्कार । इसीलिए यज्ञ ५ भागवाला और पशु ५ भागवाले[४ पैर १ मुख] हैं ।

५-५ भागवाले ऋक्-साम १० भागवाले विराट् में हैं जिसमें यज्ञ स्थापित है । स्तोत्रिय आत्मा, अनुरूप प्रजा, धाय्या पत्नी, पशु प्रगाथ और सूक्त घर हैं । इस को समझने वाला प्रजा-पशुओं के साथ सुखी रहता है । [स्तोत्रीय ऋ० ६.३३.२२पर सामगान]

खण्ड १३[२४]—१.वह स्तोत्रिय को, जो आत्मा है, मध्यम ध्वनिसे पढ़ता है, इससे आत्मा बनाताहै ।

२. अनुरूप को, जो प्रजा है, उच्च स्वर से पढ़ता है जिससे सन्तान को अधिक सुखी बनाता है ।

३. धाय्या को जो स्त्री है, बहुत नीचे स्वर से पढ़ता है । यह जाननेवाले की पत्नी घर में उससे अप्रिय नहीं बोलती ।

४. प्रगाथ को स्वर-सहित पढ़ता है । पशु ही प्रगाथ और स्वर हैं । यह पशुओंकी प्राप्ति के लिए है ।

५. अब वह इस सूक्त को पढ़ता है—

६१२— इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम् इत्यादि
ऋ० १.३२.१-१५

निष्केवल्य शस्त्र का यह सूक्त इन्द्र को बहुत प्रिय है । इस सूक्त से ऋषि आंगिरस हिरण्यस्तूप ने इन्द्र को प्रसन्न किया और परम धाम पाया । इसको समझनेवाला भी परम धाम पाता है ।

घर प्रतिष्ठा है । सूक्त भी प्रतिष्ठा है । अतः बड़ी प्रतिष्ठा-युक्त वाणी से इसे पढ़ना चाहिए । यदि किसीके पशु दूर-दूर चर रहे हों तो उनको घर लाया जाता है । क्योंकि घर पशुओंका स्थान है । १३[२४]



यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेयब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय १२ (तीसरी पञ्चिका का द्वितीय अध्याय) समाप्त हुआ ।—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ३, अध्याय ३

तेरहवाँ (तीसरी पञ्चिका में तीसरा) अध्याय

सौपर्ण आख्यान

खण्ड १[२५]—सोम दूसरे लोक में था। देवों-ऋषियों ने सोचा कि वह हम तक कैसे आये। वे छन्दों से बोले— तुम सोम को हम तक लाओ। वे मान गये और सुपर्ण बनकर उड़े, अतः इसको सौपर्ण आख्तान कहते हैं। जो छन्द सोमको लेने उड़े थे वे ४अक्षर के थे। जगती आधी दूर उड़कर थक गयी, वह ३ अक्षर खोकर १ अक्षर की रह गई, तब दीक्षा-तप लेकर लौट आई। पशु जगती के हैं, अतः पशुवाला दीक्षा-तप-युक्त होता है।

फिर त्रिष्टुप् उड़ कर थकगया, वह १अक्षर खो कर ३का रहगया और दक्षिणा लेकर लौटा। अतः वह त्रिष्टुप् के दूसरे सवनमें होती है। १

खण्ड २ [२६]— तब देवों ने गायत्री से कहा— तू सोम को ला। वह बोली— अच्छा, किन्तु मेरे लिए 'स्वस्ति' बोलते रहना। वह उड़ी और वेसब 'प्र च च' स्वस्ति बोलते रहे। अतः स्व-प्रिय यात्री के लिए स्वस्ति-वचन बोलना चाहिए।

गायत्री ऊपर जाकर सोम को और छन्दों के छूटे अक्षरों को ले आयी। [यहाँ गायत्री-शरीर-सम्बन्धी अंश काल्पनिक,असंभव,अतः प्रक्षिप्त है]

खण्ड ३[२७]—गायत्री ने जिस भागको दाएँसे पकड़ा वह प्रातः-सवन हुआ, तभी से वह पहला, मुख्य, अच्छा समझा जाता है। जो इसे समझता है वह श्रेष्ठ हो जाता है।

जो बायेंसे पकड़ा था वह दोपहरका सवन हुआ देवोंने त्रिष्टुप् और इन्द्रको इसमें रख दिया जिस इसमें भी उतना ही बल आगया। जो इसे समझता है वह दोनों सवनों से सुख पाता है।

जिसे वह मुख में लाई वह तीसरा सवन हुआ। उसका रस चूसलिया अवः वह नीरसहोगया। वह रस दूधमें मिला, अतः उसकी आहुति तीसरे सवन में देते हैं, जिससे वह अन्य सवनोंके बराबर होजाता है। इसे समझनेवाला सब सवनों में सुखी होता है।

खण्ड ४(२८)—दोनों छन्दों ने गायत्री से अपने अक्षर माँगे। उसने कहा कि यह मेरी सम्पत्ति है। इस प्रकार उसके ८ अक्षर होगये।

८ अक्षर की गायत्री ने पहले सवनको देवों तक उठाया, ३ अक्षरका त्रिष्टुप् मध्य-सवन को न उठा सका, गायत्रीने उसे अपने ८ देदिये तब उठासका। इसी कारण मध्य-सवन में मरुत्वतीय-शस्त्र के तृच की अन्तिम २ और इसके पीछे की १ ऋचा गायत्री की होती है। १ अक्षर की जगती तीसरे सवन को देवों तक न ले जासकी। इसे भी भाग के बदले ११ अक्षर दिये जिनसे वह ले जा सकी और गायत्री को वैश्वदेव-शस्त्रकी पिछली २, अगली १ ऋचा मिली।

जो इसको जानता है वह सब छन्दोंसे सुखी होता है, क्योंकि सब के शक्ति-गुण बराबर हैं। जो १ था वह ३ होगया। इसका ज्ञाता भेंट का अधिकारी है।

तीसरा सवन

खंड ५ (३९) देवों ने आदित्यों से कहा— तुम्हारे द्वारा तीसरे सवन को उठायें। अतः इस में आदित्यका ग्रह होता। इसकी याज्या ऋचा यह है-

६१३— आदित्यासो अदितिर्मादयन्ताम् मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः। अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥

ऋ० ७.५१.२

इसमें 'मद' शब्द से रूप-समृद्धता है। तीसरे सवन का रूप ही मदवाला होता है। अनुवषट्कार और सोम पान नहीं किये जाते, क्योंकि वे समाप्ति के सूचक हैं। प्राण आदित्य हैं। इससे वह यजमान के प्राणों का अन्त करना नही चाहता।

आदित्यों ने सविता से पूछा कि तेरी सहायतासे

हर तीसरे सवन को ऊपर उठायें। अतः इस के वैश्वदेव शस्त्र का प्रतिपद आरम्भ सविता का तृच है और ग्रह है। याज्या ऋचा यह है—

६१४—दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि। पिबात् सोमं ममदयेनमिष्टे परिज्माचित् क्रमते अस्य धर्मणि॥ [अथर्व ७.१४.४]

मद शब्द से इस मन्त्र की रूप-समृद्धता है। प्राण सविता है। वह प्रातःसायं दोनों सवनोंमें सोम पीता है। सावित्री निविद् में 'पिब' व मद शब्द आये है।

दोनों सवनों में वायु के मन्त्र बोले जाते हैं, प्रातः में कई और सायं में एक। क्योंकि शरीरके ऊपरके भाग में प्राण बहुत हैं और निम्न भाग में कम।

अब होता द्यावा-पृथिवी का मन्त्र पढ़ता है। यहाँ पृथिवी और वहाँ द्यौकी प्रतिष्ठा है। इसप्रकार वह यजमान को दोनोंसे प्रतिष्ठित कर देता है। ५[२९]

खंड ६[३०]—ऋभुसूक्त ऋ० १.१११ पढ़ता है—

६१५—तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसम् इत्यादि

ऋभुओंने तप करके सोमका अधिकार पालिया। उन्हें अग्नि ने वसुओं की सहायता से प्रातःसवन से और इन्द्रने रुद्रों से मिलकर मध्य सवन से निकाल दिया। विश्वेदेव प्रजापति के कहने से इस शर्त पर मान गये कि वह भी साथ रहे। अतः एव ऋभुसूक्त के बाद प्रजापति की २ धाय्याएँ पढ़ी जाती हैं—

६१६-२०— सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे जुहूमसि द्यवि द्यवि॥ १॥

[ऋ० १,४ १,साम१६०,१०८७,अ० २०.५७.१,६८.१]

अयं वेनः इत्यादि ॥२॥ [देखो संख्या १५३]

इसप्रकार प्रजापतिने दोनों ओर खड़े होकर सोम पिया। अतः श्रेष्ठी जिसे चाहे सोम पिलाये।

देवोंने ऋभुओंसे घृणा की क्योंकि उनमें मनुष्य की गन्ध आती थी। उन्होंने अपने और ऋभुओं के मध्य में २ धाय्याएँ और रख लीं—

६२१— येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥१॥ ऋ१०.६३.३

६२२-२३ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥ [ऋ४.५०.६,अ२०.८८.६]

५ वैश्वदेव शस्त्र

खण्ड ७[३१]—अब होता वैश्वदेव शस्त्र ऋ.५.८९ पढ़ता है। यह प्रजा का सम्बन्ध बताने के लिए है। राज्यके अन्तर्गत जनता के समान शस्त्र के सूक्त हैं। धाय्या वन के समान है। अतः उसके पहले और पीछे शोंसावोम् कहे। वे वन भी मृगों-पक्षियों से अ-वन हैं।

यह पुरुष के समान है। इसके अङ्गों के समान सूक्त, जोड़ों के समान धाय्या हैं। शोंसावोम् बोलकर होता उन शिथिल जोड़ों को दृढ़ करता है। धाय्या और याज्या यज्ञकी मूल हैं। उन्हें अन्य अन्य पढ़नेसे यज्ञ निर्मूल होजाता है। अतः वे समान होनी चाहिए।

वैश्वदेव शस्त्र पाञ्चजन्य— देव, मनुष्य, गन्धर्व-अप्सरा, सर्प, पितर—पाँचों का है। सभी इस को जानते और हवन करने वाले इसके पास आते हैं।

वैश्वदेव शस्त्र पढ़नेवाला सब देवोंका प्रिय होता है। पढ़ते हुए वह सब दिशाओंका ध्यान करे। इस से वह सबको रस-युक्त कर देता है। किन्तु शत्रु वाली दिशा का ध्यान न करे, इससे निर्वल होगा।

वह इस मन्त्र से समाप्त करता है—

६२४-२६. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥

[ऋ० १.८९.१०, य० २५.२३, अ ७.६.१]

अर्थ— अदिति द्यौ, अन्तरिक्ष, माता (प्रकृति व पृथिवी), पिता (ईश्वर), पुत्र (जीवात्मा), है, इसमें सब देव और पञ्च जन हैं, यही पैदा हुई और होनेवाली है।

इसको पादों पर रुक रुक कर दो बार पढ़ता है। चौपायों के पाने के लिए ४ पाद हैं। तीसरी बार मनुष्योंमें प्रतिष्ठाके लिए आधी ऋचा पर रुककर पढ़े। क्योंकि मनुष्य के २ पैर होते हैं।

सदा ही उक्त पञ्चजनीय ऋचासे भूमि को छूते हुए समाप्त करे। इसप्रकार जिस भूमिमें यज्ञ करता उसी में इस को प्रतिष्ठित कर देता है।

वैश्वदेव शस्त्र को पढ़ने के पश्चात् अब वह उस की याज्या ऋचा को पढ़ता है—

विश्वेदेवों की याज्या

६२७-६२८— विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ । ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥
[ऋ० ६.५२.१३, यजु० ३३.५३]

अर्थ—अन्तरिक्ष, द्यौ में स्थित अग्नि-ज्ञाता और याज्ञिक सब विद्वान् मेरी पुकार सुनें और इस आसन पर बैठकर प्रसन्न हो ।

इसप्रकार वह विद्वानों को प्रसन्न करता है । ७

खण्ड ८ [३२]—पहली याज्या अग्नि के लिए घी की, तीसरी विष्णुके लिए घीकी और दूसरी सोम के लिए चरु की इस याज्या ऋचा से दे—

६२९— त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावा-पृथिवी आ ततन्थ । तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ [ऋ० ८.४८.१२]

इसमें पितर शब्द आया है। जब सोम निचोड़ते हैं तो मानो उस का हनन करते हैं। यह चरु अनुस्तरणी गौ है जो पितरों के लिए दी जाती है। अब वे सोम को फिर जिलाते और उपसदों के रूप में बढ़ाते हैं। अग्नि-सोम-विष्णु उपसद रूप हैं।

होता सोम के चरु को लेकर पहले अपनी ओर फिर सामगों की ओर देखे। कुछ होता इसे पहले सामगों को देते हैं, किन्तु ऐसा न करें, क्योंकि जो 'वौषट्' कहता है वह होता सब भक्ष्यों का भक्षण करता है वह पहले अपनी ओर देखकर फिर उसे सामगों के लिए दे ।

प्रजापति का आख्यान

खण्ड ९ (३३)— प्रजापति सूर्य ने स्वोत्पादित द्यौ और उषा से सम्बन्ध करना चाहा। लाल-वर्ण वहलाल द्यौ-उषा के निकट गया। देवों ने कहा—यह न किया कार्य करता है। उन्हु उस को रोकने-वाला कोई न मिला तो भूरवान् परमेश्वर से कहा जिस ने उसे नियमित कर दिया। अतः उस का नशुमान् पड़ा। उसका ज्ञाता पशुवाला होत है।

भूतवान् परमात्मा ने सूर्य का नियमन किया। उससे मृग, व्याध; रोहिणी त्रिकाण्ड आदि नक्षत्र हो गये। न दूषित हुई सूर्य-शक्ति को मनुष्यों ने लिया अतः वे 'मा दुष' से ('द' के स्थान में 'न' करके) 'मानुष' होगया अर्थात् उसमें दोष न हो। मादुष परोक्ष शब्द है, देव परोक्ष-प्रिय होते हैं।

खण्ड १० (३४)—देवोंने इस शक्ति को अग्नि से घेर दिया। मरुतों ने उसे हिलाया, वैश्वानर ने चलाया। उसी शक्ति से आदित्य, वरुण से उत्पन्न भृगु, आङ्गिरस, बृहस्पति, काले-लाल घूमनेवाले पशु, बारहसिंघा, भैंसा, हिरन, ऊँट, गधा आदि बने।

भूतवान् ने पशुओं से कहा— यह मेरा है, उसे उन्होंने रुद्र-सम्बन्धी यह ऋचा पढ़कर छुड़ालिया—

६३०—आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः। अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ [ऋ० २.३३.१]

हे मरुतों के पिता, ऐसा न हो कि हम सूर्य के दर्शन न कर सकें। हे वीर रुद्र, ऐसा कर कि हम प्रजा से युक्त होजायें।

अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत के स्थान पर त्वं नो वीरो अर्वति क्षमेथाः पढ़ना चाहिए। यदि 'अभि' न कहेगा तो यह देवता प्रजा के विरुद्ध न होगा। रुद्र के स्थान में रुद्रिय कहना चाहिए जिससे इस का भयानकपन न रहे। यदि इस को हानिकारक समझे तो केवल आगे का मन्त्र पढ़े—

६३१.— शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे॥ (ऋ० १.४३.६)

यह मन्त्र 'शं' से आरम्भ होता है और कल्याण कारक है। नृभ्यो का अर्थ है पुरुषों के लिये, नारिभ्यो से स्त्रियों का तात्पर्य है। ये सबके कल्याणके लिये हैं।

यह रुद्र का मन्त्र है परन्तु अनिरुक्त है, अतः सौ वर्ष की आयु का दाता है। जो इसको समझता है वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है।

यह मन्त्र गायत्री छन्द में है, जो ब्राह्मण है। इस प्रकार वह ब्राह्मण द्वारा रुद्र की उपासना करता है।

❀—❀

६. अग्निमारुत शस्त्र

खण्ड ११ (३५)— जिसने प्रजापति की शक्तिको दृढ़ किया वह वैश्वानर है। इसीलिये होता अग्नि-मारुत शस्त्र को वैश्वानरीय सूक्त (३. ३. १) से आरम्भ करता है। पहली ऋचा को बिना ठहरे हुए पढ़े। जो अग्नि-मारुत शस्त्र (४.१७.२० पृ० ८१) को पढ़ता है वह आग की भयानक लपटों को शान्त कर देता है। सांस साधकर अग्नि को पार करे। कहीं कुछ शब्द बोलने में भूल न हो जाय इससे उसको चाहिए कि किसी दूसरे आदमी को शोधने के लिये नियत किया जाय। मानो वह इस संशोधक को पुल के तौर पर मान कर अग्नि को पार करता है। इसमें कोई भूल न होनी चाहिए इसलिये होता जब मन्त्र बोले तो कोई उसकी अशुद्धि को शुद्ध करनेवाला होना चाहिए।

मरुतों ने प्रजापति की शक्ति को दृढ़ किया। इसीलिये वह मरुतों का सूक्त पढ़ता है।

बीच में योनि (स्तोत्रिय) और प्रगाथ का पाठ करे। प्रथम प्रगाथ (योनि) यह है—

६३२. यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियं धियं वो देवया उ दधिध्वे। आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥

६३३. वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः। सहस्त्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः॥ (ऋ० १.१६८.१-२)

अर्थ— हे मनुष्यो, प्रत्येक यज्ञमें तुम्हारी शीघ्र गति एकसमान हो, तुम्हारे दिव्य गुण वाले शिष्य प्रत्येक ज्ञानको धारण करें। तुम्हारे नये शिक्षार्थियों को पृथिवी-आकाश के बड़े ऐश्वर्य और बड़ी रक्षाके लिए मैं तुम्हें अच्छे साधनों से वरण करूँ।

सदा चलते रहने वाले वायुओं के समान, स्वयं समर्थ, स्वयं बलवान्, शत्रुओं को कँपानेवाले मनुष्य सुख और अन्न प्राप्त करते हैं। वे हजारों जलतरंगों गौओं और बादलों के समान प्रशंसनीय होते हैं।

द्वितीय प्रगाथ (अनुरूप) यह है—

६३४-३६. देवो नो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्। उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥ [ऋ० ७.१६११, साम० ५५, १५१३]

६३७-३८. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत। दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥ (ऋ० ७.१६.१२, साम १५१४)

अर्थ—अग्नि देव तुमको धन देनेवाला है। वह पूर्ण आहुति चाहता है। उसे बढ़ाओ और पूर्णकरो तत्पश्चात वही देव तुमको सुख देता है।

विद्वान् यज्ञ के होता उस अग्नि का आश्रय लेते हैं। वह विशेष कर्म करनेवाले के लिए रत्न और दानशील के लिए उत्तम बल देता है।

बीच में योनि कहने का मतलब यह है कि योनि बीच में होती है। (वैश्वानरीय और अग्नि-मारुतीय) दो सूक्तों को पढ़ने के बाद योनि इसलिए पढ़ी जाती हैं कि पुरुष शक्ति को स्थापित करता है, जिससे प्रजा उत्पन्न हो। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजा और पशुओं वाला होता है। (११)

खण्ड १२ (३६)— होता जातवेदः के सूक्त [ऋ० १.१४३]को पढ़ता है। जब प्रजापतिने सृष्टि बनाई तो वे सब मुख फेरकर चले गये। जब उसने उनको चारों ओर आग से घेर दिया तो उन्होंने अग्निकी ओर मुख किया। मैंने इन जात=उत्पन्न हुओं को इस अग्नि के द्वारा अविदम्=पा लिया, अतः इसे जातवेद कहते हैं और सूक्त को जातवेद-सूक्त।

अग्नि से घिरे हुए प्राणी चल न सकते थे। वे अंगारों के बीच में खड़े थे। प्रजापतिने उनपर जल छिड़का। अतः होता इसके बाद जलसूक्त पढता हैं-

६३९-४३ —आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ (ऋ० १०.९.१) (य ११.५०, ३६.१४, साम १८३७, अ १.५.१)

अर्थ — जल सुखकारी हैं। उन्हें बल के लिए और बड़े आनन्द तथा दर्शन-शक्ति पाने के लिए प्रयुक्त करो।

यह इसलिए पढ़ना चाहिए मानो वह अग्नि को शान्त कर रहा है।

जल छिड़कने के बाद प्रजापति ने कहा कि ये

प्राणी मेरे अपने हैं। उसने उनमें अहिर्बुध्न्य द्वारा परोक्ष तेज धारण करा दिया। वह अहिर्बुध्न्य गार्हपत्य अग्नि है। होता अहिर्बुध्न्य मन्त्र(६.५.१४) पढ़ कर परोक्ष तेज धारण कराता है। इसीलिए कहते हैं कि आहुति देनेवाला न देनेवाले से अधिक तेज वाला है। १२ (३६)

खण्ड १३ (३७)—अब गृहपति देवपत्नियों के लिए मन्त्र ५.४६.६ पढ़ता है क्योंकि पत्नी गार्हपत्य अग्नि के पीछे बैठती है।

कुछ लोग कहते हैं कि पहले राका का मन्त्र पढ़े क्योंकि बहिन का अधिकार पहिले है। किन्तु नहीं, प्रथम देव-पत्नियों के लिए मन्त्र पढ़ना चाहिए। ऐसा करने से गार्हपत्य अग्नि पत्नियोंमें वीर्य धारण कराता है। जो इसे समझता है वह पशुओं और सन्तानों से युक्त होता है। बहिन उसी पेट से पैदा होती है और पत्नी दूसरे पेट से। अतः पत्नी को भोजन प्रथम देना चाहिए।

अब वह राका का मन्त्र (ऋ० २-३२-१४) पढ़ता है, यही पुरुषकी इन्द्रिय की सीवन को सिया करती है। जो इसे समझता है उसके पुत्र उत्पन्न होते हैं।

अब वह पावीरवी मन्त्र (ऋ० ६-४९-७) पढ़ता है। वाणी ही सरस्वती पावीरवी है। इसे पढ़कर वह यजमान में वाणी धारण कराता है।

यम-पितरों के मन्त्र

प्रश्न—प्रथम यम का मन्त्र पढ़े या पितरों का?

उत्तर— प्रथम यम का पढ़ना चाहिए, क्योंकि राजा का प्रथम अधिकार है—

६४४-४५—इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्तु एना राजन् हविषा मादयस्व॥

(ऋ० १०-१४-४, अ० १८-१-६०)

अर्थ— हे यम (आचार्य), आप पितरों के साथ अनुकूल होकर इस आसन पर विराजिए। ईश्वरके कहे मन्त्र हे प्रेरित करें, आप हवि से सन्तुष्ट हों।

इसके बाद ही काव्यों का मन्त्र पढ़े—

६४६-६४७— मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः। यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान् स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति॥

(ऋ० १०.१४.३, अ० १८.१.४७)

अर्थ— योगी कवि (ईश्वर) के उपदेशों से, संयमी प्राणायामों से, आचार्य शिष्यों और ऋचाओं से बढ़ता है। जिनको देव बढ़ाते हैं और जो देवों को बढ़ाते हैं वे पितर यज्ञों में हमारी रक्षा करें।

काव्य देवों से छोटे और पितरों से बड़े हैं। अतः काव्यों का मन्त्र पढ़ने के बाद पितरों के तीन मन्त्र पढ़ता है—

६४८-६५०—उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो ऽवन्तु पितरो हवेषु॥

६५१-५३—आहं पितॄन् सुविदत्रां अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः॥

६५४-५६— इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजसि आ निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥ (ऋ० १०.१५.१,३,२)

(य० १९.४६,५३,६८; अ० १. १.४४-४६)

अवर, पर, मध्यम इन सोम्य पितरों को बुलाकर वह सब पितरों को प्रसन्न करता है, किसी को नहीं छोड़ता है।

दूसरे मन्त्र में 'बर्हिषद्' से तात्पर्य यह है कि उनका प्रिय धाम है। इसको पढ़कर वह प्रिय धाम के द्वारा उनको प्रसन्न करता है। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रिय धाम के द्वारा फलता फूलता है।

पितरों के नमस्कार वाला मन्त्र अन्त में पढ़ता है। इसलिये अन्त में पितरों को नमस्कार होता है 'पितृभ्यो नमः'। प्रश्न है कि इसके पहले आहाव 'शोंसावोम्' कहना चाहिए या मन्त्रको बिना आहावके पढ़ना चाहिए? उत्तर— आहाव के साथ पढ़ना चाहिए। पितृयज्ञमें जो बात अधूरी रह गयी है उसे पूरा करना है। आहाव पढ़ने से अधूरी क्रिया पूरी हो जाती है।

इन्द्र-अनुपान के मन्त्र

खण्ड १४ (३८)— अब होता इन्द्र के अनुपान के मन्त्रों को पढ़ता है—

६५७-५८— स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः रसवाँ उतायम्। उतोन्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहते आहवेषु ॥ १ ॥ (अ० १८.१.४८)

६५६. अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद। पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य विनवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥

६६०—अयं मे पीत उदियर्ति वाचम् अयं मनीषामुशतीमजीगः। अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥

६६१— अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः। अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥ ४ ॥

(ऋ० ६.४७.१-४)

अर्थ— यह सोम स्वादिष्ठ, मधुयुक्त, तीव्र और रसवाला है। इसके पीनेवाले इन्द्रका युद्धों में कोई मुकाबला नहीं कर सकता ॥१॥

इस सोम से हर्षयुक्त इन्द्र वृत्रों के नाशमें प्रसन्न होकर दुष्टोंके हजारों नगरोंको नष्ट करदेताहै। २

यह सोम पीनेपर वाणी, मनोबल को बढ़ाता है, विस्तृत ६ भूमियोंपर विजय प्राप्त कराता और उन उर्वियां (५ इन्द्रिय १ मन) को धारण करता है ॥३॥

सोम पृथिवी और द्यौ को सुन्दर बनाकर तीनों लोकों में अमृत का संचार कर अन्तरिक्ष को धारण करता है ॥ ४ ॥

इन्हीं से इन्द्र तीसरे सवन के बाद सोम का पान करता है अतः ये 'अनुपानीय' कहाते हैं। जब होता इनको पढ़ना है तो मानो देवता अनुपान करके प्रसन्न होते हैं। जब होता आहाव पढ़ता है तब अध्वर्यु मद् धातु से बना शब्द बोलता है।

अब होता विष्णु-वरुण की ऋचा पढ़ता है—

६६२— ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठया। पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन् वरुणा पूर्वहूतौ ॥ (अ० (७.२५.१)

विष्णु, वरुण, प्रजापति

अर्थ—जिन्होंने अन्तरिक्ष बनाया, जो बहुत बलवान् और पराक्रमी हैं तथा किसी रोक-टोकके विना राज्य करते हैं ऐसे विष्णु-वरुण बुलावे पर आयें।

विष्णु यज्ञ के दोषों को दूर करता है और वरुण ठीक-ठीक यज्ञ के फल पर आधिपत्य रखता है। यह दोनों को शान्त करने के लिए है।

अब वह विष्णु की ऋचा को बोलता है—

६६३-६५— विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम् यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं वि चक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

(ऋ० १.१५४.१, अ० ७.२६.१, यजु० ५.१८)

अर्थ— व्यापक परमात्मा के पराक्रमों का क्या कहना है जो सब लोकों को बनाता है और बलवान् होकर विश्व को ३ लोकों में बांट देता है।

विष्णु मति के समान है। जैसे किसान खेतीकी, राजा न्यायकी, वैसे होता यज्ञकी भूल सुधारता है।

अब होता प्रजापति के इस मन्त्र को पढ़ता है—

६६६—तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ (ऋ.१०.५३.५)

इससे सन्तान बढ़ाता है। मन्त्रमें कहे ज्योतिष्मान् देवयानों को यजमान के लिए ठीक करता है। मनु होकर दिव्य जन पैदा करो—कहकर उसे प्रजा देता है।

वह इससे अग्नि-मारुत शस्त्र समाप्त करता है—

६६७—एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणी धृदनर्वा। त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधिश्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ (ऋ० ४.१७.२०)

यह पृथ्वी बहुत कारीगरी वाली, सत्या, निर्भय, मनुष्योंवाली, राजा और यजमान की यज्ञस्थली है।

इससे पृथ्वी छूकर आशीर्वाद देता है।

शस्त्र पढ़कर होता याज्या ऋचा पढ़ता है —

६६८— अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः, सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः। पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥५.६०.८

इस प्रकार वह देवताओंको भाग देता है। (१४)

❀तीसरी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।❀

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ३, अध्याय ४

चौदहवाँ (तीसरी पञ्चिका में चतुर्थ) अध्याय

अग्निष्टोम

खण्ड १ (३६)—देव विजय पाने के लिए असुरों से लड़ने लगे । अग्नि ने साथ देना न चाहा । बुलाने पर उसने कहा— मैं स्तुति कराये बिना नहीं जाऊँगा । उनके स्तुति करने पर वह साथ गया और ३ श्रेणियाँ बनाकर असुरों पर ३ पंक्तियों में आक्रमण किया ।

३ श्रेणियाँ ३ छन्द और ३ पंक्तियाँ ३ सवन हैं। इन से असुरों को हरा दिया । जो इसे समझता है उसका पापी शत्रु स्वयं नष्ट हो जाता है ।

अग्निष्टोम गायत्री है, उसमें २४ अक्षर हैं और इस में २४ स्तोत्र और शस्त्र होते हैं ।

जैसे अच्छा सधा हुआ घोड़ा सवार को आराम देता है वैसे ही गायत्री और अग्निष्टोम कहीं नहीं ठहरते । वे आगे बढ़ते जाते और यजमानको स्वर्ग पहुंचाते हैं।

अग्निष्टोम संवत्सर है। उसमें २४ पक्ष होते हैं और इसमें २४ स्तोत्र-शस्त्र हैं । जैसे सभी जल समुद्रकी ओर जाते हैं वैसेही सभी यज्ञ अग्निष्टोम में मिल जाते हैं।

खण्ड २ (४०)— यदि दीक्षणीय इष्टि पूरी होगई तो सब उसीमें आगये । 'इला'में सब पाक यज्ञ आगये ।

सायं प्रातः स्वाहा कहकर अग्निहोत्र और व्रत करना है वह अग्निष्टोम में मिल जाता है ।

दर्शपौर्णमास प्रायणीय इष्टिमें सम्मिलित है क्योंकि उनमें १५ सामिधेनियां दी जाती हैं ।

सब औषध भी सोम राजा की खरीदमें आजाती हैं । चातुर्मास्य इष्टि आतिथ्येष्टि में आगई क्योंकि दोनोंमें अग्निमन्थन करतेहैं । दाक्षणायन भी इसमें शामिल है प्रवर्ग्य में दूधकी आहुति देते हैं । उपवसथ में पशुबन्ध आगये । इलादधि क्रतु इसके दधिघर्म में आगया । २

खण्ड ३(४१)—पहला भाग बता दिया, अब अगला लीजिये । उक्थ्य के १५ स्तोत्र और १५ शस्त्र मिलकर ३० दिन का संवत्सर हुआ. जो वैश्वानर अग्नि है जो अग्निष्टोम है, उसमें संवत्सर का अनुगामी होने से उक्थ्य शामिल है । वाजपेय भी शामिल होजाता है क्योंकि वह उक्थ्य से केवल २ स्तोत्र अधिक हैं ।

अतिरात्र भी इसमें शामिल है क्योंकि वह संवत्सर में शामिल है । क्योंकि अतिरात्र के १२ सोम-पात्र १५ ऋचाओं से सम्बद्ध हैं जो २-२ करके ३० होजाते हैं । षोडशी साम में २१ भाग और सन्धि में ९ मिलकर ३० हुए, यह संवत्सर हो गया ।

अप्तोर्यामा भी अतिरात्र के समान इसमें शामिल है। इस प्रकार सब कृत्य इस में शामिल हैं ।

अग्निष्टोम के सब स्तोत्र १९० होते हैं । ९० बराबर १० त्रिवृत । १० में १ हटाकर शेष ९ त्रिवृत हैं । २१ बार ९ लकर १८९ हुए । १ सूर्य है जो तपता है, यह विषुवन् है ।

१० त्रिवृत स्तोम इसके पहले हैं और १० पीछे । १ बीच में है सूर्य, जो इनके ऊपर घूमता और तपता है । १ स्तोत्रिय, जो अधिक है, इसके ऊपर ढक्कन के समान है,वह यजमान है । यह दिव्य क्षत्र है जो किसी आक्रमण का निवारण कर सकता है ।

जो इसे समझता है उसे दिव्य क्षत्र और सायुज्य-सारूप्य-सालोक्य मिल जाता है । (३)

खण्ड ४ (४२)—एक बार देवता असुरों से हार गये और ऊपर स्वर्ग चले गये । अग्नि ने नीचे से स्वर्ग को छुआ और वहां पहुंचकर द्वार बन्द करदिया । वह स्वर्ग का अधिपति हुआ । पहले वसुओं ने उसके पास जाकर कहा— अपनी लपटों में होकर हमें स्थान दें, जिससे हम ऊपर जा सकें । उसने कहा— स्तुति किये बिना मैं न जाने दूंगा । अतः उन्होंने ९ ऋचाओं से उस की स्तुति की तो उसने स्वर्ग में जाने दिया ।

अब रुद्र आये । उन्होंने १५ ऋचाओंसे स्तुति की । फिर आदित्य आये, और १७ ऋचाओं से स्तुति की

अब विश्वेदेव आये, उन्होंने २१ स्तोमों से स्तुति की। जो यजमान ऊपर कहे स्तोमों से स्तुति करता, जो ऋत्विज अग्निष्टोम को जानता और जो इन्हें समझता है वह अग्निको पारकर स्वर्ग जासकता है।

खण्ड ५ (४३)—अग्निष्टोम अग्नि ही है। देवों ने अग्नि ज्योतिकी ऊपर कहे ४ स्तोमों से स्तुति की अतः इसका नाम अग्निष्टोम, चतुष्टोम, ज्योतिष्टोम हुआ। ये परोक्षरूप हैं क्योंकि देव परोक्षप्रिय होते हैं।

अग्निस्टोम का न आदि है न अन्त। यह रथके चक्र के समान है जिसके प्रायणीय और उदयनीय २ पहिये हैं। इस विषय में एक गाथा है— शाकल नामक सर्प के समान यह नहीं जान पड़ता कि इस का आदिअन्त कहाँ है क्योंकि प्रायणीय ही अन्त है।

प्रश्न— इसका आरम्भ त्रिवृत (६ ऋचाओं) से और अन्त २१ से। फिर एक समान कैसे हुए ?

उत्तर— २१ स्तोम भी त्रिवृत हैं क्योंकि इन में ३-३ ऋचाएँ होतीं हैं और तृच के लक्षण मिलते हैं।

खण्ड ६ (४४)— अग्निष्टोम तपनेवाला (सूर्य) है। सूर्य भी दिन में तपता है और अग्निष्टोम भी दिन में ही समाप्त हो जाना चाहिए।

अग्निष्टोम साह्न (एक सप्ताह में समाप्त हो जाने वाला या एकाह्निक) है इसलिये इसे जल्दी से नहीं करना चाहिए, न पहले सवन में, न मध्य में और न तीसरे सवन में। नहीं तो यजमान शीघ्र थक जायगा।

अगर प्रातः और दोपहर के सवनों को जल्दी नहीं करते तो पूर्व की ओर ग्राम फलते फूलते हैं अगर सायं का समय जल्दीसे कर देते हैं तो पश्चिम का गाँव जंगल हो जाता है और यजमान मर इसलिए प्रातः, दोपहर और सायं के सवनों को तृतीय करने को जल्दी नहीं करनी चाहिए। तो यजमान नहीं मरेगा।

शस्त्रों को पढ़ने में सूर्य की चाल का अनुकरण करे। प्रातः काल के समय यह शनैः-शनैः तपता है इसलिये प्रातः काल के समय शस्त्रों को धीरे-धीरे पढ़े। दोपहर को तेज होता है इसलिए दोपहर के सवन में तेज पढ़ना चाहिए। दोपहर के बाद मुहं के सामने बहुत तेज तपता है। इसलिए सायं के सवन में बहुत तेजी से पढ़ना चाहिये। उस समय ऐसी तरह पढ़ना चाहिए मानो वाणी पर पूरा प्रभुत्व है। क्योंकि वाणी ही शस्त्र है। तृतीय सवन में जिस तेजी से आरम्भ किया था अगर उसी तेजी से बराबर पढ़ता जायतो बहुत ही अच्छा होता है।

सूर्य न कभी अस्त होता है, न उदय होता है। जो इसको अस्त होता हुआ जानता है वह केवल दिन का अन्त करके फिर अपने को लौटा देता है। रात्रि इधर कर देता है और दिन उधर। और जो प्रातः काल को उदय हुआ मानते हैं यह रात का अन्त करके अपने को लौटा देता है। दिन इधर करता है और रात उधर। सूर्य कभी अस्त नहीं होता है।

जो इस रहस्य को समझता है उसको सूर्य से सायुज्यता, सारूप्यता और सालोक्यता प्राप्त होती है। उसका कभी अस्त नहीं होता। (६)

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम.ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की तीसरी पञ्चिका का चौथा अध्याय समाप्त।



ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका 3, अध्याय ५

२. उक्थ

खण्ड १ (४५)— एक बार यज्ञ देवों को छोड़ कर अन्नादि में चला गया। देवोंने कहा—हम यज्ञ और अन्नादि को ब्राह्मण और छन्दों के द्वारा ले आयें। उन्होंने एक को छन्दोंसे दीक्षित किया, उस ने दीक्षणीय से लेकर पत्नी-संयाज तक पूरा कृत्य किया। मनुष्य भी देवों का अनुकरण करते हैं। उन्होंने प्रायणीय इष्टि को तेजी से करके शंयुवाक् से और आतिथ्येष्टि को इला से समाप्त किया।

देवों के समान मनुष्य भी उपसदों में केवल तीन सामिधेनियाँ और तीन याज्याएँ पढ़ते और सोम-याग से एक दिन पहले उपवसथ करके पत्नी-संयाज सहित सभी कृत्य करते हैं।

उपवसथ के दिन मन्त्रों को यथेच्छ पढ़े, क्योंकि यज्ञ मिल चुकता है, किन्तु उससे पहले बहुत धीरे पढ़े मानो यज्ञ ढूंढ़ा जा रहा हो।

यज्ञ को पाकर देवों ने कहा— हमारे भोजन के लिए ठहर। अतः यज्ञ हविको देवों तक ले जाता है।

यज्ञके 3 दोष

खण्ड २ (४६)— यज्ञ में ३ दोष हो जाते हैं— १. जग्ध, २. गीर्ण और ३. वान्त। जो लोभी ऋत्विज स्वयं जाकर आशा करे कि कुछ मिलेगा— उसे नियुक्त करना 'जग्ध' (उगला हुआ खाना) है। डर से कि यह मार डालेगा या विघ्न करेगा, किसी की नियुक्ति गीर्ण (यज्ञ निगलना) है। किसी बदनाम को ऋत्विज बनाना वान्त (वमन करना) है। देव उससे घृणा करते हैं। अतः ऐसे किसी को ऋत्विज न बनायें। यदि भूलसे ऐसा होजाये तो इसका प्राय-श्चित्त वामदेव्यगान है। यह अमृत और स्वर्गलोक है।

वामदेव्य साम

६६९-७४— कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

६७५-७९— कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सद्-न्धसः। दृढा चिदा रुजे वसु ॥२॥

६८०-८४— अभी षुणः सखीनामविता चरित्-णाम्। शतम् भवास्यूतये ॥३॥ [साम १.२.१-३]

इस साम के तीसरे मन्त्रमें ३ अक्षर कम हैं, इस को पूरा करने के लिए आत्मा के पर्याय 'पु.रु.ष' के १-१ अक्षरको क्रमशः १-१ चरण के अन्त में लगा दे [सखीनाम्पु, तृणाम्रु, तयेषु]। इस प्रकार वह स्वयं को यजमानलोक पृथिवी, मोक्ष और सुख में रख लेता है तथा भूल ठीक हो जाती है।

ऋषि का कथन है कि ऋत्विज ठीक हों तो भी वामदेव्य गान करना चाहिए। २

खण्ड ३ [४७]—जैसे बोझ ढोते ढोते थक जाते वैसे ही छन्द हव्य ढोते ढोते थक कर रुक गये। इन्हें स्वस्थ करने को मित्र-वरुण के लिए पुरोडाश देने के बाद देविका-हवियों को दे।

देविकाओं को आहुतियाँ

१. धाता (वषट्कार) के लिए १२ कपालोंका पुरोडाश २. अनुमति ३. राका ४. सिनीवाली ५. कुहू के लिए चरु, क्योंकि ये क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् छन्द हैं, अन्य छन्द इनके अनुयायी हैं। ये श्रेष्ठ समझे जाते हैं। जो यह समझकर इन छन्दों से आहुति देता है वह मानो सबसे आहुति देता है।

अच्छी प्रकार किया अग्निष्टोम यजमान को स्वर्ग-मोक्ष देता है। ठीक प्रयुक्त छन्द लाभ पहुँचाते हैं। इसे समझनेवाला अपूर्व लोक को पाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि इन देविका-आहुतियों से पहले धाता को घी की १-१ आहुति दे, किन्तु यह ठीक नहीं कि एकही दिन ऋचाओंके एकही जोड़े ५ बार [अनुवाक्या-याज्या] पढ़े जायें। कई स्त्रियाँ भी एक ही पालक से सम्बन्ध करती हैं। एक बार धाताके लिए पढ़ी याज्या देविकाओंसे भी सम्बद्ध है।

देवियों के लिए आहुति

खण्ड ४ [४८]— अब देवियों के सम्बन्ध में—
१.सूर्य[धाता,वषट्कार]केलिए ८कपालका पुरोडाश
२. द्यौ के लिए चरु, वह अनुमति और गायत्री है।
३. उषा के लिए चरु, वह राका और त्रिष्टुप् है।
४. गौ केलिये चरु, वह सिनीवाली और जगती है।
५. पृथिवी के लिए चरु, वह कुहू और अनुष्टुप् है।

जो देविकाओं के विषय में कहा वही देवियों के विषयमें है। अर्थात् कामना एक से ही पूर्ण होती है।

जिसको सन्तान की इच्छा हो वह दोनों के लिए पुरोडश का १-१ भाग काटकर रखे जिससे दोनों की सन्तुष्टि होजाये। किन्तु धन-कामी ऐसा न करे यदि करेगा तो देव उसके लोभसे अप्रसन्न हो जायेंगे, वह यही समझे कि इतना ही पर्याप्त है।

एक बार शुचिवृक्ष गोपालायन ने वृद्धद्युम्न प्रतारिण के यज्ञ में दोनों के लिए पुरोडाश देदिया, उसने राजा के एक पुत्र को जल में तैरता देखकर कहा—राजकुमार जल में इसीलिए तैरता है क्योंकि मैंने दोनों को आहुति दी थी। इसके अतिरिक्त राजाके ६४ पुत्र-पौत्र थे जो सदा कवच पहने रहते थे।

ज्योतिष्टोम-भेद उक्थ्य

अग्निष्टोम में देवों ने और उक्थ्यों में असुरों ने आश्रय लिया। दोनों बराबर थे अतः देव असुरोंको न निकाल सके। भरद्वाज ने उनको देखकर कहा—ये उक्थ्योंमें छिपेहैं अतः कोई उन्हें नहीं देखसकता। उसने इस मन्त्र से अग्नि को बुलाया—

६८५-८७-एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥ [ऋ० ६.१६.१६]

अर्थ—हे अग्नि, आ तुझे अच्छे वचन बोलता हूँ तू इन हर्षयुक्त कार्यों से बढ़ता है।

दूसरी वाणियाँ असुरों की हैं।

इसपर अग्नि ने कहा— यह पतला, लम्बा, पीला (भरद्वाज) क्या कहता है? भरद्वाज ने असुर बताये, तो अग्नि घोड़ा बनकर दौड़ा और उन्हें पकड़ लिया, 'साकमश्वंसाम'बन गया। उसपर कहते हैं कि इसीसे उक्थ्य आरम्भ करे, इससे न आरम्भ को आरम्भ न माना जाये। कुछ का कथन है कि 'प्रनंहिष्ठीय'[ऋ. ८.१०३.८]से आरम्भ करे जिनसे असुर निकाले थे। ऋषि का कथन है कि चाहे जिससे आरम्भ करे।

खण्ड ६[५०]— असुर मित्रावरुण के उक्थ्य में घुसगये। इन्द्रने कहा—इमको निकालनेमें कौन साथ देगा? वरुण ने कहा— मैं। अतः तीसरे सवन में इन्द्र-वरुण के लिए मित्रावरुण का शस्त्र (सं० १३) [ऋ ७.८२] पढ़ा जाता है।

वहाँसे निकाले असुर ब्राह्मणाच्छंसी में घुस गये, इस बार बृहस्पति ने साथ दिया अतः इन्द्र-बृहस्पति के लिए ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र(सं० १४)[ऋ १०.६८, ४३] पढ़ा जाता है जिससे असुरों को निकाला था।

वहाँ से निकाले असुर अच्छावाक् में घुस गये। इस बार विष्णुने साथ दिया। अतः तीसरे सवनमें इन्द्र-विष्णु के लिए अच्छावाक् शस्त्र [ऋ ३.६६] (सं०१५)पढ़ा जाता है। दोनोंने असुर निकाल दिये।

इन्द्र के साथ जिन देवों की स्तुति की जाती है वे जोड़े हैं। उसी से प्रजा उत्पन्न होतीहै। जो इसको समझता है वह प्रजा और पशुओं से युक्त होता है।

पोत्रीयऔर नेष्ट्रीय ऋतु-याज ४ होते हैं और ६ याज्या ऋचाएँ होती हैं। ये मिलकर १० हुए जिन से विराट् बनता है, जिसमें १० भाग होते हैं। इस प्रकार वे यज्ञ को दस भाग वाले विराट् से समाप्त करते हैं॥ ५ (५०)

—❀—

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेयब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय १५ (तीसरी पञ्चिका का पंचम अध्याय) समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ४ अध्याय १

ज्योतिष्टोमका भेद षोडशी

खण्ड १ — देवों ने सोम इष्टिके पहले दिन इन्द्र के लिए वज्र तैयार किया। दूसरे दिन उसे ठंडा कर तीसरे दिन इन्द्रको अर्पण किया और चौथे दिन उस से शत्रुओं पर प्रहार किया, अतः होता चौथे दिन षोडशी शस्त्र [ऋ० १.८४.१] पढ़ता है—

६८६—असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवागहि।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥

अर्थ-- हे इन्द्र, तेरे लिए सोम तैयार है, बलिष्ठ, शत्रु-धर्षक, तू आ। जैसे सूर्य किरणों से संसार को वैसे ही तुझे सामर्थ्य पूर्ण करे।

षोडशी वज्र है। वह इससे अहितकर, हिंसायोग्य शत्रु पर प्रहार करता है। वह षोडशी-वज्रसे उक्थ्य रूपी पशुओं को घेर लेता है, अतः वे यजमान के पास लौट आते हैं। वह उसे १५ शस्त्रोंके बाद पढ़ता है। अतः घोड़ा, पुरुष, गौ, हाथी आदि यदि जाते हों तो बुलाने पर स्वयं लौट आते हैं। वाणी वज्र है।

प्रश्न-- षोडशी नाम क्यों पड़ा ?

उत्तर- इस के स्तोत्र-शस्त्र षोडश १६ हैं, इसके १६ अक्षरों के बाद कुछ ठहरकर ओ३म् बोला जाता और १६ पदोंका निविद रखा जाता है अतः षोडशी नाम पड़ा। यदि किसी अनुष्टुप् के अर्ध में २ अक्षर बढ़जायें तो वे वाणीके स्तन हैं। इसे समझनेवालेकी सत्य रक्षा करता और झूट हानि नहीं पहुँचाता।१

गौरिवीत-नानद साम

खण्ड २-- तेज और ब्रह्मवर्चस् का इच्छुक इस में गौरिवीत साम पढ़े। [ऋ ८.६९.४,सा उ ३.२२]

६८७- अभि प्र गोपतिं गिरा इन्द्रमर्च यथाविदे।
सूनु सत्यस्य सत्पतिम्॥

जो इसे समझता है वह तेजस्वी और ब्रह्मवर्चसी होता है।

कुछ लोगों का कथन है कि इसमें नानद साम पढ़े। [साम ४.२.७.१-४,ऋ० ६.४८.१,सा ३५२]

इन्द्र ने वृत्र के लिए वज्र उठाकर मारा तो वह घायल होकर शोर करने लगा [व्यनदत्] अतः यह नानद हुआ। इसे शत्रु का भय नहीं क्योंकि यह उसे मारनेवाला है। इसे समझनेवाला अभय होता है।

नानदको अविहृत [दूसरे मन्त्रके पद बिना मिला कर] पढ़े, गौरिवीत को विहृत पढ़े। २

खण्ड ३--गौरिवीत साम में २ मन्त्र मिला देता है। आ त्वा वहन्तु... [ऋ० १.१६.१-३] गायत्री [पुरुष] और 'उपसुश्रुतिं' पंक्ति छन्द [पशु] हैं। इनको मिलाकर वह पुरुष को पशु से मिलाता है।

ऊपर कहे २ छन्दोंके २४ और ४० मिलकर ६४ अक्षरों के २ अनुष्टुप् हुए अतः यजमान अनुष्टुप् वज्र से अलग नहीं होता। इसी प्रकार उष्णिक् २८ [पुरुष] और बृहती ३६ [पशु] मिलकर ६४ अक्षरों के २अनुष्टुप् बन जाते हैं, यथा-'यदिन्द्र'० [८.१२] और 'इयन्ते'० [३.४४]।

वह २० की द्विपद से ४४ के त्रिष्टुप् को मिलाता है यथा-- धूर्वस्मै० और ब्रह्मन्वीर० [ऋ ७.३४-४ और ७.२९.२], पुरुष द्विपद को वीर्य त्रिष्टुप् से मिलाता है अतः पुरुष वीर्यवान् बनकर सब पशुओं से अधिक बलवान् बन जाता है और दोनों छन्दों के अक्षर मिलकर २ अनुष्टुप्-वज्र बन जाते हैं।

वह १६ के द्विपद [पुरुष] तथा ४८ की जगती को मिलाता है, यथा-- एष ब्रह्मा.... [आश्व० श्रौत० ६.२] और 'प्र ते महे' [ऋ० १०.९६ १-३]। पुरुष-द्विपद को जगती-पशुओं में प्रतिष्ठित कर उन पर शासन कराता और उनसे दुग्धादि प्राप्त कराता है, तथा दोनों छन्दोंके ६४ अक्षर २अनुष्टुप् होजाते हैं जिन से यजमान अलग नहीं होता॥

अब होता अतिछन्दों को पढ़ता है—
(१) त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं० (ऋ० २.२२.१-३)
(२) प्रोष्वस्मै पुरोरथम् ० (ऋ० १०.१३३.१–३)
छन्दोंमें जो रस वहा वह इनमें चला गया अतः इन को अतिछन्द कहते हैं। इनका पाठ षोडशी शस्त्रमें भी किया जाता है क्योंकि वह सब छन्दोंसे बनता है। इस प्रकार होता यजमानको सब छन्दोंसे युक्त कर देता है, इसे समझनेवाला षोडशी द्वारा सफल होता है। ३

षोडशी में महानाम्नी

खंड ४–होता महानाम्नी ऋचाओंसे कुछ अंश लेकर उपसर्ग करता है। इससे वह सब लोकोंमें भाग देताहै। क्योंकि पहली महानाम्नी भू, दूसरी अन्तरिक्ष, तीसरी द्यौ है। [ऋ० २.२२ के २ में 'प्रचेतन', ३ में 'प्रचेतय', और १०.१३३ के १ में 'आ याहि पिब मत्स्व', २ में 'क्रतुश्छन्द ऋते बृहत्' और ३ में 'सुम्न आधेहि नो वसो' लगाया जाता है] जो इसे समझता वह सफल होता है।
अब वह नीचेके प्रज्ञात अनुष्टुपोंका पाठ करता है—
(१) प्र प्र वस्त्रिष्टुभम् । (ऋ० ८.६९.१)
(२) अर्चत प्रार्चत । ,, ८–१०
(३) यो व्यतींफराणयद् ,, १३–१५
प्रज्ञात अनुष्टुपों का पाठ ऐसा है जैसे कोई मार्ग से भटकगया हो और घूम-फिर कर ठीक मार्गपर आजाय। अपने को श्रीयुक्त समझने वाला अविहृत पाठ कराये जिससे विहृत करनेमें हुई क्षतिका प्रभाव न हो, यदि पाप–नाश करने का प्रयोजन हो तो विहृत पाठ होना चाहिए। क्योंकि मनुष्य पापसे मिला है, षोडशी के विहृत पाठ से वह, और इसे समझने वाला पाप से छूट जाता है। अब नीचेके मन्त्रसे समाप्त करता है—
उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम् । (ऋ० ८. ९.७)
वह यजमान को ब्रध्न के विष्टप (स्वर्ग) पहुंचाता है।
अब वह निम्न लिखित याज्या ऋचा बोलता है—
६८८–८६— अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते। ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषन् जठरे आ वृषस्व॥[ऋ० १०.९६.१३, अ० १०.३२.३]
इससे सभी सवन सम्मिलित हो जाते हैं–१. अपाः० (तू ने सोम पिया) से प्रातः सवन, २. अथो इदं० (अब यह सवन केवल तेरा है) से मध्य सवन और ३. ममद्धि० (सोम से आनन्द उठा) से सायंसवन आगया। 'वृषन्' षोडशी का रूप है। इस को पढ़ने से वह सब सवनों की होजाती है। इसे समझनेवाला सब सवनों से बनी षोडशी से सफल हो जाता है।
इस याज्या के प्रत्येक चरण में महानाम्नी का ५–५ अक्षरों का उपसर्ग आरम्भ में जोड़ देते हैं—१ में एवाह्येव, २ में एवाहीन्द्र, ३ में एवाहि शक्रो, ४ में वशो हि शक्र। इस प्रकार सब छन्दों से युक्त षोडशी द्वारा समझने वाला सफल होता है। ४

ज्योतिष्टोम ४-अतिरात्र

खण्ड ५— देवों ने दिन का और असुरों ने रात का आश्रय लिया। दोनों बराबर थे। इन्द्र ने कहा— मेरे साथ रातमें कौन चलेगा जो असुरोंको वहां से निकाल दे। कोई तैयार न हुआ क्योंकि वे डरते थे कि रातका अन्धकार मृत्यु है। आजकल भी लोग रात के समय निकट स्थान को भी जाते डरा करते हैं।
छन्द उसके साथ चले क्योंकि वे रात के देवता हैं। इसमें निविद, पुरोरुक्, धाय्य—कुछ नहीं पढ़ा जाता। इन्द्र और छन्दो के अतिरिक्त कोई अन्य देवता नहीं। उन्होंने पर्यायों द्वारा घूम घूमकर असुरों को निकाला अतः उनको पर्याय कहते हैं। पहले पर्याय में रात के पहले भाग से,दूसरेमें मध्य रात से और तीसरेमें रातके अन्तिम पहर से उन्होंने असुरोंको बाहर निकाल दिया। छन्दों ने कहा — केवल हमी शर्वरी (रात) में तेरा साथ देते हैं। अतः छन्दोंका नाम 'अपिशर्वराणि' रख दिया गया। वे इन्द्रको रातके अन्धकारसे निकाल लाये इसलिए भी यह नाम पड़ा। ५

पर्यायों की याज्या

खण्ड६—होता आगेके अनुष्टपों से आरम्भ करता है–
६९०— पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्रगायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ ऋ ८.९२.१
इसमें अन्धस् शब्द आया है। अनुष्टुप् छन्द रात का है। रात्रि आनुष्टुभी होती है।

ये याज्यायें निम्न लिखित हैं—

६६१. अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः। कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ [ऋ० २.१४.१]

६६२. अस्य मदे ... ६.४४.१४

६६३-६४. अप्सु [अ० २०.३३.१, ऋ१०.१०४.२]

६६५. इन्द्र पिब... ,, ६.४०.१

६६६. अपाय्यस्यान्धसो... ,, २-१९.१

इनमें अन्धस, पा, मद ये तीन शब्द आते हैं जिनसे यज्ञ में रूप-समृद्धता होती है।

पहले पर्याय में पहले पदों को दो बार बोलकर वे असुरों के घोड़े-गौ, मध्यममें मध्य के पदों को दो बार बोलकर गाड़ी-रथों को और अन्तिम में अन्त के पदों को दो बार बोलकर इनके शरीर के वस्त्र-सोना-मणि ले लेते हैं। इसे समझने वाला शत्रु से धन लेकर उसे सब स्थानों से निकाल देता है।

प्रश्न—पवमान स्तोत्र दिन के हैं, रातके नहीं, फिर दोनों पवमान-युक्त और समानभागी कैसे होते हैं ?

उत्तर — नीचे के मन्त्रों से, जो शस्त्र-स्तोत्र दोनों हैं, दिन-रात पवमान-युक्त और समभागी होजाते हैं -

६९७-७००. इन्द्र।य मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥

[ऋ ८.९२.१९, सा १५८, ७२२, अ० २०.११०.१]

अर्थ— आनन्दमय इन्द्र के लिए रस प्रस्तुत है। हमारी वाणियाँ स्तुति करें। उपासक उपास्यको पूजें।

इदं वसो ... [देखो सं० ५८७]

७०१-३—इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानाम्पते। पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥ (ऋ ३.५१.१०,सा१६५.७३७)

अर्थ—हे आराधनाओं के स्वामी, आपके ओज से यह सोम तैयार है, हे वाणीसे भक्तियोग्य, इसकी रक्षाकरो।

प्रश्न— १५ स्तोत्र दिनके ही होते हैं रात के नहीं, फिर वे दोनों के और समभागी कैसे होंगे ?

उत्तर— अपिशर्वरणि के १२ स्तोत्र और रथन्तर के ३ सन्धिस्तोत्र मिलकर १५ समभागी हो जाते हैं।

स्तोत्र परिमित हैं शस्त्र अपरिमित जैसे भूत परिमित और भविष्य अपरिमित है। होता स्तोत्रों से अधिक शस्त्रों को अधिक प्रजा-पशु पाने के लिए पढ़ता है।

—❀—

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेयब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय १६ (चतुर्थ पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ४ अध्याय २

सूर्या सावित्री और सोम

खण्ड ७—प्रजापतिने पुत्री सूर्या सावित्रीका सोम राजा से विवाह किया। अतिथि देवों के लिए हवतु के रूपमें १००० मन्त्रोंका शस्त्र बनाया जिसे अश्विशस्त्र कहते हैं। १००० से कम रहे वह अश्विओंका नहीं। अतः होता १००० वा अधिक मन्त्र बोले। घी खाकर बोले। जैसे गाड़ी वा रथ के पहियों में तेल लगाने से वे अच्छे चलते हैं वैसेही घी से वाणी भी अच्छी चलती है। होता शकुनि बाज की तरह बैठ कर आहाव पढ़े।

देव निश्चय न कर सके कि १००० मन्त्र किसके हों। प्रत्येक ने कहा—मेरे हों। एकमत न होने पर यह ठहरा कि गार्हपत्य अग्नि से चलकर सूर्य तक एक दौड़ हो। जो जीते उसी के हों। अतः अश्वि-शस्त्र का आरम्भ अग्निकी इसऋचा से होता है—

७०४—अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः। देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ [ऋ० ६.१५.१३]

अर्थ—परमात्मा दानी, घर का रक्षक दीप्तिमान और सर्वज्ञ-व्यापक है। वह सबकी उत्पत्ति जानता है। वह देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ यज्ञकर्ता है, उसी की उपासना करो।

कुछ का कथन है कि नीचे के से आरम्भ करे—

७०५—अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं

सदमिन् सखायम् । अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ (ऋ० १०.७.३)

उनका कहना है कि 'दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य' (मन्त्र का चौथा पाद) इन शब्दों से यथेष्ट स्थान को वह पहुँच जायेगा।

परन्तु यह बात माननीय नहीं है। उन लोगों से कहो कि अगर मन्त्र में 'अग्नि' शब्द बार बार आयेगा तो होता आग में गिर पड़ेगा। ऐसा ही हुआ करता है। इसलिए 'अग्नि होता गृहपतिः' से आरम्भ करना चाहिए। इसमें गृहपति और जनिमा (सन्तान) शब्द हैं। इससे उसको पूर्ण आयु प्राप्त हो सकती है। जो इस रहस्य को समझता है उसकी आयु पूर्ण होती है। (१)

आश्विन शस्त्र

खण्ड २(८)—ये जो देवता दौड़ रहे थे उनमें से चलने के बाद अग्नि अपने मुख या लपटों के द्वारा आगे था। अश्वि पीछे थे। वे उससे बोले— हम दोनों जीत जायें। अग्नि मान गया कि यदि अश्वि-शस्त्र में उस को भी भाग मिले। उन्होंने स्वीकार कर लिया और अश्वि-शस्त्र में अग्नि को स्थान दे दिया। अतः अश्वि-शस्त्र में अग्नि के कई मन्त्र हैं।

अश्वि उषा के पीछे थे। वे उससे बोले तू हट जा। हम जीत जायें। वह इस शर्त पर मान गई कि उसका भी भाग लगे। उन्होंने स्वीकार कर लिया और उसके लिए अश्वि-शस्त्र में जगह कर दी। इसीलिए अश्वि-शस्त्रमें उषा के लिये मन्त्र हैं।

अश्वि इन्द्र के पीछे चले और कहा, मघवन्; हम इस दौड़ में जीतना चाहते हैं। उनका यह साहस न हुआ कि इन्द्र से कहते हट जाओ। इन्द्र ने इस शर्त को मान लिया कि उसका भी भागहो। उन्होंने स्वीकार कर लिया और अश्वि-शस्त्र में इन्द्र को स्थान दिया। इसीलिये अश्वि-शस्त्र में कई मन्त्र इन्द्र के हैं।

इस प्रकार अश्वि जीत गये और उनको पुरस्कार मिल गया। इसलिए इस शस्त्रको अश्विशस्त्र कहते हैं। जो इसको समझता है उसकी कामना पूरी होती है।

कुछ लोग पूँछते हैं कि जब इस शस्त्र में अग्नि उषा और इन्द्र के मन्त्र हैं तो इसको अश्वि-शस्त्र क्यों कहते है। इसका उत्तर यह है कि अश्वि जीत गये, उनको पुरस्कार मिल गया। जो इस रहस्य समझता है उसकी कामना पूरी हो जाती है। (२)

खण्ड ३ (९)— अग्नि ने रथ में खच्चरियाँ जोड़ीं। उनकी योनि निरुद्ध कर दी। अतः उन के सन्तान नहीं होती। उषा लाल गौओं के रथमें दौड़ी जैसा कि उषा का रूप चमकता है। इन्द्र घोड़ों के रथमें दौड़ा। अतः क्षत्रियों का रूप है कि बहुत शोर हो। यही इन्द्र का रूप है। अश्वि गधों के रथ में दौड़े और जीत गये तब पुरस्कार पा गये। बहुत दौड़ने से थक गये अतः गधों की तेजी जाती रही। वे वाहनों में सबसे कम हो गये, किन्तु अश्वियों ने उन्हें शक्तिरहित नहीं किया। अतः उनमें दो प्रकार का वीर्य (खच्चर-गधा-प्रजननार्थ) होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें सूर्या के लिए भी ७ छन्दों में मन्त्र पढ़ने चाहिए इससे देवों के ६ लोकों में फूले फलेगा। किन्तु ऐसा मान्य नहीं। लोक ३ ही हैं जिन्हें जीतने के लिए ३ ही छन्दों में पढ़े।

कुछ कहते हैं कि 'उदु त्यं'...(ऋ० १.५०.१ से आरम्भ करे। यह भी मान्य नहीं। यह सीमा को ही भूलना है। अतः इस मन्त्र से आरम्भ करे—

७०६— सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥ [ऋ० १०.१५८.१]

सूर्य हमारी द्यौ से, वायु अन्तरिक्षसे और अग्नि पृथिवी के पदार्थों से रक्षा करे।

इस से वह उद्दिष्ट सीमा को पहुँच जाता है।

अब दूसरा मन्त्र बोले—

७०७-१३— उदु त्यं जातवेदसं देव वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥[ऋ० १.५०.१, सा३१ य ७.४१, ८.४१,३३.३१, अ१३.२.१६, २०.४७.१३]

अर्थ—उस जातवेदः देव सूर्य (परमात्मा, सूरज, विद्वान्) को, सबको दिखाई देनेके लिए, केतु चिह्न किरणें वहन कर रही हैं।

७१४— चित्रं देवानाम् उदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आ प्राः द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ [ऋ० १.११५ सूक्त]

सूर्य देवों में चित्र है अतः यह त्रिष्टुप् छन्द का सूक्त बोला जाता है। अब आगे जगती का सूक्त—

७१५—नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे० [ऋ १० ३७]

इसमें एक आशीर्वाद का पद है. उससे होता अपने और यजमान के लिए आशीर्वाद देता है ३

खण्ड ४ [१०]—कहते हैं कि इसमें सूर्य और बृहती को न छोड़ा जाये। सूर्य के छूटने से ब्रह्मवर्चस् से और बृहती के छूटने से प्राणों से छुट जायगा।

अब वह इन्द्र के प्रगाथों को पढ़ता है—

७१६-२०—इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ (ऋ० ७.३२.२६,साम २५६, १०५३, अथ० १८.३.६७, २०.७९.१)

हे इन्द्र, हमारे यज्ञ को पूरा कर जैसे पिता पुत्रकी मदद करता है। हे पुरुहूत (सब इसीको बुलाते हैं इस लिए इसको पुरुहूत कहा) हमको इस प्रहर में शिक्षा दे, जिससे हम ज्योति को प्राप्त होवें।

यह जो ज्योति है उससे सूर्य का तात्पर्य है। इस मन्त्र को पढ़कर वह सूर्य को भूलता नहीं।

बार्हत प्रगाथ को पढ़कर वह बृहती को भूलने नहीं पाता। नीचे के मन्त्र से राथन्तरी योनि की स्तुति करता है—

७२१-२५.अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ (ऋ०-७.३२.२२,साम२३३,६८० य०२७.३५,अ२०.१२१.१)

रथंतर स्वर से अश्विन-शस्त्र का सन्धि-स्तोत्र पढ़ा जाता है यह रथंतर योनि के लिए है।

ऊपरके मन्त्रमें 'ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्' शब्द हैं। स्वर्दृक् से सूर्य का तात्पर्य है (स्वर्ग का देखने-वाला)। इसके पाठ से वह सूर्य को नहीं भूलता। यह जो बार्हत प्रगाथ है उसस बृहती को नहीं भूलता।

नीचे का मन्त्र और वरुण का प्रगाथ पढ़ता है—

७२६. बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः। त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ (ऋ० ७.६६.१०)

दिन मित्रहै और रात्रि वरुण। जो अतिरात्र करता है वह दिन और रात से शुरू करता है। मैत्रावरुण प्रगाथ को पढ़कर होता यजमान को दिन-रात में स्थापित कर देता है।

सूरचक्षसः शब्द से सूर्य को नहीं भूलता। यह जो बार्हत प्रगाथ है उससे बृहती को नहीं भूलने पाता।

द्यौ और पृथिवी के यह दो मन्त्र पढ़ता है—

७२७-२९. मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ (ऋ० १.२२.१३, य० ८.३२, १३.३२)

७३०. ते हि द्यावा पृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत् कवी। सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ (ऋ० १.१६०.१)

द्यौ और पृथिवी दो स्थान हैं। पृथिवी यहाँ और द्यौ वहाँ। द्यावापृथिवी के इन दो मन्त्रों को बोलकर वह यजमानको द्यौ और पृथिवीमें स्थापित कर देताहै।

ऊपर जो देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः शब्द आये हैं (अर्थात् देव और शुचि सूर्य दो देवियों को पार करता है) उनसे वह सूर्य को नहीं भूलता। इनमें से एक गायत्री है और दूसरा जगती। इन दोनों के मिलने से दो बृहती होते हैं। इस प्रकार वह बृहती को नहीं भूलने पाता।

द्विपदों की स्तुति करता है—

७३१. विश्वस्य देवी मृचयस्य जन्मनो न या रोषाति न ग्रभत् ॥

यह जो उत्पन्न हुआ या चलता फिरता जगत है उस सब की शासक देवी न हम पर क्रोध न करे, न नाश के लिए हमारे पास आये (यह मन्त्र संहिता में नहीं है)।

निर्ऋति का पाश

लोग इस अश्विन-शस्त्र को चितैध (चिता का ईंधन) कहते हैं। क्योंकि जब होता इस शस्त्र को समाप्त करने को होता है तो निर्ऋति अपना पाश लिए छिपी रहती है कि होता के गर्दन में डाल कर उसका नाश कर दे। बृहस्पति ने उसको बचाने के लिए इस द्विपदा स्तुति का दर्शन किया। यह जो शब्द आये हैं न या रोषाति न ग्रभत् [न क्रोध कर न नाश के लिए देख] इन शब्दों को कह कर निर्ऋति से पाश छीन लिये और नीचे रख दिये। इसी प्रकार जब होता

द्विपदों की स्तुति के मन्त्र पढ़ता हैं तो निर्ऋति के हाथों से पाश छुड़ा लेता है और उनको नीचे रख देता है, और पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए सुरक्षित निकल आता है। जो इस रहस्य को समझता है वह पूर्ण आयु प्राप्त कर लेता है।

मन्त्र में जो ये शब्द हैं 'मृचयस्य जन्मन:' इनके पाठ से वह सूर्यको नहीं भूलता क्योंकि सूर्य चलता चलता सा है (मर्चयति)।

द्विपद मन्त्र का छन्द मनुष्य का छन्द है (क्योंकि इसके भी दो पाद होते हैं और मनुष्य के भी दो पाद होते हैं)। इसलिए इसके अन्तर्गत सभी छन्द आ जाते हैं। इस प्रकार होता बृहती को भूलने नहीं पाता। (४)

खण्ड ५ (११)—ब्रह्मणस्पति के मन्त्रसे समाप्त करता है। ब्रह्म बृहस्पति है। वह ब्रह्म में उसको स्थापित करता है। जो पुत्र और पशु की कामना करे वह इस मन्त्र से समाप्त करे —

७३२-३३. एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

(ऋ० ४.५०.६, अ० २०.८८.६)

क्योंकि इस मन्त्र के 'बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्' शब्दों के कहने से वह सन्तान, पशु, धन, वीर वाला हो जाता है। अतः यह जानकर इस मन्त्र से आरम्भ करना चाहिए। तेज और ब्रह्मवर्चस् की कामना वाला नीचे के मन्त्र से आरम्भ करे —

७३४-३५. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज् जनेषु। यद् दीदयच् छवस ऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

(ऋ० २.२३.१५, य० २६.३)

अति का अर्थ है कि अन्यों की अपेक्षा अधिक ब्रह्मवर्चस वाला होता है। द्युमत् का अर्थ है ब्रह्मवर्चस्। विभाति का अर्थ है कि ब्रह्मवर्चस हर जगह चमकता सा है। यद् दीदयच् छवस ऋत प्रजात का अर्थ है कि ब्रह्मवर्चस् चमकता है। जो इस रहस्यको समझकर इस प्रकार समाप्त करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है। इससे इस रहस्य को समझने वाले होता को इसी ब्रह्मणस्पति के मन्त्र से समाप्त करना चाहिए। ऐसा करने से वह सूर्य को नहीं भूलने पाता। ३ बार त्रिष्टुप् में सभी छन्द आ जाते हैं। इस प्रकार वह बृहती को नहीं भूलता। गायत्री और त्रिष्टुप् से वषट्कार करे। गायत्री ब्रह्म है और त्रिष्टुप् इस प्रकार ब्रह्म और वीर्य को जोड़ता है। जो इस रहस्य को समझ कर गायत्री और त्रिष्टुप् से वषट्कार करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है। (त्रिष्टुप् यह है) —

७३६. अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना। नासत्या तिरो अह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ [ऋ० ३.५८.७]

गायत्री यह है —

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥ (देखो स० ३४१)

गायत्री और विराट्

गायत्री और विराट् से भी वषट्कार हो सकता है। गायत्री ब्रह्म है और विराट् अन्न। इस प्रकार ब्रह्म को अन्न से जोड़ता है। जो इस रहस्य को समझ कर गायत्री और विराट्से वषट्कार करता है वह ब्रह्मवर्चसी और ब्रह्मयशसी होता है और ब्रह्म अन्न (शुद्ध अन्न) खाता है।

इसलिये जो इस रहस्य को समझे उसे गायत्री और विराट् से वषट्कार करना चाहिए। विराट्—

७३७. प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे। तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥

[ऋ० ७.६८.२]

गायत्री वही है (देखो सं० ३४१) (५)

❀ ज्योतिष्टोम का चौथा भेद 'अतिरात्र समाप्त ❀

चतुर्विंश कृत्य

खण्ड ६ (१२) — इस दिन चतुर्विंश कृत्य करते हैं। यह आरम्भ है। इससे संवत्सर सत्र का आरम्भ होता है और स्तोमों तथा छन्दों का और देवता का भी। यदि इस दिन आरम्भ न हो तो न

छन्द का आरम्भ समझा जायगा न देवताओं का। इसलिए इसका नाम आरम्भरणीय पड़ा। इसको चतुर्विंश इसलिए कहते हैं कि इसमें चौबीस स्तोम पढ़े जाते हैं। या २४ पक्ष (आधे महीने) होते हैं इनसे पक्षों वाला साल आरम्भ होता है।

उक्थ्य भी उसी दिन होता है। उक्थ्य पशु हैं। पशुओं की प्राप्ति के लिये यह किया जाता है। इस उक्थ्य में १५ स्तोत्र हैं और १५ शस्त्र। (मिलकर तीस हुए) तीस दिन का महीना होता है। इनसे महीनों वाला साल शुरू होता है। इस उक्थ्य में ३६० स्तोत्रिय मन्त्र हैं। साल में इतने ही दिन होते हैं। इस प्रकार वह दिनों वाले साल का आरम्भ करते हैं।

कहते हैं कि उस दिन अग्निष्टोम होना चाहिए यह संवत्सर है। अग्निष्टोम के अतिरिक्त और किसीने इसदिन की पवित्रता को या उसके भिन्न भिन्न कृत्यों की पवित्रता को कायम नहीं रखा।

अगर इस दिन अग्निष्टोम करें तो तीनों पवमान (प्रातः सवन, मध्य सवन और ग्राम के सवन के) अष्टाचत्वारिंश स्तोम में होना चाहिए। [अर्थात् स्तोत्रिय तृचको बार-बार पढ़कर ४८ कर लेना चाहिए] और अन्य ९ स्तोत्र चतुर्विंश स्तोम में। इस प्रकार ३६० स्तोत्र हो गये (३गुणे ४८= १४४, ९ गुणे २४ = २१६। १४४ और २१६ का योग बराबर ३६०) जितने कि वर्ष में दिन होते हैं। इस प्रकार वह दिनों वाले वर्ष को पूरा करते हैं।

परन्तु उक्थ्यको ही करनाचाहिए(अग्निष्टोमको नहीं)। यज्ञ पशु-समृद्ध होता है। अगर सभी स्तोत्र चतुर्विंश स्तोम में होंगे तो प्रत्यक्ष ही यह दिन २४ गुना हो जायेगा इस लिए उक्थ्य ही करना चाहिए। (६)

बृहत् और रथन्तर साम

खण्ड ७ (१३)— (इस सत्र के) दो मुख्य साम होते हैं, बृहत् और रथन्तर। यह बृहत् और रथन्तर यज्ञकी दो नावें हैं जो उसको दूसरी ओर पार कर देती हैं। इन्हीं से यजमान साल को पार कर लेता है। या बृहत् और रथन्तर दो पैर हैं। दिन (का कृत्य) सिर है। दो पैरों की कमाई सिर पर रखी जाती है।

बृहत् और रथन्तर दो पक्ष हैं। दिन का कृत्य सिर है। इन्हीं दो पक्षों से सिर को श्री तक ले जाते हैं।

दोनों सामोंको साथ एक नहीं छोड़ देना चाहिए अगर सत्र करने वाले इन दोनों को साथ-साथ छोड़ देंगे तो जैसे नावों की रस्सियां कट जाने से वे इस किनारे से उस किनारे तक बहती फिरती हैं, इसी प्रकार ये भी बहते फिरेंगे।

अगर वह रथन्तर को छोड़ दे तो बृहत् के द्वारा दोनों ठहरे रहेंगे। और यदि बृहत् को छोड़ दें तो रथन्तर के द्वारा दोनों ठहरे रहेंगे। जो वैरूप हैं वे रथन्तर हैं जो बृहत् हैं वह वैराज हैं। जो शाक्वर है वह रथन्तर है, जो रैवत् है वह बृहत् है।

जो इस रहस्य को समझ कर सत्र का आरम्भ करते हैं वे पक्षों, महीनों और दिनों वाले साल को प्राप्त करके स्तोमों और छन्दों तथा देवों को प्राप्त करके तपोंको तपते हुए और सोम पान करते साल को बिताते हैं।

जो इस संवत्सर से ऊपर कोई कृत्य करते हैं वह भारी बोझ को रख देते हैं। भारी बोझ पीठ को तोड़ देता है।

वह जो पहले कर्मों को क्रमशः करता हुआ फिर उल्टे क्रमसे कृत्य करता है वह साल के कल्याणप्रद अन्त को प्राप्त कर लेता है। (७)

महाव्रत और सत्र

खण्ड ८ (१४)— यह जो चतुर्विंश है वह महाव्रत है। बृहद् दिव सूक्त से होता वीर्य सींचता है— (ऋ० १०.१२०, तदिदास भुवनेषु इत्यादि) और महाव्रत दिन के कृत्य से इस वीर्य से सन्तान उत्पन्न करता है। वीर्य सींचा जाय तो दूर साल उपजता है। इसीलिये बृहद्दिव निष्केवल्य शस्त्र का भाग हो जाता है।

जो इस रहस्य को समझ कर पहले क्रमशः कृत्य करता है और फिर दूसरे भाग को उल्टे क्रम से करता है,वह बृहद्दिव सूक्तके द्वारा वर्ष के कल्याण प्रद अन्त को पा लेता है।

जो साल के इस पार और उस पार को जानता है वह संवत्सर के उस पार को सुगमता से पार कर लेता है।

सत्र के शुरू का अतिरात्र एक सिरा है और दूसरा अतिरात्र दूसरा सिरा है। जो इस रहस्य को समझता है वह साल के अच्छे अन्तको पा लेता है।

जो सालके अवरोधन और उद्रोधनको जानता है, वह संवत्सर के कल्याण-प्रद अन्त को पा लेता है। शुरू का अतिरात्र अवरोधन तथा अन्त का अतिरात्र उद्रोधन।

जो इस रहस्यको समझताहै वह वर्षको अच्छी तरह पार कर लेता है। जो संवत्सरके प्राण और उदान को समझता है वह साल को अच्छी तरह पारकर लेता है। पहिला अतिरात्र प्राण है दूसरा उदान। जो इस रहस्य को समझता है वह भली तरह साल को समाप्त करता है (८)

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पञ्चिका का दूसरा अध्याय समाप्त।

—✻—

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ४, अध्याय ३

षडह (६ दिन का यज्ञ)

खण्ड १ (१५) —वे ज्योतिष्टोम,गौष्टोम और आयुस्तोम करते हैं। यह लोक ज्योति है। अन्तरिक्ष गौ है। वह लोक आयु है। पिछले तीन दिनों में वही स्तोम पढ़े जाते हैं। पहले तीन दिनों का क्रम है ज्योति, गौ, आयुः। पिछले तीन दिनों का है आयुः, गौ, ज्योतिः। इस प्रकार आरम्भ में ज्योति यह लोक भी है और अन्तमें वह लोक भी। इस प्रकार दोनों ज्योतियाँ एक दूसरेके सामने हैं।

वे षडह (छः दिन के कृत्य) को दोनों ओर से ज्योति से सम्पादन करते हैं। इस प्रकार दोनों लोकों में उनकी प्रतिष्ठा होती है, इस में भी और उसमें भी। और वे दोनों में विचरते हैं।

यह जो अभिप्लव षडह है यह देवों का चक्र है। दो अग्निष्टोम इसकी परिधिहैं। ४ बीचके उक्थ्य नाभि हैं। इस चक्रके जोरसे जहाँ चाहे जा सकता है। जो इस रहस्य को समझता है वर्ष को अच्छी तरह पार कर लेता है। जो पहले ,दूसरे, तीसरे , चौथे पाँचवें षडह का ठीकठीक ज्ञान रखता है वह वर्ष ५गुणित६=३० को भलीभाँति पार पालेता है।

खण्ड २ (१६) — पहले षडह को पार करते हैं तो छः दिन और छः ऋतुएँ होती हैं इस प्रकार ऋतुओं वाले वर्ष को प्राप्त करते हैं और वर्ष की सभी ऋतुओं में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

दूसरे षडह को पार करते हैं तो १२ दिन और १२ मास होते हैं। इस प्रकार महीनों वाले वर्ष को प्राप्त करते हैं , वर्ष के सभी महीनों में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

तीसरे षडह को करते हैं तो १८ दिन हुए, ९ प्राण हैं और ९ स्वर्ग लोक। उनमें वे प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

चौथे षडह को पार करते हैं तो २४ दिन हुए। २४ पक्ष हुए। पक्ष वाले वर्ष को प्राप्त करते हैं और वर्ष में हर पक्ष में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं।

पाँचवें षडह को करते हैं तो ३० दिन हो गये। विराट् में ३० अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। इस तरह ये हर मास में अन्न का लाभ करते हैं।

अन्न की कामना वालों ने सत्र किया। हर महीने विराट् (३० की संख्या) को प्राप्त करके उन्होंने दोनों लोकों में अन्न प्राप्त कर लिया। इस लोक में और उस लोक में भी। २ [१६]

गवामयन सत्र

खण्ड ३ [१७]—अब गवामयन कृत्य करते हैं। गौ आदित्य हैं। अतः गवामयन में आदित्य-अयन भी आ गया। गौओं ने एक बार खुर और सींगों की अभिलाषा से सत्र किया। १० मासों में उनके सींग-खुर निकल आये तो सोचा कि अभिलाषा पूर्ण हुई, अब उठें। अतः गवामयन १० मास का हुआ।

कुछ ने सोचा कि वर्षको पूर्ण कर दें! अतः सत्र जारी रक्खा। अश्रद्धा के कारण उनके सींग नहीं हुए और वे तूपर [ठुंडे] रह गये। वे सब ऋतुओं को समाप्त करके उठे। क्योंकि उन सभीने ऊर्ज प्राप्त किया अतः गौओं को सब प्यार करते हैं और उन को सुन्दर बनाते हैं। इसे समझने वाला सब का प्यारा और सुन्दर होता है।

आदित्यों और अंगिराओं ने स्पर्धा की कि स्वर्ग में प्रथम कौन पहुँचे। आदित्य प्रथम पहुंचे, फिर ६० वर्ष पश्चात् अंगिरा। उनका भी अयन है।

तीनों अयन-सत्रों में समानता है—प्रथम अतिरात्र, फिर २४ वें दिन उक्थ्य होता है। आदित्यायन में सब अभिप्लव षडह आ जाते हैं। अंगिरसों के अयन में पृष्ठ्य षडह भी होते हैं। दोनोंमें दिनों का क्रम बदल जाता है।

अभिप्लव षडह स्वर्ग का सीधा मार्ग और पृष्ठ्य महापथ है। जो दोनों का अवलम्बन करते हैं उन की सभी कामनाएँ बिना हानि के पूर्ण होजाती हैं।

एकविंश सत्र

खण्ड ४ [१८]— अब एकविंश सत्र को करते हैं। यह संवत्सर के मध्य की विषुवत् रेखा है, इसे करके देवों ने सूर्य को आकाश में पहुँचा दिया।

इसके पहले १० दिन और पीछे १० दिन, दोनों ओर विराट् होता है और यह एकविंश [सूर्य] मध्य में दिवाकीर्त्य मन्त्र के दिन निर्विघ्न होता है।

देव डरे कि सूर्य कहीं नीचे-ऊपर न हो जाये। अतः उन्होंने ३-३ लोक नीचे-ऊपर लगा दिये। यज्ञ में ३ स्तोम ही ३ लोक हैं। इस प्रकार ३ सप्तदश स्तोम पहले और ३ बाद में, तथा बीच में एकविंश जिसके इधर-उधर 'स्वरसाम' होते हैं। उन्होंने ३-३ परम स्वर्ग लोकों की भी टेक लगा दी जो स्तोम हैं। यदि सप्तदश स्तोम २-२ बार लिये जायें तो २४ हुए।

सूर्य इन लोकोंके मध्यमें भूत-भविष्यत् में अच्छा अधिक चमकीला अधिष्ठाता होकर तपता है। अतः विषुवान् एकविंश भी सब दिनों में श्रेष्ठ है।

स्वरसाम कृत्य

अब स्वरसामों का कृत्य किया जाता है। ये लोक स्वरसाम हैं क्योंकि देवों ने इनके द्वारा सूर्य को पुष्ट किया (स्पृण्वन्)। वे उसे उन लोकोंमें भाग दिलाते हैं। सूर्य को सुरक्षित रखने के लिए वे उसे नीचे स्तोमों और ऊपर पृष्ठों से घेर देते हैं। प्रथम अभिजित् दिन सब स्तोम और अन्तिम विश्वजित् दिन सब पृष्ठ पढ़े जाते हैं, जिससे वे घिरे रहें।

सूर्य न गिरे अतः देवों ने उसे ५ दिवाकीर्त्य साम रूपी रस्सियों से कस दिया, जिनमें एक महा दिवाकीर्त्य पृष्ठ और शेष साम विकर्ण, ब्रह्म, भास और अग्निष्टोम हैं। दोनों पवमान स्तोत्र बृहत् और रथन्तर हैं जिनसे सूर्य को गिरने न दिया।

सूर्योदय पर प्रातरनुवाक बोले। इस प्रकार सब स्तुतियाँ दिन की हो जाती हैं। सूर्य का प्रदर्शनार्थ प्रतीक पशु यथासम्भव सफेद होना चाहिए।

२१ सामिधेनियाँ बोले क्योंकि यह एकविंश है।

५१ या ५२ शस्त्रमन्त्र पढ़ लेने पर निविद पढ़े। फिर इतने ही मन्त्र और पढ़े। इस प्रकार सौ से अधिक हो गये; मनुष्य की पूर्ण आयु सौ वर्ष है। वह शतवीर्य और शतेन्द्रिय होता है। होता यजमान को भी वैसा ही बना देता है।

५

दूरोहण और हंस-मन्त्र

खण्ड ६ [२०]— अब होता दूरोहण मन्त्र का जप करता है। दूरोहण का अर्थ है सूर्य क्योंकि यह, और जो कोई वहाँ जाना चाहे वह कठिनतासे चढ़ पाता है। दूरोहण का जप करके मानो वह सूर्य तक पहुंच जाता है। अब हंसवाले मन्त्र को पढ़ कर चढ़ता है—

७३८-४०. हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद् वरसद् ऋतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥

(ऋ० ४.४०.५,य० १०.२४, १२.१४)

अर्थ — 'हंसः शुचिषद्' प्रकाश में स्थित यह सूर्य अन्तरिक्ष में बैठने वाला वसु है। वही वेदी में बैठने वाला होता है। वही घर में बैठने वाला अतिथि है। वही मनुष्यों में अच्छे स्थान पर बैठने वाला है। वह सच्चाई में बैठा हुआ है। वह आकाश में बैठा तपता है। वह प्रातः काल जलों में से निकलता और शाम को जलों में घुसता प्रतीत होता है। वह 'गोजा ऋतजा' किरणों और सत्य से उत्पन्न हुआ, अद्रिजा पहाड़ से उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। ऋत अर्थात् सत्य, है।

सूर्य सब कुछ है। यह मन्त्र सूर्य का प्रत्यक्षतम रूप बतलाने वाला है। इसलिये जहां कहीं दूरोहण पढ़ा जाय वहीं हंस वाले मन्त्रके साथ पढ़ा जाय।

तार्क्ष्य मन्त्र

स्वर्ग की कामनावाला तार्क्ष्य मन्त्र से यज्ञ करे—

७४१-४३. त्यमूषु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्। अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥

[ऋ १०.१७८.१,सा ३३२, अ ७.८५.१]

क्योंकि तार्क्ष्य ने मार्ग दिखाया था जब गायत्री सुपर्ण होकर सोम को लायी थीं। जैसे खेत जानने वाले को कोई अगुआ बनाले इसी तरह तार्क्ष्य मन्त्र से दूरोहण को आरम्भ करना है। तार्क्ष्य पवन है जो वहता है और स्वर्गलोक को ले जाता है।

अर्थ— 'देवजूतं वाजिन' देवताओंसे प्रेरित हुआ जो 'सहावान' मजबूत है, 'रथानां तरुतारं' रथों में शीघ्र चलने वाला, 'अरिष्ट नेमि' जिसकी नेमि अच्छी है, जो मनुष्यों को गति देनेवाला है, जो तेज है ऐसे वायु को कल्याण के लिए प्रयुक्त करें।

७४४— इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम। उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतो रिषाम ॥ (ऋ० १०.१७८.२)

जैसे इन्द्रके लिए वैसे ही तार्क्ष्य के लिए बार-बार पुकारते हुए हम नाव के समान यानों में चढ़ें। पृथिवी विस्तृत हो, बहुत गहरे द्यु-पृथ्वी पर हम दुःखी न हों।

७४५— सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान। सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥ ऋ० १०-१७८-३

जैसे सूर्य ज्योति से जल फैलाता है वैसे ही तार्क्ष्य (वायु)अपने बल से ५ लोकों को पार कर सकता है। हजारों शक्तिवाले इसकी चाल तेज बाण के समान है।

खण्ड ७ (२१)—होता आहाव के पश्चात् दूरोहण पढ़ता है। मानो ब्रह्म के सहारे स्वर्ग पाता है। पहले १-१ पद पढ़ कर इस लोक को पाता है। २— आधे आधे मन्त्र से अन्तरिक्ष को पाता है। ३— फिर ३-३ पद मिलाकर पढ़ने से द्यु लोकको पाता है। ४—फिर पूरा मन्त्र बिना रुके पढ़कर सूर्यलोकमें स्थान पाता है। ५—अब ३-३ पद पढ़कर उतरता है, जैसे शाखा को पकड़कर उतरते हैं। इससे द्यौ में प्रतिष्ठित होता है। ६— आधा आधा मन्त्र पढ़ कर अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठा पाता है। ७—पद-पद पर रुक कर फिर इस लोक में प्रतिष्ठा पाता है। जो केवल स्वर्ग चाहे उसके लिए ५-७ तक उतरने का भाग न पढ़ा जाय।

पशु मिथुन हैं,छन्द पशु हैं। इनकी प्राप्ति के लिए त्रिष्टप्-जगती छन्द मिला दिये जाते हैं।

❋ विषुवान् सत्र ❋

खण्ड ८ (२२)—जैसे पुरुष होता है वैसे ही विषुवान् सत्र है। इसका पहला आधा दाहिने बाजू के समान है और पिछला आधा बायें बाजू के समान है। इसीलिये (विषुवान् के बाद छः मास के कृत्य को) उत्तर अर्थात् पिछला भाग कहते हैं।

विषुवान् उस सिर के समान है जिसके दोनों बाजू बराबर हों। पुरुष टुकड़ों टुकड़ों से बना है। इसीलिए ही सिर के मध्य में एक जोड़ है।

इस पर कहते हैं कि एक दिन विषुवत् का पाठ होना चाहिए। यह विषुवान् उक्थ्यों का उक्थ है, भूमध्य रेखा के समान है। ऐसा करने से विषुवान् के समान हो जाता और श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

परन्तु इसको मानना नहीं चाहिए। साल भर तक इसका पाठ होना चाहिए। यह शस्त्र वीर्य है ऐसा करने से यजमान साल भर तक वीर्यवान रहते हैं।

जो बीज पाँच या छः मास में उग आवें वे यदि समय के पहले ही उग आवें तो उनको कोई भोग नहीं सकता। इसी तरह जो बीज दस मास में या एकसाल में उत्पन्न होते हैं उनको भोगते हैं। इसलिए विषुवान् शास्त्र को वर्ष भर पढ़ना चाहिए। यह संवत्सर ही है जो इसको पाते हैं वह संवत्सर को प्राप्त होते हैं। इस के द्वारा वर्ष भर के पाप नष्ट हो जाते हैं। महीनों के सत्रों द्वारा होता और इसे समझनेवाला अपने अंगों से पापों को दूर करता है।

महाव्रत के दिन विश्वकर्मा के प्रतिनिधि रूप (प्रद-नार्थ) एक वृषभ वहाँ लाकर प्रदान करे। यह दोनों ओर दो रंगों का होना चाहिए।

इन्द्र वृत्र को मारकर और प्रजापति प्रजाओं को रच कर विश्वकर्मा हो गया। संवत्सर विश्वकर्मा है। इस प्रकार वे इन्द्र, अपने आत्मा, प्रजापति, संवत्सर और विश्वकर्मा को प्राप्त होते हैं। और इन्द्र में, अपने आत्मा में, प्रजापति में, संवत्सर और विश्वकर्मा में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। जो इस रहस्य को समझता है उसकी प्रतिष्ठा होती है। (२२) —❀—

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेयब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय १८ (चतुर्थ पञ्चिका का तीसरा अध्याय) समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ४ अध्याय ४

द्वादशाह

खण्ड १(२३)—प्रजापतिने चाहा मैं संतान उत्पन्न करके बहुत हो जाऊँ। उसने तप तपा। उसने तपों को तप कर अपने अंगों में द्वादशाह को देखा। उसने अपने अंगों और प्राणों से द्वादशाह को निकाला। और उसको बारह गुना कर दिया। उसको उसने ले लिया और उससे यज्ञ किया। तब वह प्रजापति हुआ। प्रजाओं और पशुओं द्वारा प्रसिद्ध हुआ। जो इस रहस्य को समझता है वह प्रजाओं और पशुओं द्वारा अपने आप को मानों उत्पन्न करता है।

उसने चाहा कि गायत्री से द्वादशाह में समृद्धि प्राप्त करूँ। गायत्री आरम्भ में तेज, मध्य में छन्द और अन्त में अक्षर के रूप में हुई। इस प्रकार उसे व्यापक करके उसने समृद्धि पाई। इसे जाननेवाला समृद्धि पाता है।

द्वादशाह पक्षवाली, आँखोंवाली, ज्योतिष्मती और भास्वती गायत्री ही है-यह जाननेवाला स्वर्ग पाता है।

इसके २ अतिरात्र २ पक्ष, और २ अग्निष्टोम २ आँखें तथा बीच के उक्थ्य आत्मा हैं। इसे समझने वाला ऐसी गायत्री से स्वर्ग (सुव) पाता है। १(२३)

खण्ड २ (२४)—द्वादशाह में ३ त्र्यह (३-३ दिन) १ दशमी और २ अतिरात्र = सब १२ दिन होते हैं। इसमें दीक्षित बनकर यज्ञ-योग्य बनता है। १२ रातों में उपसद करके अपने को शुद्ध करलेता है। इसे जाननेवाला भी शुद्ध होकर देवता बन जाता है।

द्वादशाह ३६ दिनों तक होता है। बृहती में ३६ अक्षर होते हैं। यह बृहती का अयन है। इससे देवों ने सब लोकों को जीता—१०-१० से यह लोक, अन्तरिक्ष, द्यौ, ४ से दिशाएँ, और २ से प्रतिष्ठा। इसे समझने वाला प्रतिष्ठित होता है।

प्रश्न—इसको बृहती क्यों कहते हैं। जब कि अन्य छन्द इससे बड़े और प्रबल हैं?

उत्तर—क्योंकि इससे देवों ने स्वर्ग को जीता था। इसे समझनेवाला उससे सब कामनाएँ पूरी करता है।

खण्ड ३ (२५)—द्वादशाह प्रजापति का किया हुआ पहला यज्ञ है। उसने ऋतुओं और मासों से कहा 'तुम मुझसे द्वादशाह कराओ'। उन्होंने उसे दीक्षा दी और परिक्रमा कराते हुए ऐसा कर दिया कि वहाँ से जाने न पाये। तब कहा— पहले दिलवाओ। उसने उनको अन्न और रस दिया। यही रस ऋतुओं-मासों में निर्धारित है। उसने दिया तब उन्होंने यज्ञ कराया, अतः जो दे सके वही यज्ञ भी कर सकता है।

उससे लेकर ही यज्ञ कराया अतः लेकर ही यज्ञ कराना चाहिए, इस प्रकार दोनों समृद्धि को पाते हैं। ऋतुओं-मासों ने दक्षिणा पाकर अपने को आभारी

अनुभव किया और प्रजापति से कहा— द्वादशाह हमको भी कराइये। उसने स्वीकार कर दीक्षा दी।

प्रजापति-यज्ञ

शुक्ल पक्षों ने पहले दीक्षा ली, अतः वे दिन के समान प्रकाशमें रहते हैं, जैसे पाप छूटनेसे मनुष्य। कृष्ण पक्षों ने पश्चात् दीक्षा ली, अतः वे अन्धकार में रहते हैं। इसे समझने वाला शुक्ल पक्ष में पहले दीक्षा ले और पाप से बचा रहे।

वह प्रजापति-संवत्सर ऋतुओं-मासों में, और वे प्रजापति में, दोनों परस्परमें प्रतिष्ठित हैं। द्वादशाह करानेवाला ऋत्विजों में प्रतिष्ठित होता है अतः वे कहा करते हैं कि कोई पापी द्वादशाह कराने-योग्य नहीं क्योंकि वह उनमें ही प्रतिष्ठित हो सकता है। द्वादशाह ज्येष्ठ-श्रेष्ट के लिए है। इसको करने वाला देवों में ज़्येष्ठ-श्रेष्ठ हो जाता है। पापी को यह यज्ञ नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ऋत्विजोंमें प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

इन्द्र को देवों ने श्रेष्ठ तभी माना जब बृहस्पति ने उसे यह यज्ञ करा दिया। इसे जानने वाला भी श्रेष्ठ माना जाता है।

पहला त्र्यह ऊर्ध्व है (छन्दों का क्रम गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती), अतः अग्नि ऊपर को जाती है। दूसरा त्र्यह तिरछा है (त्रिष्टुप्-जगती-गायत्री) अतः वायु तिरछी बहती और पानी तिरछा बहता है। तीसरा त्र्यह निचला है (जगती-गायत्री-त्रिष्टुप्) अतः सूर्य-नक्षत्र प्रकाश को नीचे फेंकते हैं और मेघ नीचे को बरसता है। तीनों लोक और त्र्यह मिले हुए हैं। इसे जानने वाले को तीनों लोक समृद्धि देते हैं।

खण्ड ४ (२६)— दीक्षा देवों के पास से चली गई, वे उसे वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त के २-२ महीनों में न घेर सके, शिशिर के २ महीनों में घेर लिया, अतः क्षत्रिय इनमें दीक्षा ले। पशु भी इनमें दुर्बल हो जाते हैं। इसे समझनेवाला कामना-पूर्ति करता है और शत्रु उसको नहीं पा सकता।

दीक्षा से पहले वह प्रजापति के लिए पशु प्राप्त करता है और १७ सामिधेनियोंको पढ़ता है क्योंकि प्रजापति १७ भागोंवाला है। इसके आप्रि मन्त्र जमदग्नि के हैं।

प्रश्न— अन्यत्र आप्रि मन्त्र यजमान के गोत्रवाले ऋषि के पढ़े जाते हैं, यहाँ जमदग्नि के क्यों ?

उत्तर— क्योंकि वे सर्वरूप और समृद्ध हैं।

प्रश्न-पशु प्रजापतिका तो वायुका पुरोडाश क्यों?

उत्तर— यज्ञ को बिना भूल के समाप्त करने के लिए। इसके अतिरिक्त वायु ही प्रजापति है —

७४६—पवमानः प्रजापतिः। (ऋ० ९.५.९)

अर्थात् बहनेवाला वायु प्रजापति है।

यदि सत्र के रूप में किया जाय तो सब १६ यजमान ऋत्विज अपनी अग्नियाँ एकत्र कर उनमें यज्ञ करें, सब दीक्षा लें और सोम बनायें। वह वसन्त में समाप्त करता है जो रस है।

खण्ड ५ (२७)— छन्दों ने एक दूसरे का स्थान लेना चाहा। प्रजापति ने देखा कि यज्ञ व्यूळ्हछन्दः हो गया। उसने सँभाला जिससे कामाएँ पूरी हुईं। होता नवीनतार्थ छन्दों का स्थान बदल देता है।

ये दोनों लोक (द्यौ-पृथिवी) पहले मिले हुए थे। फिर अलग हो गये। इससे न वर्षा हुई, न सूरज तपा। पंचजन मेल से न रहे। देवों ने इन लोकों को मिला दिया, इन दोनों ने देवरीति से एक दूसरे के साथ विवाह कर लिया। रथन्तर से पृथिवी द्यौ से और बृहन्-साम से द्यौ पृथिवी से, नौधस साम के द्वारा पृथिवी द्यौ से और श्यैत साम द्वारा द्यौ पृथिवी से, धुयें के द्वारा पृथ्वी द्यौ से और वर्षा के द्वारा द्यौ पृथिवी से जुड़ा है।

पृथ्वी ने द्यौ में देवयजन अर्थात् देवों के यज्ञ के लिये स्थान बनाया और द्यौ ने पृथ्वीमें पशु बनाये।

यह जो पृथ्वी ने द्यौ में देवयजन बनाया यह चन्द्रमा का काला दाग है। इसलिए शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं जिससे चन्द्रमा का काला दाग प्राप्त हो जाय।

द्यौ ने पृथ्वी पर चरने के लिए ऊषा (चारागाह) बनाई। तुरःकाविषेय ने कहा हे जनमेजय पोष क्या और उषा क्या ? इसीलिये गव्य अर्थात् गाय के दूध आदि की चिन्ता करने वाले पूछा करते हैं क्या

वहाँ ऊषा अर्थात् चरने केलिये स्थान है ? क्यों कि ऊषा ही चारा है।

वह लोक इस लोक का ओर झुक गया, इससे द्यौ और पृथ्वी हो गये, अन्तरिक्ष से नहीं हुए।

खण्ड ६ (२८)—पहले बृहत् (मन) और रथन्तर (वाणी) साम थे। बृहत् से क्रमशः वैराज, रैवत, और रथन्तर से वैरूप, शाक्वर साम उत्पन्न हुए। हर पक्ष के ३-३ साम और ६ पृष्ठ हो गये। इसपर तीनों छन्द इन ६ को न पा सके। जब गायत्री से अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् से पंक्ति और जगती से अतिछन्द उत्पन्न हो वे छह ६ पृष्ठों को पा सके।

जो इन छन्दों और पृष्ठों की उत्पत्ति के रहस्य को समझकर इस अवसर पर दीक्षा लेता है उसके लिए और उसके प्रियजनों के लिए यज्ञ कल्याणकारी होता है।

चतुर्थ पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ४, अध्याय ५

वीसवाँ (चतुर्थ पञ्चिका में पंचम) अध्याय

द्वादशाह-प्रथम दिन

पहले दिन का देवता अग्नि, स्तोम त्रिवृत्, साम रथन्तर और छन्द गायत्री है। जो जानता है कि देवता कौन है वह सफल हो जाता है।

'आ' और 'प्र' पहले दिन के रूप हैं। अन्य विशेष यह है कि युक्त, रथ, आशु, पिब शब्द अवश्य आयेंगे। मन्त्रों के पहले पाद में देवताओं का स्पष्ट नाम होगा। पृथ्वी के विषय में कुछ होगा। रथन्तर के समान साम होंगे। गायत्री के लगभग छन्द होगी और कृ धातु के भविष्यत् काल का कोई रूप होगा।

आज्य-सूक्त यह है—

७४७— उप प्र यन्तो अध्वरम्...(ऋ० १.७४)

क्योंकि इसमें पहले दिन का रूप 'प्र' आया है।

प्रउग शस्त्र है— वायवायाहि दर्शत... (ऋ० १.२)

क्योंकि इसमें 'आ' आया है जो प्रथम दिनका रूप है (देखो ५१५) मरुत्वतीय शस्त्रका प्रथम भाग यह है—

आ त्वा रथम्... (देखो ५८४)

७४८— तुवि शुष्म तुवि क्रतो शचीवो विश्वया मते। आ पप्राथ महित्वना ॥

७४९— यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तम् ईयतुः। हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ (ऋ० ८.६८.२-३)

इसका अनुचर या पिछला भाग यह है—

इदं वसो... (देखो ५८८)

७५०— नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परि पूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु ॥

७५१— तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ (ऋ० ८.२.२-३)

इसमें रथ और पिब शब्द आये हैं।

इन्द्र-निहव प्रगाथ वह है—इन्द्र नेदीय...(५९०)

७५२—आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्। प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ (ऋ० ८.५३.५-६)

इसके पहले पाद में देवता का वर्णन है।

ब्राह्मणस्पत्य प्रगाथ यह है—

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः... (देखो ३३४)

७५३—यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः। तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ (ऋ० १.४०.३-४)

इसमें प्र आया है। धाय्या ये हैं—

अग्निर्नेता०, त्वं सोम०, पिन्वन्त्यपः० (५९३-५९५)

इनके पहले पाद में देवताओं का नाम आया है।

मरुत्वतीय प्रगाथ यह है—

प्र व इन्द्राय०, (देखो ५९६)

७५४—अभि प्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्

बृहन् । अर्वन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ (ऋ० ८.८६.४)

इसमें 'प्र' आया है । निविद् सूक्त यह है—

आ यात्विन्द्रो वस उप न इह....(ऋ० ४.२१)

इसमें 'आ' है । रथन्तर पृष्ठ यह है—

अभि त्वा शूर .... (देखो ७२१)

७५५ — न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ [ऋ० ७.३२.२२-२३]

७५६— अभित्वा पूर्वपीतय इन्द्रस्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥

७५७— अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ (ऋ० ८.३.७-८)

यह रथन्तर पृष्ठ है, यह पहले दिन का रूप है ।

धाय्य यह है —

यद् वावानपुरुतमं पुराषाड् ....[देखो ६०७]

इसमें 'आ' आया है । साम प्रगाथ यह है —

७५८— पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः । आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥

७५९— भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये । अस्मान् चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ [ऋ० ८.३.१-२]

इसमें पिब शब्द आया है । तार्क्ष्य है —

त्यमूषु वाजिनं देवजूतम् ० (देखो ७४१)

यह निविद् सूक्त के पहले पढ़ा जाता है ।

तार्क्ष्य कल्याणके लिये है । जो इसको समझता है वह अपना वर्ष कल्याणपूर्वक व्यतीत करता है ।

खण्ड ३०— निष्केवल्य शस्त्र का निविद सूक्त—

७६०— आ न इन्द्रो दूरादा न आसात्०(ऋ.४.२०)

इसमें 'आ' आया है । निष्केवल्य-मरुत्वतीय शस्त्रों के निविद सम्पात कहाते हैं जिनसे वामदेव ने तीनों लोकों को जाना । पहले दिन सम्पात पढ़ने से स्वर्ग (सुख) की प्राप्ति का लाभ होता है ।

प्रथम रथन्तर दिनके वैश्वदेव शस्त्रका प्रतिपद—

७६१— तत्सवितुर्वृणीमहे वय देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥

शस्त्रों के निविद सम्पात

७६२—अत्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥

७६३—स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ (ऋ० ५.८२.१-३)

इसका अनुचर (पिछला भाग) यह है—

७६४—अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥

७६५—विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ॥

७६६— अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ (ऋ० ५.८२.४-६)

यह रथन्तर पहले दिन का रूप है ।

सविता का निविद सूक्त 'युञ्जते मन उत युंजते' [ऋ० ५.८१] है । इसमें युज शब्द पड़ा है ।

द्यावा-पृथिवी का निविद सूक्त 'प्र द्यावा यज्ञैः' [ऋ० १.१५९] है, इसमें प्र शब्द आया है ।

ऋभुओंका निविद सूक्त 'इहेह वो मनसा'(३ ६०) इह का अर्थ है यह लोक जिसे यजमान भोगता है ।

वैश्वदेव का निविद सूक्त यह है —

७६७— देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये (ऋ १०.६६)

इसके पहले पाद में देवताओं का वर्णन है ।

द्वादशाह संवत्सर यज्ञ करनेवाले जब बड़ी लम्बी यात्रा पर जाते हैं तब यह सूक्त पढ़ा जाता है । इस को समझने वालों और इसे होता से पढ़ानेवालों का कल्याण होता और वर्ष अच्छी तरह पूर्ण होता है ।

अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपद यह है—

७६८— वैश्वानराय पृथु पाजसे विपः [ऋ० ३.३]

इसके पहले पाद में देवता का उल्लेख है ।

मरुतों का निविद यह है —

७६९— प्रत्वक्षसः प्र तवसो विरप्शिनः [ऋ १.८७]

इसमें प्र है । जातवेद सूक्त से पहले का मन्त्र—

७७०—जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ [ऋ० १.९९.१]

यह मन्त्र पाठक और यजमानके कल्याणके लिए है ।इसे समझनेवाले का वर्ष कल्याण से बीतता है ।

जातवेद का निविद सूक्त यह है—

७७१—प्रतव्यसीं नव्यसीं इत्यादि ऋ० १.१४३ इसमें प्र आया है।

अग्नि-मारुत शस्त्र वही है जो अग्निष्टोम का। जो यज्ञमें समान किया जाये उसीपर प्रजा जीतीहै।

द्वादशाह—दूसरा दिन

खण्ड ३(३१)—दूसरे दिन का देवता इन्द्र, स्तोम पंचदश, साम बृहत्, छन्द त्रिष्टुप् हैं। देवता, स्तोम, साम और छन्द जानने वाला सफल होता है।

दूसरे दिन प्र और आ नहीं आते, रथ आता है।

ऊर्ध्व, प्रति, अन्तः, वृषण, वृधन्— ये शब्द तथा दूसरे पाद में देवता का उल्लेख, अन्तरिक्ष की ओर संकेत तथा वर्तमान काल—ये दूसरे दिनके रूप हैं।

दूसरे दिन का आज्य-सूक्त—

७७२—अग्निं दूतं वृणीवहे० [ऋ० १.१२]

इसमें वर्तमान काल आया। प्रउग शस्त्र —

७७३—वायो ये ते सहस्रिणः० [ऋ २.४१]

इस सूक्त के चौथे मन्त्र में 'वृधन्' आ गया।

मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद् —

७७४—विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः। एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम्॥

७७५—अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं मरः। नाना हवन्त ऊतये॥

७७६—परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद् वसूनाम्॥ [ऋ ८.६८.४-६]

इसका अनुचर यह —

७७७—इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः। अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च॥

७७८—न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्। अपस्पृण्वते सुहार्दम्॥

७७९—गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते। अभित्सरन्ति धेनुभिः॥ [ऋ० ८.२.४-६]

इनमें वृधन् और अन्तः शब्द आये हैं।

इन्द्र-निहव प्रगाथ—इन्द्र नेदीय...(सं० ५६०)

ब्रह्मणस्पति का प्रगाथ—उत्तिष्ठ...[सं० ३२३]

यहाँ उत्तिष्ठ ऊर्ध्व के अर्थ में है।

धाय्या वे ही—अग्निर्नेता, त्वं सोम, पिन्वन्त्यपः [सं० ५६२-५९४]। मरुत्वतीय प्रगाथ ये हैं—

७८०—बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि॥

७८१. अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाऽथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥ [ऋ ८.८९.१-२]

यहाँ ऋतावृधः में वृधन् शब्द आ गया।

मरुत्वतीय शस्त्रका निविद सूक्त—

७८२—इन्द्र सोमं सोमपते [ऋ ३.३२]

यहाँ दूसरे मन्त्र में वृषस्व शब्द आया।

बृहत् पृष्ठ यह है—

७८३—त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥

७८४—सत्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः। गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥ [ऋ० ६.४६.१-२]

७८५—त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥

७८६—त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे। आपुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे॥ [ऋ० ८.६१.७-८]

यह बार्हत दूसरे दिन का होता है।

निष्केवल्य शस्त्र की धाय्या- यद्वावान० [६०७]

साम प्रगाथ-७८७. उभयं शृणवच्च व इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥

७८८—तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः। उतोपमानां प्रथमो निषीदसि सोमकामं हि ते मनः॥ [ऋ० ८.६१.१-२]

उभय का अर्थ- जो आज और कल रहे। यह बृहत् साम का प्रगाथ हुआ। तार्क्ष्य- त्य मूषु० [७४१]

खण्ड ४ [३२] —निष्केवल्य शस्त्रका निविद—

७८९—या त ऊतिरवमा या परमा० (ऋ० ६ २५)

यहाँ वृष्ण्यानि शब्द दूसरे दिन का आया।

वैश्वदेव शस्त्र का प्रतिपद् यह है—

७९०—विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे॥ऋ५.५०.१

७६१-- तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्र चोदयात् ॥
७६२— देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या ।
भगस्य रातिमीमहे ॥ [ऋ ३.६२.१०-११]

इसके अनुचर ये हैं-- आ विश्वदेवं ० (देखो ६०)

७६३— य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥ [ऋ ५.८२.८]

य इमा विश्वा जातानि इत्यादि (देखो सख्या ६१]
ये बृहत् दूसरे दिन के हैं ।

सविता का निविद यह है—

७६४—उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया० [ऋ ६७१]
यहाँ उत् शब्द ऊर्ध्व के अर्थ में है ।

द्यावापृथिवी का निविद् सूक्त–ते हिं द्यावा० (७२५) इसमें 'अन्तः' शब्द आया । ऋभुओंका निविदसूक्त तक्षन्रथं सुवृतम्० [संख्या ६१५] में 'वृषन्' आया ।

वैश्वदेव निविद् सूक्त यह है—

७६५–यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्--ऋ १०.९२

इसके चतुर्थ पाद में वृषन् शब्द आया है । इस का ऋषि शार्यात है । जब अङ्गिरा सुख पानेके लिए सत्र कर रहे थे तब षडह के दूसरे दिन का कृत्य करने में भूल कर जाते थे । मनु के पुत्र शार्यात ने यह सूक्त पढ़वाया जिससे वे यज्ञको जान गये । इसे होता दूसरे दिन इसलिए पढ़ता है कि यज्ञका ज्ञान हो जाय और सुख प्राप्त हो ।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है-

६६६-- पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः [ऋ ६.८]
यहाँ वृषन् शब्द आया है

अग्नि-मारुत शस्त्र में मरुतों का निविद सूक्त--

७९७-- वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे [ऋ १.६४]
यहाँ वृषन् शब्द आया है ।

जातवेद मन्त्र वही 'जातवेदसे सुनवाम'० [७७०]

जातवेद का निविद सूक्त यह है—

७९८-- यज्ञेन वर्धत जातवेदसम् [ऋ० २.२]
इसमें 'वृध' दूसरे दिन का रूप है । ४(३२)

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम.ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की चौथी पञ्चिका का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

———❀———

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ५, अध्याय १

अध्याय २१

द्वादशाह का तीसरा दिन

खण्ड १–तीसरे दिनका देवता विश्वेदेवाः, स्तोम सप्तदश, साम वैरूप, छन्द जगती हैं । इन्हें जानने वाले का यज्ञ सफल हो जाता है ।

तीसरे दिन का रूप— समान समाप्तिः अश्व, अन्त; पुनरावृत्ति, पुनर्निनृति, रति, पर्यस्ति, ३ की संख्या, अन्त का रूप, पिछले पाद में देवता-निर्देश, दूसरे लोक की ओर संकेत और भूतकाल क्रिया ।

तीसरे दिन का आज्य शस्त्र यह [ऋ.८.७५] है—

७९९– युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीँ इव ।

तीसरे दिन देव स्वर्गको चलपड़े; असुरोंने रोका तब देवों ने कहा– विरूप हो जाओ । जब वे विरूप होने लगे तो देव स्वर्ग को चले गये, तब वैरूप साम उत्पन्न हुआ । जो पापसे कुरूप हो गया हो वह इस को समझ कर पाप से छूट जाता है ।

असुरों ने फिर सताया । देवों ने अश्व बनकर अपनी टापों से उनको मार दिया । अतःएव उनका नाम अश्व पड़ा । इसका ज्ञाता समृद्धि पाता है । अश्व पशुओंमें तेज होते हैं, अतः ३य दिन अश्व है ।

प्रउग शस्त्र में आगे के ३-३ मन्त्रों के ७ भाग हैं–
(१)८००– वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः॥
८०१– इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः॥
८०२– सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः।
निम्नं न यन्ति सिन्धवो अभिप्रयः॥[ऋ ५.५१.५-७]
(२)८०३–वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्।
वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे॥
८०४– त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे।
ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना॥
८०५–स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः।
कृधि वाजाँ अपो धियः॥[ऋ ८.२६.२३-२५]
(३)८०६–आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये॥
८०७– व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये॥
८०८– मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये॥[ऋ ५,७२.१-३]
(४)८०९–अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप॥
८१०–अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम्।
हंसाविव पततमा सुताँ उप॥
८११– अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये।
हंसाविव पततमा सुताँ उप॥[ऋ ५.७८.१-३]
(५)८१२—आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥
८१३–वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥
८१४–वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम॥[ऋ ५.४०.१-३]
(६)८१५–सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः।
आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण॥
८१६–सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण॥
८१७—सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण॥[५.५१.८-१०]
(७)८१८-१९–उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।
सरस्वती स्तोम्या भूत्॥ [साम १४६१]
८२०— आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम्।
सरस्वती निदस्पातु॥
८२१–त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती।
वाजे वाजे हव्या भूत्॥[ऋ ६.६१.१०-१२]
ये सब उष्णिक् छन्द में प्रायः समानोदर्क हैं।
मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद् यह है–
८२२–तन्तमिद् राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः॥
८२३–न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः।
नकिः शवांसि ते नशत्॥
८२४– त्वोतासस्त्वा युजाऽप्सु सूर्ये महद्धनम्।
जयेम पृत्सु वज्रिवः॥[ऋ ८.६८.७-९]
इसका अनुचर–
८२५– त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य।
स्वे क्षये सुतपाव्नः॥
८२६–त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः।
समाने अधिभार्मन्॥
८२७– शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य॥ [ऋ ८.२.७९]
इसमें नृतुः और त्रयः शब्द आये हैं।
इन्द्र-निहव प्रगाथ वही-- इन्द्र नेदीय(सं० ५९०)।
ब्रह्मणस्पति प्रगाथ यह है--
८२८-२९– प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥ [य ३४-५७]
८३० तमिद्वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत्॥ [ऋ १.४०.५-६]
इसमें स्वरों की समानता है। धाय्या वही है--
अग्निर्नेता०,त्वं सोम०, पि-वन्त्यपो० (सं०५९२-९४)।
मरुत्वतीय प्रगाथ यह है-
८३१--- नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे॥
[ऋ ७.३२.१०]
इस मन्त्र में पर्यास है। मरुत्वतीय शस्त्र निविद्-सूक्त है---८३२. त्र्यर्यमा मनुषो देवताता [ऋ ५.२९]।
इसमें त्रि शब्द है। यह तीसरे दिन का रूप है।

द्वादशाह-तीसरा दिन

तीसरे दिन के वैरूप पृष्ठ ये हैं—

८३३-३७.यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥ (साम २७८, ८६२; अ २०.८१.१, ९२.२०)

८३८-४१. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिँ शित्राभिरूतिभिः॥(ऋ० ८.७०.५-६,सा०८६३ अ २०.८१.२, ९२.२१)

८४२-४५. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय॥

८४६-४८.शिक्षेयमस्मिन् महयते दिवे दिवे राय आ कुहचिद्विदे। तहि त्वदन्यन् मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न॥ (ऋ. ७.३२.१८-१९, सा ३१०, १७९६-९७, अ २०.८२.१-२)

धाय्य वही है –यद्वावान। देखो६०७ 'अभित्वा शूर नोनुम' (ऋ० ७।३२।२२-२३) पढ़कर इस दिन की योनि को फेर देता है। क्योंकि यह दिन क्रम के अनुसार रथन्तर दिन है, और रथन्तर साम इसकी योनि है।

साम प्रगाथ यह है —

८४९-५१. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥ (साम २६६, अ० २०.८३.१)

८५२-५३. ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभि प्रघ्नन्ति धृष्णुया। अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव॥ [ऋ ६.४६.९-१०अ २०.८३.२,]

इसमें त्रि शब्द आया है। यह तीसरे दिन का रूप है। तार्क्ष्य वही है अर्थात् त्यमूषु वाजिनं ... (ऋ० १०.१७८) (१)

खण्ड २—निविद यह है —

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् (ऋ० २.१२)

इसमें समानोदर्कता है। [अर्थात् 'सजनास इन्द्र' आता है]समानोदर्कता तीसरे दिन का रूप है।

इसमें 'स जन' और 'इन्द्र' शब्द आये हैं। इसके पढ़ने से इन्द्र को इन्द्रिय शक्ति प्राप्त होती है। इसलिये साम गाने वाले लोग कहते हैं कि ऋग्वेदी इन्द्र की शक्ति की प्रशंसा करते हैं। इसका ऋषि गृत्समद है। इस सूक्त से गृत्समद ने इन्द्र के प्रिय धाम को पाया। इसने परम लोक को जीत लिया। जो इस रहस्य को समझता है वह इन्द्र के परम-धाम को पाता है और परम लोकको जीत लेता है।

वैश्वदेव के प्रतिपद् और अनुचर ये हैं —

तत्सवितुर्वृणीमहे० ... देखो सं० ७६१।

अद्या नो देव सवितः० „ ७६४।

सविता का निविद सूक्त यह है —

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महत्० [ऋ० ४.५३]

इसमें 'महत्' शब्द आया है। अन्त महान् है। तृतीय दिन अन्त है इसलिए वह तीसरे दिन का रूप है। द्यावा पृथिवी का निविद सूक्त है—

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा। [ऋ० ६.७०.४]

इसमें तीन शब्द आये हैं, घृतश्रिया, घृतपृचा, घृतावृधा'। यहाँ घृत शब्द की पुनरावृत्ति हुई है, और अन्त में 'आ' तीन बार आया है। यह पुनरावृत्ति और निनृति तीसरे दिन के रूप हैं।

ऋभुओं का निविद सूक्त यह है —

'अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो ३ रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः।' [ऋ० ४.३६]

इसमें 'रथस्त्रिचक्र' में 'त्रि' शब्द आ गया। यह तीसरे दिन का रूप है।

वैश्वदेव का निविद सूक्त यह है —

परावतो ये दिधिषन्त आप्यम्। [ऋ० १०.६३]

'परावत' =दूर में तीसरे दिन का रूप है।

यह 'गय' सूक्त है। इससे 'प्लत के पुत्र 'गय' ने देवों के परम धाम को पाया। जो इसे समझता है वह देवों के प्रियधाम को पाता है।

अग्नि-मारुत शस्त्रका प्रतिपद्(आरम्भ)यहहै—

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे [ऋ० ३.२]

धिषणा में अन्त है यह तीसरे दिन का रूप है।

मरुतों का निविद सूक्त यह है —

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो [ऋ० २.३४]

इसमें बहुतों का वर्णन है, यह तीसरे दिनका रूपहै।

जातवेद मन्त्र यह है —

जातवेदसे सुनवाम (ऋ० १.६६.१) देखो ७७० ।

जातवेद का निविद सूक्त यह है —

८६०–त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा (ऋ० १.३१)

यहाँ हर मन्त्र से पहले 'त्वमग्ने' आता है । यह उदर्क है । यह तीसरे दिन का रूप है ।

'त्वं त्वं' बार बार कहने से अगले ३ दिनों (४थे, ५वें, ६ठें) से तात्पर्य है । जो इस बात को समझ कर यह पाठ करते हैं , उनके त्र्यह बिना किसी विघ्न के निरन्तर समाप्त हो जाते हैं । (२)

खण्ड ३ — तीसरे दिन सब स्तोम समाप्त हो जाते हैं और सब छन्द भी । केवल एक चीज बच रहती है केवल 'वाक्' ।

वाक् एक अक्षर है । इसमें ३ अक्षर सम्मिलित हैं । अगले त्र्यह में ३ दिन होते हैं । यह ३ अक्षर ये हैं एक वाक्, एक गौ, एक द्यौ । इसलिये चौथे दिन का देवता 'वाग्' ही है ।

चौथे दिन इसी अक्षर का न्यूंख बनाते हैं । इसके स्वर को कुछ घटा बढ़ा कर । यह चौथे दिन को उठाने के लिए । न्यूंख अन्न है । अन्न के लिये गायक लोग इधर-उधर फिरते हैं और अन्न उत्पन्न होता है । चौथे दिन न्यूंख कृत्य करके अन्न उत्पन्न करते हैं । चौथा दिन जातवद्(उपजाऊ) होता है ।

कुछ लोग कहते हैं कि ४ अक्षरका न्यूंख करना चाहिए क्योंकि पशुओं के ४ पैर होते हैं और यह सब पशुओं की वृद्धि के लिये किया जाता है ।

कुछ कहते हैं कि ३ अक्षरों से न्यूंख करे । तीन लोक हैं । यह ३ लोकों की प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

कुछ कहते हैं एक अक्षरका न्यूंख करे । मुद्गल के पुत्र लांगलायन ब्राह्मण ने कहा कि वाग में एक ही अक्षर है इसलिये जो एक अक्षर से न्यूंख करता है वही ठीक करता है ।

कुछ कहते हैं कि दो अक्षरों से न्यूंख करे, प्रतिष्ठा केलिये । मनुष्य के दो पैर हैं और पशु के चार, इससे वह मनुष्यों को पशुओंमें प्रतिष्ठित करता है । इसलिये दो अक्षरों से न्यूंख करे । पहले प्रातरनुवाक में न्यूंख होता है । क्योंकि पशु पहले मुँह से खाते हैं । इस प्रकार वह यजमान के मुंह को अन्न की ओर फेर देता है ।

आज्य शस्त्र में न्यूंख मध्य में होता है । प्रजा अन्नको बीचमें ले लेती है । बीचमें अन्नको यजमानमें धारण कराता है दोपहर के सवन में न्यूंख आरंभ में किया जाता है क्योंकि पशु मुँह से खाना खाते हैं । इस प्रकार वह यजमान के मुँह को अन्न की ओर फेर देता है । इस प्रकार दोनों सवनों में अन्न की प्राप्ति के लिये न्यूंख करता हैं । [३]

द्वादशाह चौथा दिन

४— चौथे दिन का देवता वाक् है । स्तोम एकविंश है । वैराज साम है । अनुष्टुप् छन्द है । जो यह जानता है कि देवता कौन है, स्तोम कौन हैं, साम कौन और छन्द कौन है उसका यज्ञ सफल होता है ।

'आ' और 'प्र' चौथे दिनके रूप हैं । जो पहले दिन के रूप हैं वही चौथे दिन के, जैसे — रथ , युक्त, आशु और पिब । पहले पद में देवता का स्पष्ट निर्देश है , इस लोक का उल्लेख । चौथे दिन के अन्य रूप ये हैं — जात , हव, शुक्र वाक् का रूप, विमद , विरिफित , विच्छन्द (भिन्न-भिन्न छन्द) जिसमें अक्षर कम या अधिक हों , वैराज और अनुष्टुप् , और भविष्य काल की क्रिया ।

चौथे दिन का आज्य सूक्त यह है—

८६१–अग्निं न स्ववृक्तिभिः [ऋ १०.२१]

इसका ऋषि 'विमद' है और सूक्त के हर मन्त्र में 'वि वो मदे' आता है । यह चौथे दिन का रूप है इसमें ८ ऋचा हैं और पंक्ति छन्द है । यज्ञ ५ हिस्से वाला होता है । पशु भी ५ हिस्सेवाले हैं, यह पशुओं की प्राप्ति के लिए किया जाता है ।

मन्त्र १ और ८ को ३–३ बार पढ़ने से ४८० अक्षरों के इन ८ मन्त्रों के १० जगती होते हैं, क्योंकि मध्य के त्र्यह [४थे, ५वें, ६ठें दिन] का प्रातः सवन जगती में होता है । यह चौथे दिनका रूप है ।

इन ८ मन्त्रों के १५ अनुष्टुप् हैं यह दिन अनुष्टुप् का है । ये चौथे दिन के रूप हैं ।

इन में २० गायत्री होते हैं । क्योंकि यह फिर आरम्भ का दिन है । यह चौथे दिन का रूप है ।

इसके साथ न तो स्तुति है, न प्रशस्ति। तथापि यह साक्षात् यज्ञ है इसलिये यह चौथे दिन का आज्य होता है।

इस प्रकार वह यज्ञ से यज्ञ को तानते और वाग् को प्राप्त करते हैं। यह काम संतति के लिये किया जाता है। जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करते हैं वह त्र्यह में निर्विघ्न संतति (सिलसिले) को प्राप्त होते हैं।

अनुष्टुप् प्रउग

८६२. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु।
आ याहि सोम पीतये स्पार्हो देव नियुत्वता॥
[ऋ० ४.४७.१]

८६३. विहि होता अवीता विपो न रायो अर्यः।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये॥
[ऋ०४.४८.१]

८६४. वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा॥
[ऋ० ४.४८.५]

८६५. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक्॥

८६६. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये॥

८६७. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम्॥
[ऋ० ४.४७.२-४]

८६८. आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋत पेशसे दधीत प्रयसे महे॥

८६९. ता हि क्षत्रमविहु्तं सम्यगसुर्यमाशाते।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्णधायि दर्शतम्॥

८७०, ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे॥
[ऋ० ५.६६.१-३]

८७१. आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि। वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र॥

८७२. एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीऽवात्यो न वाजयन्नधायि। इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः॥

८७३. एवा म इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम। इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ [ऋ० ७.२४.४-६]

८७४. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम्॥

८७५. यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः॥

८७६. तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः॥
(ऋ० ६.४४.४-६)

८७७. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥

८७८. ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि ष:॥

८७९. यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा॥
(ऋ० ६.५१.१३-१५)

८८०. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥

८८१. त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥

८८२. इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति॥ [ऋ० २.४१.१६-१८

इनमें 'आ' 'प्र' और 'शुक्र' आया है। यह चौथे दिन का रूप है।

८८३. तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम्॥
[ऋ० ८.६८.१०]

यह मारुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद् है। 'ईमहे' से तात्पर्य है कि आज का कृत्य लम्बा हो जाय। यह चौथे दिन का रूप है। नीचेके मन्त्र जो पहले दिन पढ़े जाते हैं चौथे दिन भी काम आते हैं —

इदं वसो सुतमन्धः [ऋ०८.२५.१२] [देखो५८७]
इन्द्र नेदीय [ऋ ८.५३.५] [देखो ५९०]
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः]ऋ० १.४०.३] (,, ३३४)

अग्निर्नेता [ऋ० ३.२०.४] देखो ५६२
त्वं सोम क्रतुभिः [ऋ० १.६१.२] देखो ५९३
पिन्वन्त्यपो (ऋ० १.६४.६) ,, ५६४
प्र व इन्द्राय (ऋ ८.८९.३) ,, ५६६

यह चौथे दिन का है।

८८४. श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्। इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥ ऋ २.११.१

इसमें हव शब्द आया है।

८८५. मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो....(ऋ ३.४७) के ५म मन्त्रमें हुवम आया है, जो त्रिष्टुप् छन्दमें चौथे दिन का रूप है। इसके पदोंसे सवन स्थापित रखता है।

८८६. इमं नु मायिनं हुवे (ऋ ८.७६.१) में 'हुव' आया है। इनका छन्द गायत्री है जो इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक है, क्योंकि इसमें निविद है।

आगे के मन्त्र बृहत् दिनों के वैराज पृष्ठ हैं—

पिबा सोमं.... (देखो ६०८)

८८७. श्रुधी हवं.... (ऋ ७.२२.४-५)

चौथा दिन बृहद्दिन है

धाय्या वही—यद् वावान... (देखो ६०७)

त्वामिद्धि... (देखो ७८३) वह बृहन् की योनि है उसकी ओर लौटाता है। क्रम के अनुसार बृहत् साम दिन है।

साम-प्रगाथ वही है—८८८. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु... (ऋ ८.९६.५)इसमें आया 'जनिता' दिन ४ का है।

तार्क्ष्य वही है— त्यमूषु वाजिनं... (देखो ७४१)

खण्ड ५— विमदसम्बन्धी विरिफित (न्यूंख)

८८९- सूक्त—कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य (ऋ१०.२२)

८९०. युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराजः (ऋ ६४६)

इस सूक्त के चौथे मन्त्र में 'अनुपाभ्युपं' में 'अनुपा' जा धातु का बना आया है। छन्द त्रिष्टप् हैं।

८९१. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। ऋ ८.९२.७

यह पर्याप्त है— प्रतीत होता है कि दिन का कृत्य बढ़ना है। गायत्री छन्द में निविद चौथे दिन का है।

वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद् और अनुचर ये हैं—

विश्वो देवस्य नेतुः, तत्सवितुर्वरेण्यम्, आ विश्वदेवं सत्पतिम्...(देखो ७९०, ७९१ और ९०)

सविता का निविद सूक्त यह है—

सविता का निविद सूक्त यह है—

८९२.आ देवो यातु सविता सुरत्नः। इसमें 'आ' है।

द्यावा-पृथिवी का निविद सूक्त यह है—

८९३. प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः। इसमें प्र है।

ऋभुओं का निविद सूक्त यह है—

८९४. प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्ये...

इसमें प्र और वाचमिष्ये चौथे दिन का रूप है।

विश्वेदेवों का निविद सूक्त यह है—

८९५. प्र शुक्रं तु देवी मनीषा... इसमें प्र और शुक्र है। छन्द द्विपदा और चतुष्पदा भिन्न-भिन्न हैं।

अग्नि-मारुतशास्त्र का प्रतिपद् यह है —

८९६. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ [ऋ १.९८]

इसमें आया जात शब्द चौथे दिन का रूप है।

मरुतों का निविद सूक्त यह है—

८९७. क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा-स्वश्वाः। नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्॥ (ऋ ७.५६)

इसमें जात शब्द आया है, छन्द विभिन्न हैं।

जातवेद मन्त्र वही—जातवेदसे सुनवाम [७७०]

जातवेद का निविद सूक्त यह है—

८९८. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्। (ऋ ७.१)

इसमें जनयन्त शब्द आया है, छन्द विराट् और त्रिष्टुप् भिन्न-भिन्न हैं। यह चौथे दिन का रूप है।

—❀—

पञ्चम पञ्चिका का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ५, अध्याय २

बाईसवाँ (पञ्चम पञ्चिका में द्वितीय) अध्याय

द्वादशाह-पंचम दिन

खण्ड ६—पंचम दिन का देवता गौ, स्तोम त्रिणव, साम शाक्वर, छन्द पंक्ति हैं। इनके ज्ञाता का यज्ञ सफल होता है।

जिसमें आ और प्र न हों, तथा जो 'स्थित' हो वह और दूसरे दिन के ऊर्ध्व, प्रति, अन्तः, वृधन्, वृधन्; बीच के चरण में देवता का निर्वचन और अन्तरिक्ष का उल्लेख—ये पंचम दिन के रूप हैं। ये विशेषता भी हैं—

दुग्ध, ऊध, धेनु, पृश्नि, मद, पशुओं का रूप और अध्यास (घटना बढ़ना) क्योंकि पशु बड़े छोटे होते हैं। पाचवाँ दिन जगत् से सम्बन्ध रखता है। पशु जगत् (चलता फिरता) है, यह बार्हत भी है क्योंकि वृहती छन्द पशुओं का है; पांक्त भी हैं क्योंकि पशु पंक्ति छन्द से सम्बन्ध रखते हैं यह 'वाम' है क्योंकि पशु उलटे हैं, यह हविष्मत् है क्योंकि पशु हवि हैं, यह वसुमत् हैं क्योंकि पशुओं का वसु है, दूसरे दिन के समान वर्तमान काल है। ये पंचम दिन के रूप हैं।

इसका आज्यशस्त्र जगती तथा अन्य छन्दोंमें यह है—

८९९. इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधम्। ऋ ६.१५

प्रउग शस्त्र के मन्त्र

९००. आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः।
अन्तःपवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥

९०१. वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये।
अधा नियुत्व उभयस्य नःपिब शुचि सोमं गवाशिरम् ॥
(ऋ ८.१०१.९-१०)

९०२. आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे।
वयं हि ते चकृमा भूरिदावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥
(ऋ ८.४६.२५)

९०३. रथेन पृथु पाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम्।
इन्द्रवायू इहागतम् ॥

९०४. इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा।
पिबतं दाशुषो गृहे ॥

९०५. इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम्।
इह वां सामपीतये ॥ (ऋ ४.४६.६-७)
बहवः सूरचक्षसो... [देखो ७२६]

९०६. वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥

९०७. तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥
ऋ ७.६६.१०-१२

९०८. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥

९०९. युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नियच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥

९१०. आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥
[ऋ ७-७४-१-३]

पिबा सुतस्य रसिनो ...... (देखो ७५८)
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयम् [७५९]

९११— इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥
[ऋ ८-३-१-३]

९१२— देवन्देवम् वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥

९१३. देवासो हि्ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥

९१४— प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उप श्रुतीनाम्।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥
[ऋ ८-२७-१३-१५]

९१५— बृहदु गायिषे वचो ऽसुर्या नदीनाम्।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥

९१६. उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥

९१७. भद्रमिद् भद्रा कृणवन् सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती । गृणाना जमदग्निवन् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ (ऋ ७.९६.१-३)

पंचम दिन—मारुतीय शस्त्र

मारुतीय शस्त्र का प्रतिपद् यह है—

९१८— यत् पांचजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत । अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ (ऋ ८-६३-७)

इससे आया पांचजन्य पंचम दिन का रूप है ।

मरुत्वतीय शस्त्रके आतान दूसरे दिनके समान हैं—

इन्द्र इत् सोमपा एक...	[देखो संख्या ७७७]
इन्द्र नेदीय एदिहि...	५६०
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ..	३२३
अग्निर्नेता...	५६२
त्वं सोम क्रतुभिः...	५६३
पिन्वन्त्यपो	५६४
बृहदिन्द्राय गायत...	७८०

९१९. अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः... (ऋ ८.३६)

इस सूक्त में मद शब्द है, पहले मन्त्रमें ५ पाद हैं और पंक्ति छन्द है ।

९२०— इत्था हि सोम इन्मदे... (ऋ १.८०)

इसमें भी मद शब्द, ५ चरण, पंक्ति छन्द है।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदाय... (देखो ६९४)

इसमें भी मद शब्द और त्रिष्टुप् छन्द है ।

इस प्रतिष्ठित पद से सवन की प्रतिष्ठा होती है ।

नीचे का तृच पर्यास है—

९२१— मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोम शतक्रतो । अस्मिन् यज्ञे पुरुष्टुत ॥

९२२— तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥

९२३. पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥ (ऋ ८-७६.७-९)

इसमें न प्र हैं न आ । गायत्री छन्द है जो इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक निविद है । १ (६)

खण्ड २ (७)— पाँचवाँ दिन रथन्तर साम का है । उस दिन शाक्वर स्वर से महानाम्नी का पाठ होता है । इन्द्र ने उनसे अपने को महान् बनाया, अतः उनका नाम महानाम्नी पड़ा । ये लोक भी बड़े होने से महा-नाम्नी हैं । प्रजापति में उनको बनाने की शक्ति थी, उसने यह सृष्टि रचकर उसमें सब शक्तियाँ दीं, उससे शक्वरी उत्पन्न हुई अतः इनका नाम शक्वरी है । इनको 'सिमा' भी कहते हैं क्योंकि ये ऋग्वेद की सीमा से बाहर हैं और नौ अर्धर्चों से तीन महा-नाम्नी बनायी जाती हैं ।

निष्केवल्य शस्त्र के 'अनुरूप' ये हैं—

९२४. स्वादोरित्था विषूवत... (ऋ १.८४.१०)

९२५. उप नो हरिभिः सुतम्... (८.९३.३१)

९२६. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्... (१.११.१)

इनमें वृषन्, वृष्णिः, मद और वृधन् आये हैं ।

धाय्या वही— यद् वावान... (देखो ६०७)

क्रमानुसार रथन्तर-दिन होने के कारण "अभि त्वा शूर नोनुनो...' (देखो ७२१) पढ़कर होता रथन्तर की योनि की ओर लौटाता है ।

९२७— मो षु त्वा वाघतश्चन... (७,३२.१-२)

यह साम-प्रगाथ है जिसमें एक चरण अधिक है ।

तार्क्ष्य वही— त्यमूषु वाजिनम्... (देखो ७४१)

खण्ड ३ [८]—९२८. प्रेद ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ [८.३७]

इस सूक्त का छन्द पंक्ति, और इसमें ५ पाद हैं ।

९२९— इन्द्रो मदाय वावृधे... [ऋ १-८१]

इसमें मद शब्द, पक्तिछन्द और ५ चरण हैं ।

९३०— सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायो अध ये पार्थिवासः । सत्रा वाजानमभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ [ऋ ६.३६.१]

इसमें मद शब्द और त्रिष्टुप् छन्द है जो अपने स्थिर पदों के द्वारा सवन को ठीक रखता है ।

आगे ३ मन्त्र पर्यास [शस्त्रान्त में प्रयोज्य] हैं—

९३१— तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुव ॥ [इसमें पशु का रूप है]

९३२—इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥

९३३—गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ [ऋ ८-९३-७-९]

यह त्र्यह के मध्य सवन का वाहक गायत्री छन्द निविद है ।

वैश्वदेव शस्त्रका प्रतिपद्-तत्सवितुर्वृणी...[७६१]
और अनुचर—अद्या नो देव सवितः [७५४]
सविता का निविद् सूक्त —उदुष्य देवः [३३३]
इसमें वाम शब्द है जो पशु-रूप है।
द्यावापृथिवी का निविद् सूक्त यह है—
९३४—मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे...रुवद्धोक्षा पप्र थानेभिरेवैः— यह पशु-रूप पाँचवें दिन का है।
ऋभुओं का निविद सूक्त यह है—
९३५—ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छ...[४.३४]
पशु वाज है। यह पाँचवें दिन का रूप है।
९३६— स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिः... [६-४६-१]
यह वैश्वदेवका अभ्यास पशुरूप पाँचवें दिनका है।
अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपत् यह है—
९३७— हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ। तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त॥ [ऋ १०.८८.१]
'हविष्मत्' ५वें दिनका रूप है। मरुतोंका निविद्—
९३८. वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु...[ऋ ६-६६-१]
इसमें आया वपु शब्द ५वें दिन का रूप है।
धाय्या वही—जातवेदसे सुनवाम... [७७०]
अग्निर्होता [देखो ७०४] जातवेदः का अभ्यास है।

द्वादशाह का छठा दिन

खण्ड ४ [९]—छठा दिन देव-क्षेत्र है। देव दूसरे के घर में नहीं रहा करते। एक ऋतु दूसरी के घरमें नहीं रहती। अतः ऋत्विज ऋतुयाग स्वयं करते हैं। वे सब के कल्याण के लिए सभी ऋतुओं के कृत्य करते हैं जिनके लिए कोई आज्ञा या वषट्कार नहीं क्योंकि आज्ञा वाणी से होती है जो छठे दिन थक जाती है। आज्ञासे थकी वाणी गड़बड़ा जायेगी और आज्ञा न देने से यज्ञ भङ्ग होगा, अतः आज्ञा और याज्य मन्त्र से पहले एक ऋचा बोलनी चाहिए।

खण्ड ५[१०]—पहले २ सवनों में प्रत्येक प्रस्थित याज्य से पहले परुच्छेप का एक मन्त्र (१-१३६-६ या १-१३०-२) रखते हैं, जिसे रोहित कहते हैं, क्योंकि उससे जीवात्मा ७सुख की अवस्थाओं पर आरोहण करता है और इस रहस्य को जाननेवाला भी।

प्रश्न—जब पाँचवें दिन ५ पादों के, छठे दिन ६ पादोंके मन्त्र बोलते हैं तो छठे दिन ७पादोंके क्यों?

उत्तर—क्योंकि ७वें पाद से सुख में स्थिर होजाते हैं अतः त्र्यह की सन्तति-हेतु ७ चरणों के भी छन्द को छठे दिन पढ़ते हैं। ५

खण्ड ६ [११]—असुरों के साथ झगड़े में देवोंने उन्हें छठे दिनके कृत्य से निकाल दिया। असुर धन लेकर समुद्र तक पहुँचे जहां पीछाकर देवोंने इस ७ पाद के मन्त्रांकुश से वह धन वापस लेलिया। यह जानने वाला शत्रु का धन लेकर उसे भगा देता है।

खण्ड ७ (१२)—छठे दिनका वाहक देवता द्यौ, त्रयस्त्रिंश स्तोम, रैवत साम, अतिछन्द छन्द हैं, इस के ज्ञाता का यज्ञ सफल हो जाता है।

छठे दिन का वही रूप है जो तीसरे का है। अन्य विशेषताएँ ये हैं—७ चरणों के परुच्छेप, नराशंस, नाभानेदिष्ठ के देखे मन्त्र, और भूतकालकी क्रिया।

आज्यशस्त्र का सूक्त—
९३९— अयं जायत मनुषो धरीमणि। [ऋ १-१२८]
इसका ऋषि परुच्छेप, अतिछन्द ७ पादों का है।

छठे दिन काप्रउग शस्त्र

इनका ऋषि परुच्छेप व ७ चरणों का अतिछन्द है—
९४०— स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते। तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन्॥
९४१. तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति। तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः॥
९४२— आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये। तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा। अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत॥ (ऋ १-१३५-१—३)
९४३— आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये। पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्। वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम्॥

९४४– आ वां धियो ववृत्युरध्वरां उपेममिन्दुं ममृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् । तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या । इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवम् मदाय वाजदा युवम् ॥

९४५–इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः । युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ (ऋ० १.१३५.४-६)

९४६–सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे । आ राजाना दिविस्पृशाऽस्मत्रा गन्तमुप नः । इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥

९४७. इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः । उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥

९४८ तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः । अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये । अयं वां मित्रा वरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ (१-१३७-१-३)

९४९ अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये । पथेव यन्तावनुशासता रजो अंजसा शासता रजः ॥

९५०—शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् । मा वां रातिरुप दसत कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥

९५१— वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दवः इमे सुता अद्रिषुताः उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः । ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे । गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ (१-१३९-४-३)

९५२— अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः । शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥

९५३—वनोति हि सुन्वन् क्षयम् परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवम् रयिं ददात्याभुवम् ॥ (१-१३३-६–७)

९५४. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दधे आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी । अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ (ऋ १-१३९-१)

९५५— ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन । वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ (ऋ १-१३९-७)

९५६—ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ (१.१३९.११)

९५७— इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे । या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥

९५८—इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः । पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥

९५९— सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः । उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ (ऋ ६.६१.१-३)

षष्ठ का मरुत्वतीय शस्त्र

मरुत्वतीय शस्त्र का प्रतिपद् यह है—

९६०— स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥

९६१— दिवो मानं नोत्सदन् सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥

९६२— स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ (ऋ ८.६३.१–३)

इसमें अन्त-बोधक 'महा' छठे दिन का रूप है।

आगे के मन्त्र मरुत्वतीय शस्त्र के आतान हैं और तीसरे दिन के समान हैं—

त्रय इन्द्रस्य सोमाः	(देखो ८२५)
इन्द्र नेदीय एदिहि	,, ५६०
प्र नून ब्रह्मणस्पतिः	,, ८२८
अग्निर्नेता	,, ५६२
त्व सोम क्रतुभिः	,, ५९३
न कि: सुदासो रथम्	,, ८३१

९६३– यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये (ऋ १.१२९)
यह परुच्छेप का ७ चरणों का अतिछन्द है।
९६४—स यो वृषा वृषण्येभिः तमोका [१.१००]
यह समानोदर्क सूक्त है।
९६५– इन्द्रमरुत्व इहै पाहि सोमम् (३-५१-७)
इस सूक्त में 'खाद'शब्द अन्तबोधक है। त्रिष्टुप् छन्दका यह स्थिर सूक्त सवन को स्थिर रखता है।
९६६— अयं ह येन वा (८-७६.४)
यह पर्यास है जिसमें 'जितम्' पद अंतबोधक है, गायत्री छन्द मध्य-सवन का वाहक निविद है।
९६७— रेवतीर्नः सधमादे (ऋ १.३०-१३-१५)
९६८— रेवाँ इद् रेवतः स्तोता [८-२-१३]
यह बृहत् छन्द में रैवत पृष्ठ है।
याज्या वही — यद्वावान [६०७]
त्वामिद्धि हवामहे[७८३]से होता बृहत्की ओर फेरे।
९६९– इन्द्रमिद्देवतातये ऋ० ८.६.५
यह साम प्रगाथ है। इसमें नि:ृत आता है।
तार्क्ष्य वही है – त्यमूषु वाजिनं देवजूतं (सं० ७४१
खण्ड—८ [१३] ७०– एन्द्र याह्युप नः परावतो (१.१३०) यह परुच्छेप का सूक्त है, अतिछन्द है और जिसमें ७ पद हैं।
९७१– प्र घा न्वस्य महतो महानि (ऋ० २.१५)
यह समानोदर्क है और छठे दिन का रूप है।
९७२– अभूरेको रयिपते रयीणाम् (ऋ० ६-३१)
इस पाँचवें मन्त्र में 'तिष्ठतु' अन्तवाला है। त्रिष्टुप् छन्द के इस रूप से सवन स्थित रहता है।
उप नो हरिभिः सुतम् [सं० ६२५]
यह समानोदर्क पर्यास है। यह गायत्री त्र्यहके मध्य सवनका वाहक है। वैश्वदेवशस्त्रका प्रतिपद् यह है –
९७३–अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः [य० ४-२५]
यह अतिछन्द में है। इसके अनुचर यह हैं —
तत्सवितुर्वरेण्यम् [संख्या ७९१]
दोषो आगात् (सौत्र सूत्र)
यहाँ 'आगात्' जाने के अर्थ में अन्तवाला है।
सविता का निविद सूक्त यह है —
९७४– उदुष्य देवः सविता सवाय (ऋ० २.३८)
इस सूक्त में आया स्थ शब्द अंद का बोधक है।
९७५—कतरा पूर्वा कतरा परायोः (ऋ १.१८५.१)
यह समानोदर्क है।
९७६–किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्(१-१६१)
९७७. उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा [४-३७]
इन ऋभुओं के नाराशंसी सूक्त में त्रि आया है।
आगे के २ सूक्त वैश्वदेव नाभानेदिष्ठ के हैं—
९७८ – इदमित्था रौद्रम् गूर्तवचा [१०-६१]
९७९– ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता [१०-६२] ८

नाभानेदिष्ठ की कथा

खण्ड ९[१४]होता नाभानेदिष्ठ की कथा पढ़ता है। वह मनु का पुत्र जब ब्रह्मचर्य आश्रममें था तब उसके भाइयोंने उसको सम्पत्तिसे अलग करदिया।
उसने भाइयों से पूछा–मेरा कितना भाग है?
उन्होंने कहा– निर्णायक पिता के पास जा।
वह पिताके पास आकर बोला– ये मेरा खागये।
पिता ने कहा— पुत्र, चिन्ता न कर। अङ्गिरा स्वर्ग के लिए सत्र कर रहे हैं। वे छठे दिनका कृत्य भूलजाते हैं, उनसे ये २ सूक्त १०.६१,६२ पढ़वाओ वे तुमको एक सहस्र देंगे जो सत्र-कर्ता देते हैं।
वह उनके पास जाकर बोला– मैं तुम्हें छठे दिन का कृत्य बताउँगा तुम मुझे १ सहस्र दक्षिणा देना।
उनके स्वीकार करने पर उसने उनको छठे दिन दोनों सूक्त पढ़ाये जिससे उनको यज्ञका ज्ञान हुआ।
जब वह १ सहस्र लेकर चला तो एक मलिनवस्त्र आया और बोला–यह मेरा है। मैं यहाँ छोड़ गया था,पिता से पूछ ले। पूछने पर पिता ने कहा– यह उसीका है किंतु वह तुम्हें दे देगा। वह उसके पास जाकर बोला–मेरे पिताने कहा है कि यह तुम्हारा ही है। उसने कहा– मैं तुमको देता हूं क्योंकि तुमने सच बोला। अतः विद्वान्को सचही बोलना चाहिए यह नाभानेदिष्ठ का सहस्र वाला मंत्र है।
इसे समझनेवाले पर सहस्रकी वर्षा होती है और वह छठे दिन के द्वारा सुख पाता है।
खण्ड १० (१५)–अब होता सहचरसूक्त पढ़ता है, यथा नाभानेदिष्ठ, बालखिल्य,वृषाकपि ,एवया-मरुत्। यदि कोई छूट जाय तो यजमान को क्षति होगी। नाभानेदिष्ठ छूटे तो वीर्य की, बालखिल्य

छूटे तो प्राणों की, वृषाकपि छूटे तो आत्मा की और एवयामरुत् छूटे तो प्रतिष्ठा की क्षति हो सकती है।

होता यजमान में नाभानेदिष्ठ से वीर्य और बालखिल्य से आकृति धारण कराता है। कक्षीवान् के पुत्र सुर्कीति ने उरौ यथा तव शर्मन् मदेम (ऋ १०.१३१) से योनिकी रक्षा करना बताया। एवयामरुत् ऋ ५.८७ से यजमान को गतिवान् बनाता है।

अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है—

९८०— अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः। वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ ऋ ६.९.१

इसमें अहः की पुनरावृत्ति और निवृत्ति है।

९८१— मध्वो वो नाम मारुतं यजत्रा (ऋ १-५७)

यह मरुत्सूक्त बहुतोंका वर्णन करनेवाला अस्तका है।

जातवेदस मन्त्र वही— जातवेदसे सुनवाम, ७७०

९८२, स प्रत्नथा सहसा जायमान १-९६-१ जातवेदका निविद सूक्त समानोदर्क है जिसके प्रत्येक मन्त्रमें धारयन् आता है, जो यज्ञ के दोनों सिरों को बाँधता है।

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय २२ (पंचम पञ्चिका का दूसरा अध्याय) समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ५ अध्याय ३

द्वादशाह का ७ वाँ दिन

खण्ड १६—आ और प्र ७वें दिनके रूप हैं जो पहले दिनके समान है– युक्त, रथ, आशु, पिब, पहले चरण में देवताका निर्वचन, इस लोकका निर्देश, जात, अनिरुक्त और भविष्यकालिक क्रिया।

आज्यसूक्त कुछ अनिरुक्त यह है--

९८३ — समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारत् ऋ ४-५८-१

समुद्र और वाणी क्षीण नहीं होते। यज्ञ से यज्ञ का विस्तार कर वाणी को प्राप्त करते हैं— यह समझ कर यज्ञ करनेवाले का त्र्यह छिन्न-भिन्न नहीं होता।

जैसे दर्श-पूर्णमास-इष्टिमें पुरोडाश पर घी डालकर ताजा करते हैं वैसेही ७वें दिनके आज्य-शस्त्र से स्तोम और छन्दोंको नया करते हैं। त्र्यहका छन्द त्रिष्टुप् है।

७वें दिन का प्रउग शस्त्र

९८३-१००२–आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार। उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम ॥

प्र सोता जीरो अध्वरे॰ स्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै। प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥

प्रयाभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टयेदुरोणे। निनोरयिंसुभोजसंयुवस्व निवीरं गव्यमश्व्यं च राधः॥

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः। घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ७-९२-१-४

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते। आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६-९१-६

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति। न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति केचिन्निविदो मनानाः। आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु। अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यन् रणे वृषणं युनजन् ॥ ऋ ६-६७-९-११

आ गोमता नासत्या रथेन अश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्। अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन युवोर्हि नःसख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्यवित्तम्।

९९४. उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रन् जामिब्रह्माण्युषसश्च देवीः। आ विवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति॥ (ऋ ७-७२-१-३)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य। महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर॥

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ। त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु॥

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत् केतुमुपमं समत्सु। न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान्॥ (ऋ० ७.३०.१-३)

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन् द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै। येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग् वियन्ति वनिनो न शाखाः॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः। स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः॥

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु। आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः॥ (ऋ ७.४३.१-३)

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः। प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः॥

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय॥

१००२. स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु। स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत॥ [ऋ ७.९५.१-३]

इन मन्त्रों में 'आ' और 'प्र' आये हैं। यह सातवें दिन का रूप है। ये त्रिष्टुप् छन्द में हैं। सातवें दिन के आतान मन्त्र पहले दिन के समान हैं—

आ त्वा रथम्	[देखो ५८४]
इदं वसो सुतम्	५८७
इन्द्र नेदीय	५९०
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः	३१४
अग्निर्नेता	५९२
त्वं सोम क्रतुभिः	५९३
पिन्वन्त्यपः	५९४
प्र व इन्द्राय बृहते	५९६

१००३— कया शुभा सवयसः सनीडा (१.१६५) सूक्त में जात शब्द आया है। इस से इन्द्र, अगस्त्य और मरुत् एकमत हो गये थे। इससे होता एकमत और दीर्घायु भी करता है। जो इसकी कामना करे वह 'कयाशुभीय' सूक्त का पाठ करे। यह त्रिष्टुप् छन्द में है इसके ठहरे हुए पद से होता सवन को ठीक स्थान पर स्थिर रखता है

१००४–त्यं सु मेषं महया स्वर्विदम् [१.५२]

इस सूक्त में पहले मन्त्र के दूसरे पद में 'अत्यं न वाजं हवनस्यदम् रथम्' में 'रथ' शब्द आया है यह सातवें दिन का रूप है। इस व्यूह के मध्य सवन का छन्द जगती है। इसलिए निविद को जगती छन्द में रखते हैं।

अब मिथुन-सम्बन्धी सूक्त पढ़े जाते हैं। त्रिष्टुप्-जगती पशु-मिथुन हैं। पशु छन्दोम हैं। यह पशुओं की बढ़ती के लिए किया जाता है।

७ वें दिनके बृहत्पृष्ठ—त्वामिद्धि हवामहे (७८३)

त्वं ह्येहि चेरवे [७८५]

पृष्ठ छठे दिनवाले ही हैं।

वैरूप रथन्तर है और वैराज बृहत्, शक्वर रथन्तर है और रैवत बृहत्, अतः सातवें दिन बृहत्पृष्ठ होता है। छठे दिन के बृहत् को ७वें दिनके बृहत् से स्तोमों को जारी रखने के लिए बाँध देते हैं। यदि रथन्तर पढ़ा जाय तो जोड़ा टूट जाय, अतः बृहत् का प्रयोग होता है।

धाय्या वही— यद्वावान ६०७

अभि त्वा शूर नोनुमः (७२१) से होता सब को योनि तक लौटा लाता है, यह क्रमानुसार रथन्तर है।

साम-प्रगाथ— पिबा सुतस्य रसिनः (७५८)

इसमें पिब शब्द ७वें दिन का रूप है।

तार्क्ष्य वही— त्यमू षु वाजिनं देवजूतम् (७४१)

खण्ड १७—१००५– इन्द्रस्य नु वीर्याणि (ऋ १.३२)

इसमें प्र ७वें दिनका रूप है, यह त्रिष्टप् छन्द है।

१००६—अभि त्वं मेषं पुरुहूतमृग्मियम् (१.५१) में प्र के स्थान में अभि है। वह मध्य सवन के वाहक जगती छन्द में हैं, जिसमें निविद है।

वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद् और अनुचर ये हैं—
तत्सवितुर्वृणीमहे ऋ ५.८२.१-३ (देखो ७६१)
अद्या नो देव सवितः ४-४, [७६४]
यह रथन्तर ७वें दिन का रूप है।

सविताका निविद सूक्त-अभि त्वा देव सवितः(१६५)
द्यावापृथिवी का ,, ,, प्रेतां यज्ञस्य [३६९]
ऋभुओं का निविद सूक्त—

१००७—अयं देवाय जन्मने (ऋ १-२०)
इसमें आया जन्मने ७वें दिन का रूप है।

१००८. आ याहि वनसा सह
गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ १ ॥

१००९. आ याहि वस्व्या धिया
मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥ (१०.१७२)

इत्यादि दो चरणों वाले मन्त्रों को होता पढ़ता है। पुरुष दोपाया, पशु चौपाये छन्दोम हैं, जिनकी बढ़ती के लिए यह है। विश्वेदेवों का निविद सूक्त—

१०१०— एभिरग्ने दुवो गिरः (ऋ १.११४)
इसमें आया 'आ' ७वें दिन का रूप है। यह इस त्र्यह के तीसरे सवन के गायत्री छन्द में है।

अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है—
वैश्वानरो अजीजनत् । इसमें जात शब्द है।
मरुतों का निविद सूक्त यह हैं—

१०११—प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषम् (ऋ ८-७)
इसमें प्र ७वें दिन का रूप हैं।

जातवेदस मन्त्र वही— जातवेदसे सुनवाम (७७०)
जातवेदः का निविद यह हैं—

१०१२— दूतं वो विश्ववेदसम् ऋ ४-८
इसमें जातवद का स्पष्ट वर्णन नहीं हैं। यह इस त्र्यह के तीसरे सवन के वाहक गायत्री छन्द में है।

द्वादशाह का ८वां दिन

खण्ड १८—८वें दिन का रूप यह है कि न 'आ' हो, न 'प्र' और 'स्थित' हो। दूसरे दिन के समान ही आठवें दिन की विशेषताएं ये हैं—

ऊर्ध्व, प्रति, अन्तः, वृषण, वृधन्, चरण-मध्य में देवता का निर्वचन, अन्तरिक्ष का उल्लेख, २ बार अग्नि शब्द, महत्, विहूत, पुनः, वर्तमान काल।

१०१३— अग्नि वो देवेभिः सजोषा (ऋ ७.३)
यह ८वें दिनका आज्य शस्त्र है, इसमें २ बार अग्नि आया है। इस का वाहक छन्द त्रिष्टुप् है।

प्रउग शस्त्र के मन्त्र

१०१४—कुविदङ्ग नमसा येवृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्। ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ॥ [ऋ ७.९१.१]

१०१५- पीवो अन्नान् रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः। ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ [ऋ ७.९१.३]

१०१६- उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः। गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ [ऋ ७.९०.४]

१०१७- उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः। इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥ [ऋ ७.९१.२]

१०१८-यावत् तरस्तन्वो३यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः। शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥

१०१९- नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्। इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ [ऋ ७.९१.४-५]

१०२०- प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्। ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥

१०२१- ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः। अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥

१०२२- ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय। ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥ [ऋ ७.६५.१-३]

१०२३-धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः। आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥

१०२४-१०३४. सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेन ऊर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः। जरेथामस्मद्वि पर्णोर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः। किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ऋग्वेद ३.५८.१-३

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः। विश्वेचिद्धि त्वा विहवन्तमर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥

हृथं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन् ऋषीणाम्। आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥

तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ। महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत् ॥ (ऋ० ७-२८-१-३)

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति। भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते। विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः। अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ (ऋ ७-३९-१-३)

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन्। मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रतिस्तोमं सरस्वति जुषस्व। तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः। वर्धशुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ (ऋ ७-९५-४-६)

इन मन्त्रों में प्रति, अन्तः, विहृत, ऊर्ध्व आये हैं। यह त्रिष्टुप् छन्द में हैं जो इस त्र्यह के प्रातः सवन का वाहक है। मरुत्वतीय शस्त्र के विस्तार जो दूसरे दिन के हैं वही आठवें दिन का रूप है —

विश्वानरस्य वस्पतिम् (७७४), इन्द्र इत्सोमपा (७७७) इन्द्र नेदीय एदिहि (५९०), उत्तिष्ठ ब्रह्म (१२३) अग्निर्नेता..., त्वं सोम क्रतुभिः... (५९२-५९३)

अब महद्वत् सूक्त [महत् शब्द वाले] पढ़े जाते हैं—

१०३५-३८. शंसा महाम्...ऋ ३-४९, महश्चित्त्वं ऋ १.१६९, पिवा सोममभि यं... ऋ ६.१७, महाँ इन्द्रो नृवत्... ऋ ६.१९। महान् शब्द आठवें दिन का रूप हैं। ये त्रिष्टुप् में हैं जिनसे सवन स्थिर है।

१०३९. तमस्य द्यावापृथिवी...(ऋ १०.११३) भी महद्वत् सूक्त है जिस का छन्द जगती है जो इस त्र्यह का वाहक है और उसीमें निविद रक्खा जाता है।

अब त्रिष्टुप्-जगती में मिथुन के सूक्तोंको पशुओं की वृद्धि के लिए पढ़ते हैं। पशु छन्दोम, मिथुन हैं।

महद् अन्तरिक्ष तक पहुंचने के लिए पांक्त सूक्त पढ़े जाते हैं। यज्ञ और पशु पंक्ति वाले हैं।

आठवें दिन के रथन्तर पृष्ठ—अभि त्वा (७२१) और अभि त्वा पूर्वपीतये (७५६) हैं। धाय्या वही—यद्वावान [६०७]। त्वामिद्धि हवामहे [७८३] से सब की योनि की ओर लौटाता है। क्रमानुसार यह बृहत् दिवस है। साम-प्रगाथ यह है— उभयं [७८७] और तं हि स्वराजं...(देखो ७८८)। 'उभयं' का अर्थ जो आज है और कल भी था। यह बृहन् ८वें दिनका है।

तार्क्ष्य वही—त्यमूषु वाजिनम् [देखो ७४१] ३

खण्ड १९— ये ५ महद्वत् सूक्त ८वें दिन के हैं—

१०४०. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै...(ऋ ६.३२)

१०४१. तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा (ऋ १०.५४)

१०४२. त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैः... (ऋ १.५२)

१०४३. त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा... (ऋ ४.१७)

यह त्रिष्टुप् है जिसके द्वारा सवन स्थिर रहता है।

१०४४. दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ (ऋ १.५५)

यह जगती त्र्यह का वाहक है, उसीमें निविद है।

ये त्रिष्टुप्-जगती के मिथुन सूक्त पशु-वृद्धि-हेतु हैं। ५,५ सूक्त मिलकर १० = विराट (अन्न, पशु) हैं।

वैश्वदेव शस्त्र के प्रतिपद्-अनुचर विश्वो देवस्य, तत्सवितुर्वरेण्यं, आ विश्वदेव (७६०, ७९१, ७९३) हैं।

सविताके निविद हिरण्यपाणिमूतये (१.२२.५-७)

द्यावा-पृथिवी के निविद मही द्यौः...(७२२) हैं।

ऋभुओंके निविद १०४५-युवाना पितरा (१.२०.४-८)

१०४६. इमा नु कं भुवना सीषधाम [१०.१५७]

इसमें २ पदवाले मन्त्रों को पढ़कर होता मनुष्यों को पशुओं के ऊपर प्रतिष्ठित करता है।

विश्वेदेवोंका निविद सूक्त-१०४७. देवानामिदवो महद्....(ऋ ८.८३.१) ३य सवन-वाहक गायत्री है।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद् यह है—

१०४८. ऋतावानं वैश्वानरं [आश्व०श्रौत सूत्र८.१०]

मरुतों का निविद सूक्त यह है—

१०४९. क्रीडं वः शर्धो मारुतम्...(ऋ १.३७)

जातवेद मन्त्र वही- जातवेदसे सुनवाम (७७०)।

जातवेद का निविद सूक्त- १०५०- अग्ने मृळमीं असि (ऋ ४.६)। ये गायत्री छन्दमें हैं जो इस त्र्यह के तीसरे सवन का वाहक है। (४)

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की पाँचवीं पञ्चिका का तृतीय अध्याय समाप्त।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ५, अध्याय ४

अध्याय २४

द्वादशाह का ९वां दिन

खण्ड २०—३य दिन के समान ९वें दिनका रूप समानोदर्क है—अश्व, अन्त, पुनरावृत्ति, पुनर्निनृयि रमण, पयसि, ३ की संख्या, अन्त का रूप, अन्तके पद में देवता का निर्वचन, स्वर्ग, शुचि, सत्य, क्षेति (रहना), गत, ओक (घर), भूतकालिक क्रिया।

नवें दिन का आज्य सूक्त यह है—

१०५१. अगन्म महा नमसा यविष्ठम् (ऋ ७.१२)

इसमें 'गत' शब्द ९वें दिन का रूप है। इस त्र्यह के प्रातःसवन का छन्द त्रिष्टुप् है।

९वें दिनके प्रउग शस्त्र के उन्नीस मन्त्र ये हैं —

१०५२-७०. प्रवीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः। वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय॥ ऋ ७.९०.१

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति। इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते॥ [ऋ ७.९०.५]

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्। हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त॥ [ऋ ७.६४.१]

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्रतत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्। अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठाऽतापि धर्मो मनुषो दुरोणे। यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥

यानि स्थान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु। नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता॥ (ऋ ७.७०.१-३)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः। पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः॥

ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्। अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः॥

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम। विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा॥ [ऋ ७.२९.१-३]

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु। प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः॥

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च। ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके। यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः॥

[ऋ ७.४२.१-३]

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आधेह्यस्मे ॥
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः । सहस्रार्घमिडो अत्र भागम् रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ [ऋ १०.१७.७-६]

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तुयज्ञम् । हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् । सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः । ग्ना वसान ओषधीरमृधस्त्रिधातुशृंगो वृषभो वयोधाः ॥ [ऋ ५.४३.११-१३]

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् । जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ [ऋ ६.६१.१४]

इन मन्त्रोंमें शुचि, सत्य, क्षेति, गत, ओक शब्द आये हैं, यह ६वें दिनका रूप है । इस त्र्यहके प्रातः सवनका छन्द त्रिष्टुप् है। आतान ३य दिनवाले हैं– तं तमिद्...[८२२], १०७१. इन्द्रस्य सोमा...., इंद्र नेदीय...[३६०], प्र नूनं....[८२८],अग्निर्नेता[५६२] त्वं सोम[५९३], पिन्वन्त्यपो[५९४], न किः[८३१]

१०७२.इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोमः[ऋ३.५०] इस सूक्त में स्वाहा= अन्त ९वें दिन का रूप है।

१०७३. गायन्साम नभन्यं यथावेः [ऋ १.१७३] इस सूक्त में अर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् में स्वः= अन्त ९वें दिन का रूप है। १०७४. तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना...[ऋ ३.३५] में 'स्था' और १०७५. इमाउ त्वा पुरुतमस्य कारोः[ऋ ६.२१]में धियो रथेष्ठामें 'स्था' ६वें दिनके रूप हैं। ये त्रिष्टुप्छन्दमें हैं।

१०७६. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वच[ऋ १.१०१] यह सूक्त समानोदर्क जगती छन्दमें है जो इस त्र्यह के मध्यसवन का वाहक है जिसमें निविद रहता है। ये मिथुन सूक्त पशु–वृद्धि के लिए ५ पद वाले पंक्ति छन्द में ५ मन्त्र हैं।

नवें दिन के बृहत् पृष्ठ ये हैं—
त्वामिद्धि हवामहे... (७८३)
त्वं ह्येहि चेरवे... (७८५)
धाय्या वही— यद्वावान (६०७)

अभि त्वा शूर नोनुम(७२१) से सवको योनि की ओर लौटाते हैं क्योंकि यह क्रमानुसार रथंतर है।

सामप्रगाथ– इन्द्र त्रिधातु, ये गव्यता(८४६-५०)
तार्क्ष्यं वही— त्यमू षु वाजिनं देवजूतम् (७४१)
१०७७. सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वी...(ऋ ६.३४)
इसमें गत शब्द नवें दिन का रूप है।

खण्ड २१– १०७८. कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म इसमें 'क्षेति', १०७९.आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी (ऋ ४.१३)इसमें 'सत्य', १०८०.तत्त इन्द्रियं परमं पराचैः (ऋ १.१०३)इसमें 'परमं' नवें दिनका रूप है, यह त्रिष्टुप्में है जो सवनको धारण करता है।

१०८१.अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः(ऋ १०.४८.१) इस सूक्त में 'अहं धनानि संजयामि' में 'जित' नवें दिनका रूप है। इसमें जगती छन्दमें निविद है। यह जगती छन्दमें है। इस त्र्यह के मध्य सवन का वाहक जगती छन्द है। जो छन्द वाहक होता है उसीमें निविद रखा जाता है। इसीलिये निविद जगती छन्द में रखा गया है।

मिथुन सूक्त पढ़े जाते हैं,त्रिष्टुप् और जगती भी पशु मिथुन हैं। पशु छन्दोम है। पशुओं की वृद्धि के लिए ५ सूक्त पढ़े जाते हैं। पंक्तिमें ५ पद होतेहैं यज्ञ में ५ पद होते हैं। पशु ५ पद वाले हैं। पशु छन्दोम हैं, पशुओं की वृद्धि के लिए।

दो बार पाँच पाँच दस हो जाते हैं। विराट् १० वाली है, अन्न विराट् है। पशु अन्न हैं पशु छन्दोम है पशुओं की वृद्धि के लिए।

वैश्वदेव के प्रतिपद और अनुचर क्रमशः ये हैं–
तत्सवितुर्वृणीमहे ... (देखो ७६१)
अद्या नो देव सवितः ...(,, ७६४)
यह रथन्तर है, यह नवें दिन का रूप है।
सविता का निविद सूक्त यह है —
दोषो आगात् ... (देखो ६७४)
इसमें 'सावित्रमंतो वैंगतम्' अन्तवाला है। अन्त नवें दिन का रूप है।

द्यावापृथिवी का निविद यह है—

१०८२. प्र वां महि द्यवी अभि... (ऋ ४.५६.५-७)

इनमें आया शुचि शब्द नवें दिन का रूप है।

ऋभुओं का निविद यह है—

१०८३. इन्द्र इषे ददातु नः ... (ऋ ८.६३.३४)

१०८४. ते नो रत्नानि धत्तन... (ऋ १.२०.७-८)

इनमें 'त्ति' शब्द नवें दिन का रूप है।

१०८५. बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युव...[ऋ ८.२९]

ये द्विपाद मन्त्र यजमान की प्रतिष्ठार्थ हैं।

वैश्वदेवों का निविद सूक्त यह है—

१०८६. ये त्रिंशति त्रयस्परि... [ऋ ८.२८]

यह इस त्र्यहके ३य सवन का वाहक गायत्री है।

अग्नि-मारुत शस्त्र का प्रतिपद यह है—

वैश्वानरो न ऊतये... [आश्वलायन ८.११]

मरुतों का निविद- मरुतो यस्य हि क्षये[ऋ १.८६]

इसमें क्षय अन्तवाला नवें दिन का रूप है, मानो कोई किसी स्थान पर जाकर पहुँच रहा हो।

जातवेद का मन्त्र - जातवेदसे सुनवाम [७७०]

जातवेद का निविद सूक्त यह है—

१०८८. प्राग्नये वाचमीरय... [ऋ १०.१८७]

यह समानोदर्क है। होता 'स नः पर्वदति द्विषः' [वह अग्नि हमारे द्वेषियों को नष्ट करे] का २ बार पाठ करता है, क्योंकि इस नवरात्र में बहुत कृत्य होते हैं और भूल हो सकती है, जिसे वह इससे हटाता है। यह इस यज्ञ के तीसरे सवन का वाहक गायत्री छन्द है।

द्वादशाहका १०वां दिन

खण्ड २२—पृष्ठ्य षडह=द्वादशाह के पहले ६ दिन मुख हैं और छन्दोमा अर्थात् सातवां-आठवाँ-नवां दिन मुख के भाग हैं, जैसे जिह्वा-तालु-दाँत। दसवां दिन ऐसा है जिससे वाणी की विवेचना होती अथवा स्वाद जाना जाता है।

अथवा, पृष्ठ्य षडह नाकके नथनों, छन्दोमा उनके मध्य के, और दसवां दिन प्राण-शक्ति के समान है।

अथवा पृष्ठ्य षडह आँखों के, छन्दोमा उनके काले भागों, और दसवां दिन देखनेवाली पुतलीके समान है।

अथवा, पृष्ठ्य षडह कानके; छन्दोमा कानके भीतर के आकाशके, और दसवां दिन श्रवणशक्ति के समान हैं।

दसवां दिन श्री है। दशम दिन में प्रवेश करनेवाला श्रीमान् होता है। उस दिन मौन रहते हैं। श्री से कोई नहं बोलता। यह बोलने की वस्तु नहीं।

उस दिन ऋत्विज चलते, नहाते और पत्नीशाला में जाते हैं। उनमें जो इस आहुति को जाने वह कहे—

समन्वारभध्वम्। अब इस मन्त्र को पढ़कर आहुति दे—

इह रमेह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिरग्ने वाट स्वाहा वाट्।

होता 'इह रम' से इस लोक के यजमानों को, और 'इह रमध्वम्' से इस लोककी सन्तानोंको प्रसन्न करता है। 'इह धृतिरिह स्वधृतिः' से यजमानों में प्रजा और वाणी को देता है। 'अग्ने वाट्' रथन्तर और 'स्वाहा वाट्' बृहत् साम है। दोनों साम देवों के मिथुन हैं, सम्पन्नता के लिए ऐसा किया जाता है। इसे समझने वाला प्रजा और पशुओं से सम्पन्न होता है।

अब वे अग्नीध्र-स्थान को जाते हैं। उनमें से इस आहुति को जाननेवाला कहे— 'समन्वारभध्वम्' और वह पढ़कर आहुति दे—

उपसृजन्धरुणं मातरं धरुणो धयन्। रायेस्पोषमिष-मूर्जमस्मासु दीधरत् स्वाहा॥

इस रहस्यको समझकर आहुति देनेवाला अपने और यजमानोंके लिए धन-शक्ति-अन्न-बल प्राप्त करता है।

खण्ड २३— अब वे सदस् में यथायोग्य स्थान पर पहुंचते हैं। उद्गाता साथ साथ चलते और सर्पराज्ञी की ऋचाएँ गाते हैं। यह पृथिवी सर्पों=चलनेवालों की रानी पहले लोम- वृक्षादि- से रहित थी। उसका दर्शन करनेवाली ऋषिका सर्पराज्ञी ने यह सूक्त देखा-

१०८९. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरम् पुरः।
पितरम् च प्रयन् स्वः॥ ऋ १० १८९.१

अर्थ— यह अपनी कीली पर घूमने वाली पृथिवी अन्तरिक्षमें अपनी माता जलके साथ, आकाशस्थ सूक्ष्म जल को सामने रखती हुई, अपने पिता, रक्षक, स्वामी सूर्य के चारों ओर घूमा करती है।

फिर उसमें चित्र विचित्र रंग, नाना रूपोंमें कमनीय औषधि-वनस्पति उत्पन्न होती हैं। इसे समझने वाला सब कमनीय वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है।

प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता मौन होकर पढ़ते हैं, और होता वाणीसे पढ़ता है । वाणी-मन देव-मिथुन से मिथुन की उन्नति होती है । इसे समझनेवाला सन्तान और पशुओं से युक्त होता है ।

चतुर्होतृ मन्त्र

अब होता चतुर्होतृ मन्त्रोंको उद्गाता के स्तोत्र के के साथ साथ पढ़ता है । वह इनमें देवों के यज्ञ का छिपा नाम प्रकाशित करता है । इसे समझने वाला प्रकाशित हो जाता है ।

जिस वेदपाठी को यश न प्राप्त हो वह वन में जा कर दर्भ के सिरों को बाँधकर, एक दूसरे ब्राह्मणके दक्षिण ओर बैठकर ये मन्त्र जोर जोर से पढ़े ।

खण्ड २४– अब उद्गाताके पीछे रखी गूलर की शाखा को छूते हैं, यह सोचकर कि हम अन्न–रस को छूरहे हैं, क्योंकि गूलर अन्न-रस है । जब देवों ने अन्न-रस बाँटा तो गूलर उत्पन्न हुआ । यह वर्ष में ३ बार फल देता है । गूलर-शाखाको लेना मानो अन्न-रस को लेना है ।

वे वाणी को रोकते हैं । वाणी ही यज्ञ है । यज्ञ को रोकने से मानो दिन=स्वर्ग लोक को लेते हैं ।

वे दिन–रातमें वाणी न बोलें । बोलने से दिन-रात को शत्रुओंके अधीन कर देंगे । केवल जब सूर्य अध-छिपा हो तब बोलें, तब वे शत्रु के लिए स्वल्प समय छोड़ेंगे, या सूर्यास्त–पश्चात् बोलें जिससे शत्रु अन्धकार-भागी होजाये । आहवनीय अग्निके चारों ओर घूमकर बोलते हैं और उससे सुख पाते हैं ।

फिरइस मन्त्रको पढ़ते हैं––यदि ह ऋतम् अकर्म यन् अत्यरीरिचाम, प्रजापतिं तत्पितरमप्येतु । प्रजापति को कमी–बढ़ती हानि नहीं पहुँचाती । वे कम-बढ़ के रक्षक हैं । यह समझ कर बोलने वाले की कमी–बढ़ती प्रजापति को पहुँचती है ।

खण्ड २५––होता कहता है––'हे अध्वर्यु' । यही उचित आहावहै । अध्वर्यु कहता है—'ओ३म् होतः' । या 'तथा होतः' । इस प्रकार दसों पदों में प्रत्येक के पढ़नेसे पूर्व होता इसी आहाव को कहता है ।

दस चतुर्होतृ मन्त्र ये हैं—

१. तेषां चित्तिः स्रुगासी३त् । (उनकी चेतना स्रुक् थी)
२. चित्तमाज्यमासी३त् । (चित्त घी था)
३. वाग्वेदिरासी३त् । (वाणी वेदि थी)
४. आधीतं बर्हिरासी३त् । (अध्ययन आसन था)
५. केतो अग्निरासी३त् । (समझ अग्नि थी)
६. विज्ञातमग्नीदासी३त् । (विज्ञान अग्नीध्र था)
७. प्राणो हविरासी३त् । (प्राण हवि था)
८. साम अध्वर्युरासी३त् । (साम अध्वर्यु था)
९. वाचस्पतिर्होता आसी३त् ।(आचार्य होता था)
१०. मन उपवक्ता आसी३त् । (मन मैत्रावरुण था)

अब ग्रह संज्ञक मन्त्र यह है, उसे भी होता पढ़े–

ते वा एतं ग्रहमगृह्णत । वाचस्पते, विधे, नामन्, विधेम ते नाम । विधिस्त्वमस्माकं नाम्ना द्यां गच्छ यां देवाः प्रजापतिगृहपतय ऋद्धिमराध्नुवंस् तामृद्धिं रात्स्यामः ।

उन्होंने इस ग्रहको लिया और कहा– हे आचार्य हे विधि नाम, हम तेरा नाम लें । विधि तू हमारे नाम से द्यौ को जा । देव और प्रजापति–गृहपतियों ने जो समृद्धि पाई उसको हम प्राप्त करें ।

प्रजापतेस्तनूः तथा ब्रह्मोद्य

प्रजापतिकी तनू नामक १२ मन्त्र २–२ पढ़ते हैं–

१–२. अन्नादा चान्नपत्नी च । [अग्नि–आदित्य]
३–४. भद्रा च कल्याणी च । [सोम और पशु]
५-६. अनिलया चापभया च [बेघर वायु, अभयमृत्यु]
७-८. अनाप्ता चनाप्या च [अप्राप्त पृथ्वी,अप्राप्य द्यौ]
९-१०. अनाधृष्या चाप्रतिधृष्या च। विद्युत्, सूर्य]
११-१२. अपूर्वा चाभ्रातृव्या च । [मन, संवत्सर]

इन १२ शक्तिवाले पूर्ण प्रजापति का १०वां दिन है ।

ब्रह्मोद्य— अग्निः गृहपतिरिति हैक आहुः सोस्य लोकस्य गृहपतिः, वायुः गृहपतिरिति हैक आहुः सो अन्तरिक्षलोकस्य गृहपतिरसौ वै गृहपतिर्योऽसौ तपत्येष पतिर्ऋतवो गृहाः । येषां वै गृहपतिं देव विद्वान् गृहपतिर्भवति राध्नोति स गृहपती राध्नुवन्ति ते यजमानाः । येषां वा अपहतपाप्मानं देवं विद्वान्गृहपतिः भवत्यप स गृहपतिः पाप्मानं हते अप ते यजमानाः पाप्मानं घ्नते । अध्वर्यो भरात्स्मारात्स्म ॥

खण्ड ३१— उदय होता हुआ सूर्य आहवनीय से किरणों को मिला देता है। जो अनुदित में होम करना है वह मानो न पैदा हुए कुमार या बछड़े को दूध पिलाना और उदितमें होम मानो उत्पन्नको दूध पिलाना। इस सूर्य के लिए आहुति इहलोक परलोक दोनों में अन्नाद्य हो जाती है।

अनुदितमें होम, कर न फैलाये मनुष्य या हाथीके आगे भोजन फेंकना है। उदित में होम करना फैलाये करमें भोजन देना है। मानो इसी करसे सूर्य उड़ाकर उसे ऊपर ले जाकर मुख में रखता है जो ऐसा जान कर होम करता है। अतः सूर्य के उदय होने पर होम करना चाहिए।

उदय होता हुआ सूर्य सब प्राणियों को प्राण देता है अतः उसे प्राण कहते हैं। इसके ज्ञाताकी आहुति प्राण में ही पड़ती है। अतः उदित में होम करे।

जो सायं सूर्यास्त पर और प्रातः सूर्योदयपर होम करता है वह सत्य बोलता है। सायंका मन्त्र यह है-

भूर्भुवः स्वः। ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः।

प्रातः का मन्त्र यह है—

भूर्भुवः स्वः। ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः।

सत्य बोलते हुए उसकी सत्य में आहुति होती है जो इसे समझता हुआ उदित में होम करता है।

इससे सम्बन्धित यह यज्ञगाथा गायी जाती है—

'जो सूर्योदय से पहले अग्निहोत्र करते हैं वे दिन में कहने योग्य को बिना दिन निकले बोलते हुए प्रातः प्रातः असत्य बोलते हैं। मन्त्र 'सूर्यो ज्योतिः' है किन्तु इनके पास उस समय ज्योति नहीं होती। ६

प्रजापति का तप

खंड ३२– प्रजापति ने चाहा कि प्रजा उत्पन्न करूँ बहुत हो जाऊँ। उसने तप किया। तप करके पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ को बनाया। उन लोकों को तपाया। उन तपे हुओं से ३ ज्योतियाँ उत्पन्न हुई—पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु, द्यौ से सूर्य। उन ज्योतियों को[ऋषियों में] तपाया। उनसे ३ [प्रकार की रचनावाले] वेद उत्पन्न हुए— अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, आदित्य से साम वेद। उसने इन वेदों को तपाया। क्रमशः इनसे ३ शुक्र उत्पन्न हुए– भूः, भुवः, स्वः। उसने इन ३ को तपाया। उससे ३ अक्षर उत्पन्न हुए– अ, उ, म्। उसने इन तीनों को जोड़ दिया। इससे ओ३म् हुआ। अतः होता ओ३म् कहता है। ओम् स्वर्ग लोक है। ओम् वह है जो तपता है।

प्रजापति ने यज्ञका विस्तार कर देवों को दिया। उन्होंने इसका विस्तार किया। उन दोनों ने यज्ञको जुटाया, यज्ञ किया। ऋग्वेद से होता का, यजुर्वेद से अध्वर्यु का साम वेद से उद्गाता का और इन तीन विद्याओं के शुक्र से ब्रह्मा का कार्य किया।

देवों ने प्रजापति से पूछा कि यदि हमारे यज्ञ में किसी वेद में ज्ञात या अज्ञात भूल हो जाय तो क्या प्रायश्चित्त है? प्रजापतिने उत्तर दिया— ऋगवेद की भूल में भूः से गार्हपत्य में, यजुर्वेद की भूल में भुवः से अग्नीध्रीय में और हविर्यज्ञों में अन्वाहार्यपचन में, सामवेद की भूल में स्वः से आहवनीय में, अज्ञात वा आपत्ति की भूल में भूः-भुवः-स्वः तीनों से आहवनीय में ही आहुति दो।

ये ३ व्याहृतियाँ वेदों के अन्तर्वेन्धन साधन हैं। जैसे आत्मा से आत्मा को, पर्व से पर्व को, सरेस से चर्म या अन्य किसी वस्तु के टुकड़ों को जोड़ते हैं।

ये व्याहृतियाँ सबके लिए प्रायश्चित्त हैं। इनसे ही प्रायश्चित्त करना चाहिए। ७ (३२) [१८५]

ब्रह्मा का कर्म

खण्ड ३३— महावादी पूछते हैं—ब्रह्मा का कर्म किससे किया जाता है? उत्तर है कि त्रयी विद्यासे।

यह जो पवित्र करता है, यज्ञ है, जिसके वाणी-मन २ मार्ग हैं। वाणी त्रयी विद्यासे एक भागका संस्कार करते हैं और मनसे ही ब्रह्मा संस्कार करता है।

कोई ब्रह्मा प्रातरनुवाककी तैयारी कर स्तोमभागों को जप कर, बोलते रहते हैं। ऐसे एक को देख कर ब्राह्मण बोला— इसने यज्ञ का आधा भाग लुप्त कर दिया। जैसे १ पैर का मनुष्य या रथ गिर पड़ता है ऐसे ही वह यज्ञ और यजमान गिर जाता है। अतः उपांशु-अन्तर्याम से लेकर होम-समाप्ति तक, पवमान स्तोत्र के बाद अन्त की ऋचा तक, शस्त्रसहित

स्तोत्र पढ़ते समय वषट्कार तक ब्रह्मा मौन रहे। जैसे २ पैरों वाला मनुष्य और २ पहियों वाला रथ नहीं गिरता वैसे ही मन-वाणी वाला यज्ञ और यजमान पतित नहीं होते। ८ (३३) [१८६]

खंड ३४. अध्वर्यु को ग्रहोंके थामने, प्रचार करने तथा आहुति देने के लिए, उद्गाता को गायन के लिए, होता को पुरोनुवाक्या-शस्त्र-याज्या को पढ़ने के लिए दक्षिणाएँ दी जाती हैं, तो ब्रह्मा को किस काम के लिए दी जाये? क्या बिना श्रम के ही उसे दक्षिणा दी जाय?

इसका उत्तर यह है कि वह यज्ञ का चिकित्सक है, यज्ञ की चिकित्सा करके दक्षिणा लेता है। वह अति अधिक छन्दों के रस [व्याहृति-प्रणव] से ऋत्विज का काम करता है। वह आधे का भागी दूसरे ऋत्विजोंका अग्रणी होता है। आधा कार्य उस का और आधा अन्य ऋत्विजों का होता है।

अतः यज्ञ में कोई त्रुटि हो तो उससे ही निवेदन करते हैं, वही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त कराता है।

स्तोत्र-पाठ का संकेत मिलने पर प्रस्तोता कहता है—

ब्रह्मन्, स्तोष्यामः प्रशास्तः।

इस पर वह अनुमति देता है—

भूः। इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्। [प्रातः सवन में]
भुवः ,, ,, माध्यन्दिन ,,
स्वः ,, ,, ३ य ,,
भूर्भुवः स्वः ,, ,, उक्थ्य वा अतिरात्र में

इन्द्रवन्तः स्तुध्वम् का अर्थ है कि यज्ञ [सोमयाग] इन्द्र का है। वह यज्ञका देवता है। इन्द्रवन्तः स्तुध्वम् कह कर वह उद्गीथ को इन्द्र वाला करता है और कहता है कि इन्द्र से अलग मत होओ। इन्द्र वाले होकर स्तुति करो। ९ (३४) [१८७]

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद में अध्याय २५ (पंचम पञ्चिका का पञ्चम अध्याय) समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ६ अध्याय १

सोम को निचोड़ना

खण्ड १— देवता सर्व-चरु में सत्र करने बैठे। वे पाप-फल को दूर न कर सके। उनसे कद्रु स्त्री का पुत्र मन्त्र-द्रष्टा सर्प [संचारी] अर्बुद ऋषि बोला— 'होतासे की जानेवाली एक क्रिया छूटगयी, उसे कर दूं तब तुम पाप-फल से छूट जाओगे।' वे बोले— अच्छा। वह प्रत्येक मध्यन्दिन सवन में आया और ग्रावाओं का स्तवन [गुण-वर्णन] किया। अतः उस अनुकरण पर मध्यन्दिनमें ग्रावस्तुति करतेहैं। जिस मार्ग से वह आता था इसको अर्बुदोदासर्पणी पगडंडी कहते हैं।

सोम राजा ने उन्हें मदयुक्त कर दिया। वे बोले— यह विषैला हमारे सोम को देखता है। इसकी आँखों पर पट्टी बाँधदें। अतः पट्टी बाँधकर स्तवन करते हैं।

फिर भी सोम के मद-युक्त होने पर वे बोले— यह अपने [चुने] मन्त्रसे ग्रावस्तुति करता है। इसमें अन्य ऋचाएँ मिला दें—तदनुसार उस की ऋचा में अन्य ऋचा को मिलाया, तब सोमने मद-युक्त नहीं किया अतः इसकी ऋचा में शान्ति के लिए दूसरी ऋचाओं को मिला देते हैं।

देवों ने पाप दूर किया तत्पश्चात् अर्बुद के सब साथियों ने पाप दूर किया। वे पुरानी जीर्ण त्वचा को छोड़कर नयी त्वचा से युक्त हो गये।

ऐसा जाननेवाले पापको दूर करते हैं। १[१८८]

खंड २— प्रश्न—कितनी ऋचाओं से सोमस्तवन करे?

उत्तर—१०० से। पुरुष शतायु, शतवीर्य, शतेन्द्रिय है अतः इनसे यजमान को दीर्घायु करता है।

अथवा ३३ से। क्योंकि उस अर्बुद ने ३३ देवों का पाप दूर किया था।

ग्राव-स्तुति

अथवा अपरिमित ऋचाएँ बोले। क्योंकि प्रजापति और उसकी यह ग्रावस्तुति क्रिया अपरिमित है। उसकी सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं जो अपरिमित ऋचाओं से स्तवन करता है।

इस का ज्ञाता सब कामनाओं को पूर्ण करता है।

प्रश्न— मन्त्र कैसे बोले ? अक्षर-अक्षर, या ४-४ अक्षर, या चरण-चरण, या आधी-आधी ऋचा, या पूरी ऋचा ?

उत्तर—पूरी ऋचा और पूरे चरण पढ़े नहीं जाते, अक्षरशः या ४-४ अक्षर पढ़ें तो छन्द लुप्त हो जायें और अनेक अक्षर छूट जायें। अतः प्रतिष्ठा के लिए आधी-आधी ही ऋचा बोले। मनुष्य दोपाया तथा पशु चौपाया है। होता यजमान को चौपायों के ऊपर प्रतिष्ठित करता है। अतः आधी-आधी ऋचा पढ़े।

प्रश्न— मध्यन्दिन सवन में की गयी ग्रावस्तुति दूसरे २ सवनों में कैसे मान ली जाती है ?

उत्तर— गायत्री से स्तुति प्रातः सवन की, और जगती छन्दसे ३य सवन की स्तुति हो जाती है क्योंकि गायत्री प्रातः का तथा जगती सायंका छन्द है। ऐसे ज्ञाताकी मध्यन्दिन ग्रावस्तुति सब सवनों में हुई।

प्रश्न— जब अध्वर्यु ही अन्य ऋत्विजों को अन्य सभी कार्योंमें प्रैष देता है तो इसमें क्यों नहीं देता?

उत्तर— क्योंकि ग्रावस्तुति का सम्बन्ध मन से है, मन को आदेश नहीं होता, अतः इसमें आदेश नहीं।

सुब्रह्मण्या

खण्ड ३— वाणी ही सुब्रह्मण्या है, सोम राजा उस का बछड़ा है। सोम राजा को खरीदने पर उसे बुलाते हैं जैसे किसी गौको बुलायें। उस वत्स से सब कामनाएँ दुही जाती हैं। जो इसे समझता है वाणी उसकी सभी कामनाएँ पूरी कर देती हैं।

प्रश्न— सुब्रह्मण्या के नाम का कारण क्या है ?

उत्तर—वाणी ही कारण है क्योंकि यह अच्छी वेद मन्त्रों की वाणी है।

प्रश्न—यह ऋत्विज पुरुष है। उसे स्त्री के समान क्यों बुलाते हैं ?

उत्तर— क्योंकि वाणी स्त्रीलिङ्ग है इसलिए।

प्रश्न— जब अन्य ऋत्विज ऋत्विज-कर्म वेदि के भीतर करते हैं और सुब्रह्मण्या वेदि के बाहर तो वहकर्म वेदि के भीतर किया कैसे समझा जाता है ?

उत्तर—वेदि में एक उत्कर होता है जिसमें होकर कूड़ा आदि बाहर फेंका जाता है वहाँ खड़े होकर किया आह्वान वेदि-मध्य किया ही समझा जाता है।

प्रश्न— वहाँ खड़े होकर सुब्रह्मण्या क्यों पढ़ते हैं ?

उत्तर—ऋषियों ने एक सत्र किया था। वहाँ पर सबसे वृद्ध से वे बोले—सुब्रह्मण्या को बुला। हममें तू देवों के निकटतम होकर बुलायेगा। अतः सबसे वृद्ध को सुब्रह्मण्या बनाते हैं। वह सब वेदि को प्रसन्न करता है।

प्रश्न— उसको दक्षिणा में बैल क्यों देते हैं ?

उत्तर— बैल नर होता है, सुब्रह्मण्या स्त्रीलिङ्ग है, इस प्रकार जोड़ा हो जाता है।

आग्नीध्र के कर्त्तव्य

आग्नीध्र ऋत्विज पात्नीवत ग्रह के लिए याज्य मन्त्र धीरे धीरे पढ़कर यज्ञ करता है। पात्नीवत रेतः है जिसका सिंचन धीरे धीरे होता है। वह अनुवषट्कार नहीं करता क्योंकि यह संस्था (विराम) है, और रेतः-सिंचन में विराम न होना चाहिए।

वह आग्नीध्र नेष्टा के पास बैठकर खाता है। नेष्टा ऋत्विज पत्नी का भाजन [लानेवाला] है। अग्नि पत्नियों में सन्तानोत्पत्ति के लिए रेतः धारण कराता है। यह समझनेवाला अग्नि से ही सन्तान के जन्मके लिए पत्नीमें रेतः-स्थापन करता है तथा प्रजा और पशुओं से युक्त होता है।

दक्षिणा के पश्चात् सुब्रह्मण्या समाप्त होजाती है। वह वाणी ही है, दक्षिणा अन्त है। इस प्रकार अन्त में यज्ञको अन्नाद्य और वाणी में स्थापित करते हैं॥ ३ (१६०)

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय २६ (षष्ठ पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ६, अध्याय २

मैत्रावरुण का शस्त्र

खण्ड ४—देवों ने यज्ञ का विस्तार किया। तब असुर आये कि इसमें विघ्न डालें। उन्होंने दक्षिण की ओर से आक्रमण किया। इसको यज्ञ की सब से दुर्बल दिशा समझा। देवोंने सावधान होकर मित्रा-वरुण को दक्षिण की ओर नियत कर दिया और इन्हीं के द्वारा प्रातःसवन में असुरों को भगा दिया। इसी प्रकार यजमान भी भगा देते हैं। इसलिए मैत्रा-वरुण ऋत्विज प्रातः-सवन में मैत्रावरुण शस्त्र को पढ़ता है।

ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्र

असुरों ने दक्षिण ओर हार कर यज्ञ के मध्य में आक्रमण किया। देवोंने इन्द्रके द्वारा उनको हटाया इसलिए ब्राह्मणाच्छंसी प्रातःसवन में इन्द्रशस्त्र पढ़ता है।

अच्छावाक् शस्त्र

बीच से हारकर असुरों ने यज्ञ के उत्तरी भाग पर आक्रमण किया। देवों ने सजग होकर इन्द्र और अग्नि को उत्तर भाग में नियत किया। उन्होंने इन्द्राग्नि की सहायता से प्रातःसवनमें राक्षसोंको भगा दिया। इसी प्रकार यजमान भी इन्द्राग्नि की सहायता से उत्तर की ओर से प्रातः सवन में राक्षसों को भगा देते हैं। इस-लिए अच्छावाक् इन्द्राग्नि शस्त्र को प्रातः सवन में पढ़ता है।

असुर उत्तर की ओर हारकर एक पंक्ति में पूर्व की ओर आ डटे। देवों ने सजग होकर अग्नि को प्रातः सवन के पूर्व की ओर नियत किया और उसकी सहा-यतासे असुरों को निकाल दिया। इसी प्रकार यजमान भी प्रातः सवन में पूर्व की ओर अग्नि की सहायता से असुरों को भगा देता है। इसलिए प्रातः सवन अग्नि का होता है। जो इस रहस्य को समझता है, उस का पाप छूट जाता है।

ये असुर पूर्व से हार कर पश्चिम की ओर यज्ञ पर आक्रमण करने लगे। देव जग उठे और स्वयं विश्वेदेवों को पश्चिम की ओर तीसरे सवन में नियत किया। विश्वेदेवों की मदद से उन्होंने पश्चिम की ओर से तीसरे सवन में असुरों को भगा दिया। यजमान भी विश्वेदेवों की मदद से तीसरे सवन से पश्चिम की ओर से असुरों को निकाल देते हैं। इसलिए तीसरा सवन विश्वेदेवों का है। जो इस रहस्य को समझता है उसका पाप छूट जाता है।

इस प्रकार किये यज्ञसे देवों ने असुरों को हरा दिया और पापों से बच कर सुख को प्राप्त किया। इसे सम-झने वाला यज्ञ करके, शत्रुको हरा कर, पाप से बचता और सुख पाता है। १(४)[१९१]

खण्ड ५— प्रातः सवन में स्तोत्रिय तृच को उसका अनुरूप करते हैं। इस प्रकार पहले दिन के अनुसार अगले दिन का कृत्य करते हैं। मध्यन्दिन में ऐसा नहीं करते। क्योंकि पृष्ठ स्तोत्र भी हैं अतः उनके लिए मध्य वह स्थान नहीं कि उनको स्तोत्रिय का अनुरूप करें। ऐसे ही तीसरे सवन में भी एक स्तोत्रिय को दूसरे का अनुरूप नहीं करते। २(५)[१९२]

होतृ-सहायकों के मन्त्र

खण्ड ३ — अब आरम्भणीया ऋचाएं बताते हैं—

१०८९— ऋजुनीती नो वरुणो... (ऋ १.९०.१)

इससे मैत्रावरुण शस्त्र का आरम्भ होता है। इसके दूसरे चरण में—मित्रो नयतु विद्वान् है जो मैत्रावरुण को होत्रकों का नेता बताने से प्रणेतृमती है।

१०९०—इन्द्रं वो विश्वतस्परि... (ऋ १.७.१०)

यह ब्राह्मणाच्छंसि शस्त्र का आरम्भ होता है। २य चरण में आये 'हवामहे जनेभ्यः' से इन्द्र को प्रतिदिन बुलातेहैं जिससे यज्ञमें इन्द्रको कोई अन्य नहीं ले जाता।

१०९१— यत् सोम आसुते नर (ऋ० ७.९४.१०)
यह अच्छावाक् का मन्त्र है। इसमें 'इन्द्राग्नी अजोहुवुः' (इन्द्राग्नी को उन्होंने बुलाया) ऐसा पद आया है। इस प्रकार इन्द्राग्नी को उन्होंने रोज बुलाया। जब अच्छावाक् रोज इसको बुलाता है तो कोई और इन्द्राग्नी को ले नहीं जा सकता।

यह ऋचायें नावें हैं जो स्वर्गलोक (सुख) के किनारे तक पहुंचा देती हैं। इनसे यजमान इन लोकों को तर के स्वर्ग लोक को पहुंच जाते हैं। (३)

खण्ड ७— अब इन के अन्त के मन्त्र कहते हैं—

१०९२— ते स्याम देव वरुण ...(ऋ० ७.६६.९)
यह मैत्रावरुण का परिधानीय या अन्त का मन्त्र है इसमें एक पद आया है 'इषं स्वश्च धीमहि' (हम अन्न और प्रकाश धारण करें)। इससे वे दोनों लोकों को प्राप्त करते हैं। अन्न से यह लोक और प्रकाश (स्वः) से दूसरा लोक मिलता है।

'व्यंतरिक्षमतिरद्' [ऋ० ८.१४.७-९]
यह तीन ऋचायें विवृत हैं। इनसे ब्राह्मणाच्छंसी स्वर्ग के द्वार खोल देता है।

१०९३- प्रत्यंतरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
इन्द्रो यदभिनद्वलम् (ऋ० ८.१४.७)
(इन्द्र ने सोम के मद में अन्तरिक्ष को खोल दिया और प्रकाश आने दिया) इससे दीक्षितों का उत्साह प्रकट होता है। इस ऋचा को बलवती कहते हैं।

१०९४- उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहासतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्। [ऋ० ८.१४.८]
(किरणों को निकाल लाया और अंगिराओं के लिए उनको जो अब तक छिपी थीं प्रकट कर दिया। और वल को निकाल कर फेंक दिया)। इस मन्त्र में अंगिराओं के लिए भेंट का उल्लेख है।

१०९५- 'इन्द्रेण रोचना दिवि' से स्वर्गलोक की ओर संकेत है।

दृढ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे।
[ऋ० ८.१४.९]
(इन्द्र ने स्वर्ग के प्रकाशों को दृढ़ किया है। वह स्थिरों को नहीं फेंकता है)।

इस मन्त्र से यजमान सदा स्वर्ग [सुखस्थान] को जाते और वहाँ चलते फिरते हैं।

१०९६- आहं सरस्वती वतोः (ऋ० ८.३८.१०)
यह अच्छावाक् मन्त्र है, वाक् ही सरस्वती है। 'वतोः' द्विवचन में है 'इन्द्र और अग्नि का'। 'इन्द्राग्न्योरवो वृणे'

यह जो वाक् है वह इन्द्र और अग्नि का प्रिय धाम है। इस प्रियधाम से समृद्धि की प्राप्त होता है। जो इस रहस्य को समझता है वह अपने प्रियधाम के द्वारा समृद्ध होता है। [४]

होत्रक-परिधानीय मन्त्र

खण्ड ८— होत्रकों के प्रातः-मध्य-सवन के परिधानीय (अन्तके) मन्त्र २ तरह के होते हैं—अहीन और एकाहिक। मैत्रावरुण एकाहिक से अन्त करते हैं जिस से यजमान इस लोक में च्युत न हो, और अच्छावाक् अहीनों से, सुखमय लोक को पाने के लिए। ब्राह्मणाच्छंसी दोनों से अन्त करता है, जिससे वह दोनों लोकोंको जोड़ता और उनमें, मैत्रावरुण-अच्छावाक् को, अहीन-एकाहिकों को, अग्निष्टोम-संवत्सर को थामे हुए चलता है।

३ य सवन में होत्रकों के परिधानीय मन्त्र एकाहिक ही होते हैं क्योंकि वह प्रतिष्ठा है। अन्त में होता यज्ञ को प्रतिष्ठावान् करता है।

होता प्रातः-सवन में ऋचाओं को लगातार पढ़े। १ या २ स्तोम अधिक न पढ़े, जैसे कि किसी भूखे-प्यासे को तत्काल खाना-पानी दे दें। यह विचार कर कि में देवोंको जल्दी भोजन दे दूंगा, वह लोकमें प्रतिष्ठित हो जाता है।

पिछले २ सवनों में अपरिमित सुख पाने के लिये अपरिमित ऋचाएं पढ़े। यदि चाहे तो होत्रकों द्वारा पहले दिन पढ़ी ऋचाएँ पढ़े, या होत्रक होता द्वारा पढ़ी ऋचाएँ पढ़ें, क्योंकि होता प्राण और होत्रक अङ्ग हैं। एक ही प्राण का अङ्गों में संचार है।

३य सवनों में होत्रकों द्वारा पढ़े सूक्तों की अन्तिम ऋचाओंसे होता समाप्त करता है, क्योंकि वह आत्मा और होत्रक अङ्ग हैं जिनके अन्त समान होते हैं। अतः ३य सवन में होत्रकों की ऋचाएं समान होती हैं॥ ५

—❀— २७ तमः अध्यायः समाप्तः —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ६, अध्याय ३

अध्याय २८

३ सवनोंकी होत्रकयाज्या

खण्ड १—प्रात-सवन में चमसों के सोम से भरे जाने पर मैत्रावरुण वृष, पीत, सुत, मद् शब्दोंवाली १०९७. आ त्वा वहन्तु हरयः...[ऋ १.१६.१]पढ़े। वह इन्द्र विषयक न्यून [९] मन्त्र पढ़ता है [क्योंकि न्यून में ही रेतः- सिञ्चन होता है।

मध्यन्दिन में १० मन्त्र पढ़ता है [रेतः मध्य भाग में पहुंच कर स्थूल हो जाता है।

३य सवन में न्यून [९] मन्त्र पढ़ता है [क्योंकि अल्प योनिद्वार से सन्तान उत्पन्न होती हैं।

वह पूरे सूक्त पढ़कर गर्भरूप यजमान को ही देवयोनि यज्ञ से उत्पन्न करता है।

कोई कहते हैं कि ३ सवनों में ७-७ मन्त्र पढ़े, ७ ही ७ याज्या पढ़कर वषट् करते हैं, उनकी ये पुरोनुवाक्या हो जायेंगीं।

किन्तु ऐसा न करे, क्योंकि ७ संख्या वादी यजमान के रेतः का, और यजमान का नाश कर देते हैं क्योंकि यजमान ही सूक्त है।

९ से इसको मैत्रावरुण इस लोक से अन्तरिक्ष को १० से अन्तरिक्ष से उस लोक को, जो अन्तरिक्ष से बड़ा है, और ९ से उस लोक से स्वर्ग को ले जाता है। वे उसको स्वर्ग नहीं ले जा सकते जो ७-७ पढ़ते हैं अतः पूरे-पूरे ही सूक्त पढ़े। १(९)[१९९]

खण्ड २— प्रश्न– जब यज्ञ इन्द्र का है तो प्रातः-सवन के प्रस्थित सोमयाग में होता और ब्राह्मणाच्छंसी ये २ ही, १०९८— इदं ते सोम्यं मधु...[ऋ ८.६६ ८] से होता, और १०९९. इन्द्र त्वा वृषभं वयं [ऋ ३.४०.१] से ब्राह्मणाच्छंसी, प्रत्यक्ष ऐन्द्री ऋचा से यज्ञ करते हैं, अन्य ५ ऋत्विज नाना देवताओं-वाली से क्यों ? वे इन्द्रवाली कैसे हो जाती हैं ?

उत्तर—मैत्रावरुण जिससे यज्ञ करता है वह है— ११००. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये।

इसमें 'पीत' शब्द इन्द्र वाला है, इससे उसको तृप्त करता है।

११०१.मरुतो यस्य हि क्षये...स सु गोपा [१.८६] यह पोता की याज्या है,वह'गोपा'से तृप्त करता है।

११०२. अग्ने पत्नीरिहावह त्वष्टारं सोमपीतये। ऋ १.१२.९

इससे नेष्टा यज्ञ करता है। यह त्वष्टा इन्द्र है।

११०३. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। ऋ ८.४३.११

इससे आग्नीध्र यज्ञ करता है, यहाँ वेधा इन्द्र है।

११०४. प्रातर्यावभिरागतं देवेभिर्जेन्यावसू।
इन्द्राग्नी सोमपीतये॥ ऋ ८.३८.७

यह अच्छावाक की ऋचा स्वयं 'इन्द्र'-समृद्ध है।

इस प्रकर ये ऐन्द्री, नाना देवता वाली, गायत्री छन्द से आग्नेयी हैं। इनसे ३ तरह के देवताओं का सम्बध प्राप्त करता है। २(१०)[१९७]

❀ मध्यन्दिन का उन्नीयमान सूक्त ❀

खण्ड ३— होता मध्य सवन में पढ़ता है—
११०५. असावि देवं गोऋजीकमन्धः [ऋ ७.२१.१]

यह सूक्त वृषन्, पीत, सुत, मद् शब्दों वाला रूप समृद्ध है। इसमें इन्द्र और त्रिष्टुप् होनेसे वह मध्य सवन का है।

प्रश्न— ३य सवन का 'मद्' २य में कैसे आया?

उत्तर— ३य के समान मध्य सवन भी देवों को हर्षित करता है। अतः वहाँ भी मद् वाली ऋचाएँ पढ़ते और उनसे यज्ञ करते हैं।

वे सभी ७ ऋत्विज प्रस्थित सोमों की इन्द्र की प्रत्यक्ष ऋचाओं से यज्ञ करते हैं। पहले ३ के मन्त्र अभि पूर्वक तृदि धातु के रूप से युक्त होते हैं—

१ होता—पिबा सोममभि यमुग्र तर्द [ऋ ६.१७.१]
११०६. २.मैत्रावरुण-स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रः ऋ ६.१७.२
११०७-- ३. ब्राह्मणाच्छंसी— एवा पाहि प्रत्नथा ऋ ६.१७.३

(४) पोता का याज्य यह है—

११०८. अर्वाङ्हि सोमकामं त्वाहुः (ऋ० १.१०४.९)

(५) नेष्टा का याज्य—

११०९. तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ्। (ऋ० ३.३५.६)

(६) अच्छावाक् का याज्य यह है—

१११०. इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना...... (ऋ० ३।३६।२)

(७) आग्नीध्र का याज्य है—

११११. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा.......(ऋ० ३।३२।१५)

इनमें 'अभितृण' वाले मन्त्र हैं। इन्द्र ने पहले प्रातः सवन में विजय पाई थी। परन्तु इन मन्त्रों द्वारा मध्य-सवन में भेदन किया (अभितृणत्) इसलिये 'अभितृण' वाले मन्त्र बोले जाते हैं। (१)

खण्ड १२—तृतीय सवन में सोम के उठाने पर होता यह मन्त्र बोलता है:—

१११२. इहोप यात शवसो नपातः (ऋ० ४।३५।१)

इनमें वृषन् पीत, सुत, मद् शब्द आये हैं, इस लिये इनमें रूपसमृद्धता है। यह इन्द्र और ऋभुओं के मन्त्र हैं।

प्रश्न—जब ऋभुओं की स्तुति नहीं की जाती तो यह तीसरे सवन के पवमान मन्त्र ऋभुओं के क्यों कहलाते हैं? उत्तर—पिता प्रजापति ने मर्त्य ऋभुओं को अमर्त्य करके तीसरे सवन में भाग दिया। इसलिए ऋभुओं के मन्त्र तो नहीं बोलते किन्तु पवमान स्तोत्रों को आर्भव कहते हैं।

एक ऋषि का प्रश्न—तीसरे सवन में त्रिष्टुप् छन्द क्यों लाते हैं? प्रातः सवन का छन्द गायत्री है। मध्य सवन का त्रिष्टुप् और तीसरे सवन का जगती। उत्तर—तीसरे सवन में सोमरस प्राप्त हो जाता है। अगर तीसरे सवन में ऐसा छन्द बोला जाय जिसका रस अभी समाप्त नहीं हुआ जैसे त्रिष्टुप् तो ऐसा करने से तृतीय सवन रस-वाला हो जाता है।

इस सवन में इन्द्र को भी भाग मिलता है।

इस पर प्रश्न—जब तीसरा सवन इन्द्र और ऋभुओं का है, और उपस्थित सोम के लिए होता इन्द्र और ऋभुओं का ही याज्य मन्त्र बोलता है तो फिर इतर ऋत्विज नाना देवताओं के याज्य मन्त्र क्यों बोलते हैं?

(१) होता के याज्य में—

इन्द्रः ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम्। (ऋ० ३.६०.५) ऋभुओं का स्पष्ट लेख है। लेकिन दूसरों में स्पष्ट लेख नहीं।

उत्तर—अन्य ऋत्विजों के याज्य मन्त्रों में भी ऋभुओं का संकेत है—

(२) मैत्रावरुण का याज्य—

१११३. इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतम्। (ऋ० ६।६८।१०)

इसमें एक पद है युवोरथो अध्वरं देववीतये। इसमें देव बहुवचन है। यह ऋभुओं का रूप है।

(३) ब्राह्मणाच्छंसी का याज्य—

१११४. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते...... (ऋ० ४।५०।१०)

इसमें 'विशन्त्विन्दवः स्वाभुवः' पद आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(४) पोता का याज्य मन्त्र है—

१११५. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो...... (ऋ० १।८५।६)

इसमें 'रघु पत्वानः प्रजिगात बाहुभिः' आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(५) नेष्टा का याज्य मन्त्र यह है—

१११६. अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन...... (ऋ० २.३६.३)

इसमें 'गंतन' बहुवचन है। यह बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(६) अच्छावाक् का याज्य यह है

१११७. इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य...... (ऋ ६ ६९ ७)

इसमें 'आवामंधांसि मदिराण्यग्मन्'...बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

(७) आग्नीध्र का याज्य यह है—

१११८. इमं स्तोमर्हते जातवेदसे (ऋ० १।९४।१)

इसमें 'रथमिव संमहेमा' आया है। यह बहुवचन है। बहुवचन ऋभुओं का रूप है।

इस प्रकार यह सब मंत्र ऐन्द्र-आर्भव हो जाते हैं।

दूसरे देवताओं के मन्त्रों से उन उन देवताओं को भी प्रसन्न करता है जो जगत् के विजेता हैं। इसलिये तीसरे सवन की समृद्धि के लिये जगती छन्द की आवश्यकता होती है। (४) (१२) [१९९]

खण्ड १३—प्रश्न—कुछ होत्रों में उक्थ (शस्त्र होता है। कुछ में नहीं होता। फिर सब होत्र बराबर और उक्थ वाले कैसे हो जाते हैं? उत्तर—ये उक्थ्य वाले और अनुक्थ्य वाले साथ साथ पाठ किये जाते हैं। इसलिये वे सब समान कहलाते हैं, और उनकी विषमता दूर हो जाती है।

प्रश्न—होत्रक लोग प्रातःसवन और मध्यसवन में ही शस्त्र पढ़ते हैं। फिर यह तीसरे सवन में पढ़े के बराबर कैसे हो जाता है? उत्तर—क्योंकि वे मध्यसवन में दो-दो सूक्त पढ़ते हैं।

प्रश्न—होत्रक होता के बराबर दो सूक्त क्यों पढ़ते हैं?
उत्तर वे दो देवताओं के लिये होते हैं। (५) (१३) [२००]

खण्ड १४—प्रश्न—जब तीन होत्रक ही उक्थ वाले हैं अन्य नहीं, तो वे उक्थ वाले कैसे समझे जा सकते हैं? उत्तर आग्नीध्र का उक्थ आज्य शस्त्र है। पोता का मरुत्वतीय, नेष्टा का वैश्वदेव, इस प्रकार यह याज्य उक्थ वाले हो जाते हैं।

प्रश्न—अन्य होत्रकों को तो एक वार ही आदेश दिया जाता है तो पोता को और नेष्टा को क्यों दो वार आदेश दिया जाता है? उत्तर—(इसके लिये गाथा है)—

जब गायत्री ने सुपर्ण होकर सोम को निकाला तो इन्द्र ने इन दोनों के उक्थ काट कर होता को दे दिये और कहा, 'तुम न बुलाना। तुम योग्य नहीं हो।' देवों ने कहा "इन दोनों को वाणों से प्रभावित कर दें।" अर्थात् दो वार आदेश देकर उसका बदला चुका दें, इसलिये इन पोता और नेष्टा को दो वार आदेश दिये जाने लगे।

आग्नीध्र के याज्य में एक ऋचा बढ़ा दी। इसलिये उसके याज्य में एक ऋचा अधिक होती है।

कुछ लोग पूछते हैं कि जब मैत्रावरुण आदेश देता है "होता यक्षत्" "होता यक्षत्" (होता याज्य पढ़े) तो यह आदेश केवल होता को ही क्यों नहीं देता। उनको क्यों देता है जो होता नहीं होते, केवल होता के मन्त्रों को उच्चारते मात्र हैं? इसका उत्तर यह है कि होता प्राण है। सब ऋत्विज् भी प्राण हैं। इस आदेश का प्रयोजन यह है कि "प्राण याज्य पढ़े", "प्राण याज्य पढ़ें।"

प्रश्न—क्या यह आदेश उद्गाताओं के लिये भी हैं उत्तर—हां, हैं। क्योंकि मैत्रावरुण मन्त्र जप करके कहता है 'तुम स्तुति करो।'

प्रश्न—क्या अच्छावाक का कुछ प्रवर (विशेषता) होता है? उत्तर—हाँ होता है। क्योंकि अध्वर्यु उससे कहता है, 'अच्छावाक, कह जो कुछ तुझे कहना है।'

जब मैत्रावरुण तीसरे सवन में इन्द्र-वरुण का शस्त्र कहता है तो अग्नि के लिए स्तोत्रिय और अनुरूप क्यों पढ़े जाते हैं? देवों ने अग्नि को मुखं बना के ही असुरों को उक्थों से निकाल दिया। इस लिये स्तोत्रिय और अनुरूप अग्नि के होते हैं।

प्रश्न—जब तीसरे सवन में ब्राह्मणाच्छंसी इन्द्र और बृहस्पति के लिए शस्त्र वालता है और अच्छावाक इन्द्र और विष्णु के लिए, तो तीसरे सवन में स्तोत्रिय और अनुरूप इन्द्र के कैसे होते है? उत्तर इन्द्र ने असुरों को उक्थ्यों से निकाल कर पराजित कर दिया और उसने देवों से कहा, 'मेरा साथ कौन देगा?' देवों ने कहा, 'मैं, मैं।' और उन्होंने उसका साथ दिया। लेकिन चूंकि इन्द्र ने पहले विजय पाई इसलिये स्तोत्रिय और अनुरूप इन्द्र के होते हैं। और चूंकि देवों ने कहा, 'मैं साथ दूंगा' और दिया भी इसलिये ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक नाना देवताओं के लिये मन्त्र पढ़ता है। (६)

खण्ड १५ प्रश्न—जब तीसरा सवन विश्वेदेवा का है तो तीसरे सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले मन्त्र क्यों बोले जाते हैं? उत्तर—इन्द्र से आरम्भ करके ही चलते हैं। जगती छन्द इसलिये है कि तीसरा सवन जगती से सम्बन्ध रखता है, जगत् की इच्छा के लिये। और जो कोई छन्द पीछे पढ़ा जाता है वह भी जगती से सम्बन्धित हो जाता है, जब तृतीय सवन के आरम्भ में इन्द्र के और जगती छन्द वाले सूक्त पढ़े जाते हैं।

शस्त्रों के अन्त में अच्छावाक त्रिष्टुप् छन्द का सूक्त बोलता है:- स वां कर्मण.... (ऋ० ६।६९।१) यहाँ 'कर्म' से तात्पर्य 'सोमपान' की प्रशंसा है। इसमें 'समिष:' पद है। यहाँ 'इस' का अर्थ है अन्न। अन्न की प्राप्ति के लिये। 'अरिष्टैनः पथिभिः पारयन्त' इस पद के पढ़ने का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक दिन कल्याण के लिये स्तुति करता है।

प्रश्न जब तीसरा सवन जगती छन्द वाला है तो तीसरे सवन के अन्त में त्रिष्टुप् छन्द क्यों पढ़ते हैं? इसका उत्तर यह है कि त्रिष्टुप् वीर्य है। अन्त में वीर्य की प्रतिष्ठा हो

जाती हैं।

मैत्रावरुण का अन्त का मन्त्र यह है :—

इयमिन्द्रं तरुणमष्ट मे गो: (ऋ० ७:८४।५)

ब्राह्मणाच्छंसी का :

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात् (ऋ० १०।४२।११)

अच्छावाक का :—

उभा जिग्यथुः (ऋ ६।६९।८)

वे दोनों ही जीते थे। कोई पराजित नहीं हुआ। अर्थात् उन्होंने हार नहीं मानी। उनमें से कोई नहीं हारा।

'इन्द्रश्च विष्णो यदं पस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं विनदैरयेथाम्' से तात्पर्य है कि इन्द्र और विष्णु दोनों ही असुरों से लड़े। और उनको जीत कर कहा, "लाओ, बाँट लें।" असुरों ने कहा, "अच्छा"। इन्द्र ने कहा, "यह विष्णु तीन पैर में जितना नाप ले वह हमारा, शेष तुम्हारा"। वह इन लोकों में चला, फिर वेदों में, फिर वाणी में।

प्रश्न—सहस्र का क्या अर्थ है? इसका उत्तर देना चाहिये कि "यह लोक, वेद और वाक्"।

अच्छावाक उक्थ्य के अन्त में कहता है—

'ऐरयेथां, ऐरयेथां' तुम दोनों ने जीता।

अच्छावाक् का काम अन्त का है। अग्निष्टोम और अतिरात्र में होता अन्त के भाग को पढ़ता है। 'षोडशी' में सन्देह है कि अन्त के चार अक्षर पढ़े जायँ या न पढ़े जायँ। कुछ कहते हैं कि अवश्य पढ़े जायँ। जब अन्य क्रतुओं में पढ़े जाते हैं तो इसमें क्यों न पढ़ा जाय।' (७)

खण्ड १६—प्रश्न—तीसरा सवन नाराशंसी का है तो अच्छावाक् शिल्पों में उन मन्त्रों को क्यों पढ़ता है जो नाराशंसी के नहीं होते? उत्तर—नाराशंसी विकार का सूचक है। वीर्य थोड़ा थोड़ा विकृत होता जाता है। तब पूर्ण विकार के बाद पैदा होता है। नाराशंस छन्द मृदु और शिथिल है। अच्छावाक् सबसे पिछला बोलने वाला है। इस लिये ऐसा है। पिछले भाग को भली भाँति स्थगित कर देना चाहिये। इसलिये अच्छावाक् शिल्पों में नाराशंसी के मन्त्र नहीं बोलता। जिससे अन्त दृढ़ हो जाय। (८)

ऐतरेय ब्राह्मण की छठी पञ्चिका का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।

पंचिका ६, अध्याय ४

अध्याय २९

खण्ड १७ प्रातः सवन में अहीन संतति के (अर्थात् वह सोम यज्ञ जिनमें कई दिन लगते हैं और एक दिन तथा दूसरे दिनों सम्बन्ध रखना पड़ता है) जो अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन का अनुरूप करते हैं वह उसी प्रकार होता है जैसे एकाह में (जिस सोम यज्ञ में एक ही दिन लगता है उसे 'एकाह' कहते हैं)। जैसे 'एकाह' के ३ सवनों में सम्बन्ध होता है उसी प्रकार 'अहीन' के दिनों में भी। प्रातः सवन में अगले दिन के स्तोत्रिय को पहले दिन अनुरूप इस लिये करते हैं कि 'अहीन' के दिनों में सम्बन्ध हो जाए। इस प्रकार सम्बन्ध हो जाता है।

देवों और ऋषियों ने विचारा कि यज्ञ में दिनों को समान करके सम्बन्ध स्थापित करें। तब उन्होंने यह समानता सोची कि प्रगाथ एक ही हों, प्रतिपद् एक ही हों और सूक्त एक ही हों। इन्द्र घर में चलने वाला सा है। वह यज्ञ में जहाँ पहले दिन चलता है वहीं अगले दिनों में भी। (अर्थात् इन्द्र यज्ञ में सर्वत्र विचारता है)। इस प्रकार यज्ञ के सब दिनों में इन्द्र के विचरने से समानता हो जाती है। (१) (१७) (२०४)

सम्पात सूक्त

खण्ड १८—इन सम्पात सूक्तों का सबसे पहला ऋषि विश्वामित्र हुआ। विश्वामित्र के हुये उन मन्त्रों को वामदेव ने फैलाया असृजत। वे सूक्त ये हैं :—

११२३. एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्....(ऋ० ४।१९)

११२४. यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वृष्टि....(ऋ० ४।२२)

११२५. कथा महामवृधत् कस्य होतुः (ऋ० ४।२३)

इनको उसने शिष्योंको शीघ्र पढ़ाया अतः सम्पात नाम पड़ा। विश्वामित्र ने कहा कि मेरे देखे मन्त्रों को वामदेवने फैला दिया। मैं ऐसे ही अन्य मन्त्र देखूँ अतः उसने ये सूक्त देखे—

११२६. सद्यो ह जातो वृषभः... ऋ ३.४८
११२७. इन्द्रः पूर्भिद-तिरद् ऋ ३.३४
११२८. इमा मू षु प्रभृतिम्... ऋ ३.३६
११२६. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः... ऋ ३.३०
११३०. शासद् वह्निर्दु हितुः... ऋ ३.३१
११३१. अभि तष्टेव दीधया मनीषा... ऋ ३.३८
११३२. य एक इद्धव्यः... (भरद्वाजसूक्तं) ऋ ६.२२

वशिष्ठ के २ सूक्त—

११३३. यस्तिग्मश्रृङ्गो वृषभो न भीमः... ऋ ७.१९
११३४. उदु ब्रह्माण्यैरत... ऋ ६.२३

नोधा का सूक्त—

११३५. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय... ऋ १.६१

अहीन सूक्त

❋ अहीन सूक्त ❋

मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, अच्छावाक षडह के प्रातःसवन में स्तोत्रियो के पढ़ने के पश्चात् मध्य-सवन में नीचे लिखे अहीन सूक्तों को पढ़ते हैं—

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी (देखो १०७६) क्योंकि मित्रावरुण सत्य वाला है।

ब्राह्मणाच्छंसी ऋ १.६१ पढ़ता है जिसमें इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा आये हैं, और

११३६. इदं ब्रह्माणि गौतमासो अकन्...

इसमें ब्रह्म शब्द आया है।

अच्छावाक यह सूक्त पढ़ता है—

११३७ शासद् वह्निर्जनयन्त वह्निम् ...

उसमें वह्नि शब्द आया है।

प्रश्न— अच्छावाक इस सूक्त को परांचि और अभ्यावर्ति दोनों दिनों में क्यों पढ़ता है?

उत्तर— अच्छावाक जुआ को खींचनेवाले घोड़े के समान अगुआ होकर इनको दोनों प्रकार के दिनों में पढ़ता है।

ये ५ दिनों में पढ़े जाते हैं—चतुर्विंश, अभिजित्, विषुवत्, विश्वजि और महाव्रत। ये दिन 'अहीन' हैं। क्योंकि इनमें कुछ छूटता नहीं। अर्थात् यह वार वार नहीं आते। इसलिये इन दिनों अहीन सूक्त पढ़े जाते हैं। इनको पढ़ते हुए वे समझते हैं, हम स्वर्ग को पूर्णरूप और समृद्धता से प्राप्त होवें। जब वे इनका पाठ करते हैं तो इन्द्र को बुलाते हैं जैसे गाय के पास बैलको बुलाते हैं। यह पाठ सम्बन्ध को स्थित रखने के लिए करते हैं। (१८)२०५

खण्ड१९ — इसलिये मैत्रावरुण षडह के पहले ३ दिनों में से प्रतिदिन इन तीन सम्पातों को उल्टे क्रमसे पढ़ता है। पहले दिन 'एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्' दूसरे दिन 'यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टी' तीसरे दिन 'कथा महामवृधत् कस्य होतुः'।

ब्राह्मणाच्छंसी ३ सम्पात सूक्तों को एक करके एक-एक दिन (दूसरे तीन दिनों में) उल्टे क्रम से पढ़ता है —पहले दिन, 'इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैः', दूसरे दिन 'एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्', तीसरे दिन, यस्तिग्मश्रृङ्गो वृषभो न भीमः।

अच्छावाक ३ सम्पात सूक्तों को १-१ करके उल्टे क्रम से १—१ दिन पढ़ता है —

पहले दिन इमामूषु, दूसरे दिन इच्छन्ति त्वा, तीसरे दिन शासद् वह्नि:...।

ये ६ और ३ सूक्त प्रतिदिन पढ़े जानेवाले १२ हो जाते हैं। १२ मासोंका संवत्सर प्रजापति है जो यज्ञ है। इस प्रकार संवत्सर-प्रजापति प्रतिदिन के कृत्य को यज्ञ में प्रतिष्ठित कर देते हैं।

इन सूक्तोंके बीच बीचमें विमद ऋषिके विराज मन्त्रों को ४थ दिन बिना न्यूंख के, पंक्ति मन्त्रों को ५म दिन, परुच्छेप मन्त्र छठे दिन पढ़ना चाहिए।

महास्तोम के दिनों में ऋत्विज निम्न मन्त्र पढ़ें—

मैत्रावरुण—११३८.को अद्य नर्यो देवकामः(४'२५.१)
ब्राह्मणाच्छंसी— ११३९—वने न वा यो न्यधायि चाकन्... ऋ १०.२९.१, अच्छावाक—
११४०—आ याह्यर्वाङ्उप बन्धुरेष्ठा (१.४२ १)

इन आवपन मन्त्रों से देवों-ऋषियों ने स्वर्ग को जीता और इन्हीं से यजमान स्वर्ग को पाता है। २

खण्ड २०—उन अहीन सूक्तों के पहले प्रतिदिन मैत्रावरुण इस सूक्त का पाठ करता है—

११४१. सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः...(ऋ ३-४८)

स्वर्ग-सम्बन्धी इस सूक्तसे यजमान स्वर्ग पाता है।

यह विश्वामित्र का सूक्त है जो सब का मित्र था अतः जो इस रहस्यको समझता है उसके सब मित्र हो जाते हैं। इसमें वृषभ, पशुमत् शब्द पशुओं की वृद्धिके लिए आये हैं। इसमें ५ ऋचाएँ हैं। पंक्ति छन्द में ५ चरण होते हैं। वह अन्न है। यह उस की प्राप्ति के लिए है।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रतिदिन यह ब्रह्मासूक्त पढ़ताहै—
११४२. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्य... (ऋ ७.२६)

इसमें ब्रह्म शब्द आनेसे रूप-समृद्धता है। इससे देवों-ऋषियों ने स्वर्ग पाया,यजमान भी पा सकते हैं।

यह वशिष्ठ का सूक्त है। उसके समान यजमान भी इन्द्र का प्रिय धाम और परम लोक पाता है।

इसमें ६ ऋचाएँ हैं। ये ६ ऋतुओं को पाने के लिए हैं। वह इनका सम्पात सूक्तों के पश्चात् पाठ करता है जिससे यजमान स्वर्ग पाने के लिए इस लोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

अच्छावाक प्रतिदिन यह सूक्त पढ़ता है—
अभि तष्टेव दीधया मनीषाम्... (देखा ११३१)

इसमें 'अभि प्रयाणि मर्मृशत् पराणि' आया है जिसका अर्थ है कि परलोक (स्वर्ग) में आनेवाले दिन प्रिय हैं जिनको वह प्राप्त कराता है।

कवीरिच्छामि संदृशे सुमधा का तात्पर्य उन ऋषियों से है जो कवि हैं। यह विश्वामित्र का है जो सबका मित्र था। इस रहस्य को समझने वाले के सभी मित्र हो जाते हैं।

अब वह अनिरुक्त प्रजापतिके सूक्त को प्रजापतिकी प्राप्ति के लिए पढ़ता है। यज्ञ का इन्द्रत्व न चला जाय अतः इसमें एकबार इन्द्र आया है। इसमें १० ऋचाएँ हैं। विराट् में १० अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है, उसे पाने के लिए यह है। प्राण १० हैं। उनको यजमान प्राप्त कर आत्मा में धारण करता है। वह इसको यहाँ इस लिए पढ़ता है कि इसी लोकमें प्रतिष्ठित यजमानों के लिए स्वर्ग मिल जाय। ४ (२०) [२०७]

खण्ड २१—प्रतिदिन के आरम्भ के मन्त्र कद्वत् हैं—
११४३-११४८—कस्तमिन्द्र त्वा वसुमा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा इत्ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥
ऋ ७.३२.१४-१५
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः॥
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आगमः॥
ऋ ८.३.१३-१४
कद्व न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा॥
कदूमहीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि
ऋ ८.६६.९-१०

क नाम प्रजापति और अन्न का है। उनको पाने के लिए कद्वन् (क वाले) मन्त्र हैं। ये यजमान प्रति दिन अशान्त अहीन सूक्तों से जुड़े रहते हैं उनको इनसे शान्त करते हैं, शान्त वे स्वर्ग दिलाते हैं।

अहीन सूक्तों का आरम्भ त्रिष्टुप् से करे।

कुछ इन्हें प्रगाथों से पहले पढ़ते और इन्हें धाय्या कहते हैं किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। होता राजा है और होत्रक प्रजा। यदि वे भी पढ़ने लगेंगे तो इसका अर्थ होगा कि प्रजा ने राजा का विरोध किया जो पाप है।

उसे जानना चाहिए कि ये त्रिष्टुप् मेरे प्रतिपद् (नाव की पतवारें) हैं। द्वादशाह या संवत्सर सत्र समुद्र के समान है जिसके पार पहुँचने के लिए अन्न जल आदि लेकर बैठते हैं वैसे ही यजमान त्रिष्टुपों से आरम्भ करे। यह वीर्यवान् छन्द यजमान को स्वर्ग दिलाकर वापस नहीं लौटाता।

किन्तु इनमें आहाव (शोंसावोम्) नहीं कहना चाहिए। छन्द समान गति से पढ़े, धाय्या न पढ़े। प्रसिद्ध सूक्तों से आरम्भ करे। यज्ञ का क्रम स्थिर रखने के लिए इन मन्त्रों को पढ़कर इन्द्रको बुलाता है जैसे गौ के पास बैलको बुलातेहैं। ५ (२१) [२०८]

खण्ड २२—सूक्तों से पहले मैत्रावरुण प्रतिदिन यह मन्त्र बोलता है—
११४९. अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभि भूते नुदस्व। अपोदीचो अप शूराधरा च उरौ यथा तव शर्मन् मदेम॥ ऋ १०.१३१.१

अर्थ— हे इन्द्र, सब अमित्रोंको दूर कर दो। हे

विजयी, उनको भगा दो, चाहे ले दक्षिण में हों चाहे उत्तर में। जिससे हम आपकी विस्तृत शरण से लाभ उठासकें इसमें अभयकी बात है,वह अभय चाहताहै।

ब्राह्मणाच्छंसी प्रतिदिन यह मन्त्र पढ़ता है—

११५०. ब्रह्मणा ते ब्राह्मयुजा युनज्मि... ऋ ३.३५.४

युनज्मि में जोड़ का भाव है। अहीन यज्ञोंका यही रूप है।

अच्छावाक प्रतिदिन यह मन्त्र पढ़ता है—

११५१. उरुं नु लोकमनु नेषि विद्वान्...ऋ ६.४७.८

अनु अहीन यज्ञों का और नेषि सत्र का रूप है। इन मन्त्रों को प्रतिदिन पढ़ें। अन्त के मन्त्र एक-समान हैं। इन्द्र यजमान के घर में व्यापक है। वह यज्ञ में है। जैसे गौ गौशाला में जाती है उसी तरह इन्द्र यज्ञ में जाता है।

अहीन यज्ञ शुनं हुवेम...(३.३०.२२) से समाप्त न करें। क्योंकि जो क्षत्रिय शत्रु को अपने राज्य में आने देताहै उसका राष्ट्र क्षीण होजाता है।६(२२)

अहीन की युक्तिविमुक्ति

खण्ड २३—अहीन यज्ञों की युक्ति-विमुक्ति—ब्राह्मणाच्छंसी के इन मन्त्रों से युक्त होता है —

व्यन्तरिक्षमतिरद् (ऋ ८.१४.७-९ देखो १०९३)

और इन मन्त्रों से विमुक्त होता है—

११५२. एवेदिन्द्रम्.... (ऋ ७.२३.६)

अच्छावाक के इस मन्त्र से युक्त होता है—

११५३. आहं सरस्वती वतोः... (ऋ ८.३८.१०)

इस से विमुक्त होता है—

११५४. नूनं सा ते... ऋ २.११.२१

मैत्रावरुण इस मन्त्र से युक्त होता है—

११५५. ते स्याम देव वरुण... ऋ ७.६६.९

और इससे विमुक्त होता है—

११५६. न ष्टुत... ऋ ४.१६.२१

जो अहीनों की युक्ति-विमुक्ति जानता है वही उन के क्रमको स्थित रख सकता है। २४वें दिन जोड़ना युक्ति और अन्तिम अतिरात्र के दिन अलग करना विमुक्ति है। यदि एकाह के मन्त्रोंसे समाप्त करते हैं तो अहीन यज्ञका कृत्य नहीं हो सकता। यदि अहीन का कृत्य करके समाप्त करते हैं तो थके बैलके समान यजमान भी यज्ञ से अलग हो जाता है अतः एकाह-अहीन दोनों कृत्यों से समाप्त करना चाहिए जैसे दूर की यात्रा वाले मंजिल पर बैल बदल देते हैं। इस तरह यज्ञ क्रमबद्ध हो जाता है और यजमान विश्राम ले लेते हैं।

दोनों सवनों में स्तोमों में नियत मन्त्रों से एक या दो से अधिक न बोले। अधिक बोलनेसे वनके समान हो जाता है। तीसरे सवन में स्वर्ग पाने के लिए अपरिमित मन्त्र बोले क्योंकि स्वर्ग अपरिमित है।

इस रहस्य को समझनेवालेका अहीन यज्ञ आरम्भ होकर बिना विघ्न के समाप्त होता है। ७(२३)२१०

वालखिल्य

खण्ड २४—देवोंने वल में गोओं [अज्ञानमें इन्द्रियों] को देखा, यज्ञ के द्वारा ही उनको वशमें किया, पृष्ठ्य षडह के षष्ठ दिन प्राप्त किया। प्रातः सवन में नभाक ऋषि के मन्त्र से वल की ताड़ना की और शिथिल कर दिया। उन्होंने ही तीसरे सवनमें वालखिल्य मन्त्ररूपी वज्रके वाचःकूट पद से वलको तोड़कर गौएँ निकालीं।

वैसे ही यजमान प्रातः सवन में नभाक-मन्त्र से वल की ताड़ना कर शिथिल करदेते हैं। अतः होत्रक प्रातः सवन में नाभाक तृचों को पढ़ते हैं—

मैत्रावरुण— यः ककुभो नि धारयः [८.४१.४-६]

ब्राह्मणाच्छंसी—पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः[८.४०.९-११]

अच्छावाक— ता हि मेध्यं भराणाम् [८.४०.३-५]

वालखिल्य सूक्त ६ हैं, जिनको ३ बार में पढ़े—१म चरण-चरण करके, फिर आधी-आधी ऋचा करके, फिर ऋचा बार। प्रथम बार प्रत्येक प्रगाथमें एक-एक चरण वाली रक्खे, वह 'वाचःकूट' है। ये एक-चरणा ५ हैं— ४ दशाह से और १ महाव्रत से।

८ अक्षरोंवाले महानाम्नी के चरणों में से आवश्यकतानुसार ले ले और शेष का आदर न करे।

जब आधी आधी या पूरी ऋचा पढ़े तो ५ एक-पदाओं और महानाम्नी पदोंको मिलाकर पूरा करले।

होता जब ६ वालखिल्यों को पहली बार पढ़ता है तो प्राण-वाणी का, दूसरी बार आँख-मन का और

तीसरी बार कान-आत्मा का विहार करता है। इस प्रकार विहार, वज्र वालखिल्य,वाच:कूट एकपदा और प्रणों के विहार की कामना पूरी होती है।

होता वालखिल्य प्रगाथों को बिना विहार के चौथी बार पढ़ता है। प्रगाथ पशु हैं। उनकी प्राप्ति के लिए।

यहाँ बीच में एकपदा नहीं मिलानी चाहिए। अगर मिलायेगा तो वाच:कूट के द्वारा पशुओंको मारकर उन से अलग कर देगा। यदि होत्रक ऐसा करे तो उसे मना करे। ऐसा हो ही जाता है, अतः ऐसे अवसर पर एक-पदा को मिलाना नहीं चाहिए।

वालखिल्य के पिछले २ (७, ८) सूक्तों को पर्याप्त के रूप में मिला देता है। वत्स के पुत्रसर्पि ने सुवल नामी यजमान के लिए इनको इसी प्रकार पढ़ा था। उसने कहा— मैंने बहुत अच्छे पशु पकड़ लिये, बहुत अच्छे मुझको मिलेंगे। उसे उतनी ही दक्षिणा दीगयी जितनी बड़े ऋत्विजों को। इस शस्त्रसे पशु और स्वर्ग मिलता है अत: इसका पाठ किया जाता है। ८(२४)[२११]

दूरोहण सूक्त

खण्ड २५— अब होता दूरोहण पढ़ता है जिसके विषय में पहले (४.२० में) कहा जा चुका है। जिस को पशुओंकी कामना हो वह इन्द्रका सूक्त पढ़े क्यों कि वे उस के हैं। ये जगती छन्द में हों, क्योंकि वे जागत (गतिशील) हैं। यह महान् हों जिससे बहुत पशु मिलें। वरु ऋषि का सूक्त (प्र त इवामहे ऋ० १०.९६) पढ़े जो महान् और जगती छन्द में भी है।

प्रतिष्ठा की कामना हो तो इन्द्र-वरुण का सूक्त पढ़े क्योंकि यह होत्र उसीका है, यह उसकी प्रतिष्ठा है। उसकी याज्या उसकी अपनी ही प्रतिष्ठामें स्थित है। उसका सूक्त निविद के समान है जिससे कामना पूरी होजाती है। जब सूक्त चुनें तो सुपर्ण ऋषि का (इमानि वां भागधेयानि ....ऋ ८.५९) चुनें जिससे इन्द्र-वरुण तथा सुपर्ण सम्बन्धी कामना एक साथ पूरी हो सकती है। ६ (२५) [२१२]

खण्ड २६. प्रश्न— दूरोहण के साथ छठे दिनके अहीन सूक्त पढ़े या नहीं?

उत्तर— अवश्य पढ़े, जब अन्य दिन पढ़ता है तो आज क्यों न पढ़े?

कुछ विद्वान् कहते हैं कि न पढ़े। छठादिन स्वर्ग लोक है जो असमायी है। सब नहीं पा सकते कोई विरला ही पहुँचता है। यदि दूरोहण के साथ अन्य सूक्त भी पढ़े जायँगे तो सभी बराबर हो जायँगे। अतः न पढ़े। स्तोत्रिय आत्मा और वालखिल्य प्राण हैं। जब अहीन सूक्तों का दूरोहण के साथ पाठ करता है तो इन २ देवताओंके द्वारा मानो यजमान के प्राण ले लेता है। अतः न पढ़े।

अगर मैत्रावरुण सोचे कि मैंने वालखिल्य पढ़ लिया, अब दूरोहण के पूर्व एकाह सूक्त पढ़ूं तो उसे ऐसा न करना चाहिए। यदि अभिमान हो तो पढ़ले किन्तु न पढ़ना अच्छा है। वालखिल्य इन्द्र के हैं उनमें बारह अक्षरों के चरण होते हैं। जगती छन्द के इन्द्रके सूक्त से जो कामना पूरी हो सकती है वह इनसे भी हो सकती है। न पढ़ने के लिए एक हेतु यहभी है कि ये इन्द्र-वरुणके सूक्त हैं जिसकी ही याज्या से यज्ञ की समाप्ति होती है।

प्रश्न-- स्तोत्रों में विहृत वालखिल्यों की गणना है या अविहृत की?

उत्तर-- विहृतों की। १२ अक्षरों का चरण ८ अक्षरों के चरण से मिल जाता है।

प्रश्न- यदि शस्त्र में अग्नि, इन्द्र, वरुण ३ देवता हों तो केवल इन्द्र वरुण की याज्या कैसे पढ़े; अग्नि को कैसे छोड़ दें?

उत्तर- अग्नि और वरुण तो एक ही हैं। मन्त्र भी यही कहता है--

११५८. त्वमग्ने वरुणो जायसे....(ऋ ५.३.१)

अतः इन्द्र-वरुण-याज्या में अग्नि नहीं छूटता।

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की षष्ठ पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय समाप्त।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ६, अध्याय ५

शिल्प सूक्त

खण्ड २७-- शिल्प-सूक्तों को पढ़ते हैं। मानवी शिल्प देव-शिल्पों की अनुकृति हैं। हाथी आदि खिलौने, दर्पण, वस्त्र, आभूषण, रथ-- सब शिल्प हैं। इसे समझनेवाला शिल्प जान सकता है। इस से आत्म-संस्कार होता, आत्मा छन्दोमय होती है।

नाभानेदिष्ठ- नाराशंस

१. होता नाभानेदिष्ठ 'इदमित्था... (ऋ १०.६१) सूक्त पढ़ता है जो अनिरुक्त है क्योंकि उसका नाम नहीं लेते। ऋ १०.३१.६ में प्रजापति-द्वारा भूमि में रेत:-सिंचन का वर्णन है।

अब नाराशंस(ऋ १०.६२)पढ़ता है। तह तरों की ही वाणी है जिसे वह सन्तानमें रखता है जिससे वह बोलनेवाली उत्पन्न होती है।

कुछ नाराशंस को नाभानेदिष्ठ से पहले बोवल हैं क्योंकि वाणी मस्तिष्क में आगे है,कुछ पीछे बोलते हैं क्योंकि वह जीभ के पीछे है। इसे मध्य में बोले क्योंकि वाणी मध्य में है। अत: नाराशंस नाभानेदिष्ठ के समाप्त होनेसे पहले, २५ ऋचाओं के बाद पढ़ना चाहिए। होता यजमान को वीर्य के रूप में मैत्रावरुण के लिए देता हुआ कहता है कि तू इसे प्राण वाला बना। १(२७)[२१४]

बालखिल्य

खण्ड २८-- २.मैत्रावरुण बालखिल्य (ऋ ८.४६ से ५९ तक ११ सूक्त) विहृत (मिले हुए) पढ़ कर प्राण बनाता है क्योंकि प्राण-अपान परस्पर मिले हैं। पहले २ सूक्तों में चरण बार, दूसरे दोमें आधी आधी ऋचा और तीसरे दो में ऋचाबार पढ़े।

पहले दो में प्राण-वाणी, दूसरे दो में चक्षु-मन, तीसरे दो में कान-आत्मा को वह मिलाता है।

कुछ दो बृहती और दो सतोबृहती को मिलाते हैं। इससे इच्छा तो पूरी हो जाती है किन्तु प्रगाथ नहीं बनते। एक पाद मिलाने से प्रगाथ होजाते हैं।

बृहतीछन्द आत्मा और सतोबृहती प्राण हैं। दोनों को मिला कर ऐसे पढ़े कि प्रगाथ बन जायँ।

बृहती आत्मा है, सतोबृहती पशु। दोनों मिलाकर पढ़ने से आत्मा और पशु दोनों बढ़ते हैं।

पिछले ७-८ सूक्त क्रम बदलकर पढ़े जाते हैं, यही उनका विहार है।

मैत्रावरुण यजमानकेप्राण बनाकर ब्राह्मणाच्छंसी को दे देता है कि अब तू उत्पन्न कर। २(२८)२१५

सुकीर्ति और वृषाकपि

खण्ड २९--अब ३. ब्राह्मणाच्छंसी सुकीर्ति सूक्त (ऋ १०.१३१) और वृषाकपि सूक्त (ऋ १०.८६) को पढ़ता है। सुकीर्ति देवयोनि है जिससे यजमान को उत्पन्न करता है। वृषाकपि से आत्मा को संयुक्त करता है। उसे न्यूंख रूपी अन्न के साथ पढ़ता है। इस प्रकार वह माँके समान अन्नसे युक्त करता है।

यह सूक्त ५ पाद के पंक्ति छन्द में है पुरुषके भी ५ भाग हैं--लोम, त्वचा, मांस, अस्थि मज्जा। वह उसे पुरुष के समान नया जन्म देता है और अच्छावाक को दे देता है कि इसे प्रतिष्ठा दे। ३(२९)२१६

एवयामरुत्

खण्ड ३०--४.अच्छावाक एवयामरुत(ऋ५.८७) को पढ़ता है, इससे प्रतिष्ठा देता है। इसे न्यूंख रूपी अन्न के साथ पढ़ता है। इसका छन्द जगती और अतिजगती है। संसार में या तो जगत् है या अतिजगत्। इसके देवता मरुत् हैं जो जल-अन्न हैं। इन से वह युक्त करता है। ये उपर्युक्त सूक्त सहचर हैं, इन्हें साथ साथ ही पढ़ें। अलग पढ़ना पुरुषको वीर्य से अलग करना है। अत:साथही पढ़े या फिर न पढ़े।

विश्वजित् यज्ञ

अश्व के पौत्र, अश्वतर के पुत्र बुलिल ने विश्वजित् यज्ञ में होता बनते हुए यह किया कि मध्यसवन में दो सूक्त पढ़ाने के बाद एवयामरुत् पढ़ा। जब पढ़ रहा था तभी गौश्ल आकर कहने लगा--

होता, यह तेरा शस्त्र बिना पहियों जैसा क्यों चल रहा है ? यह दशा कैसे हुई ? एवयामरुत् तो उत्तर की ओर पढ़ा जाता है। मध्यसवन इन्द्र का है, उसे तू क्यों निकालना चाहता है ?

बुलिल– मैं इससे इन्द्रको नहीं निकालना चाहता।

गौश्ल-- तू चाहता है क्योंकि जगती-अतिजगती मध्य सवन के नहीं। यह सूक्त मरुतों का है, इसका पाठ यहाँ न होना चाहिए।

बुलिल--अच्छावाक,रुक जाओ, मैं ठीक करूंगा।

गौश्ल - इन्द्रका सूक्त पढ़ो जिसमें विष्णुकी छाप हो। हे होता,अपने शस्त्र में से एवयामरुत् छोड़ दो जो रुद्र धाय्याके पहले और मारुतशस्त्रके पीछे हो।

बुलिलने ऐसा ही किया,अब भी ऐसा ही करते हैं।

खण्ड ३१. शङ्का-- वालखिल्य प्राण,नाभानेदिष्ठ वीर्य है जो प्राणों से पहले है। जब विश्वजित्-अतिरात्र-षडह के छठे दिन मैत्रावरुण वालखिल्य को पढ़ता है तो नाभानेदिष्ठ को क्यों नहीं पढ़ता ? ऐसे ही ब्राह्मणाच्छंसी वृषाकपि को क्यों पढ़ता है जबकि नाभानेदिष्ठ नहीं पढ़ा जाता ?

उत्तर--आत्मा (शरीर) से वीर्य पहले है। यज्ञ से यजमानका संस्कार करते हैं। गर्भ एक ही दिन में नहीं बन जाता। जब पूरा बन जाता है तब उत्पन्न होता है, इसी प्रकार यज्ञ के पूरा होने पर यजमान पूरा यज्ञमय बनता है।

एवयामरुत् यजमान की प्रतिष्ठा है जिसे तीसरे सवन में अन्त में पढ़ा जाता है। ५(३१)[२१८]

खण्ड ३२--षडहके छठे दिन छन्दरस(आनन्द) बहने लगा। प्रजापति ने उसे अन्यत्र रख कर दबा दिया-- नाराशंसी से गायत्री का, रैभी (अथर्व २०.१२७.४-६) से त्रिष्टुप् का, पारिक्षिति (अ. २०. १२७.७-१०) से जगती का, कारव्य (अ. २०.१२७. ११-१४) से अनुष्टुप का रस रोका और होता ने उन्हें फिर रसयुक्त कर दिया। इसे समझनेवाले का यज्ञ रसवाले छन्दों से पूरा होता है।

देवों-ऋषियों ने नाराशंसी से स्वर्ग पाया, इसको समझने वाला भी स्वर्ग पाता है।

ये वृषाकपि के समान प्रग्राह से(२-३ पदोंके बाद रुक रुक कर) पढ़े जाते हैं, इनके पाठ में न्यूंख नहीं एक प्रकारका निनादं होता है यही इनका न्यूंखहै।

इन्हीं के समान रैभी, पारिक्षिति, कारव्या मन्त्र पढ़ेजाते हैं। क्योंकि देव-ऋषि रेभन्त: ध्वनि करते हुए इनको पढ़ते हुए स्वर्ग गये अत: रैभी नाम है।

अब वह पारिक्षिति (अथर्व० २०.१२७.७-१०) को पढ़ता है। अग्नि परिक्षित है (चारों ओर-घूमती है) । प्रजा अग्नि के चारों ओर रहती है, और अग्नि प्रजा के चारों ओर। जो इस रहस्य को समझता है, वह अग्नि की सायुज्यता, सारूप्यता,सालोक्यता प्राप्त करता है। पारिक्षिती मन्त्रों के विषय में एक और बात है। संवत्सर परिक्षित है। संवत्सर प्रजाके चारों ओर रहता है और प्रजा संवत्सर के चारों ओर रहती है।

वह कारव्या मन्त्रों को पढ़ता है। इनसे देवों ने कल्याण-कार्य किया वैसे ही यजमान भी करते हैं।

अब वह दिशां क्लृप्ति (अ. २०.१२८.१-५) को पढ़ता है। ५ मन्त्रों से ५ दिशाएँ प्रतिष्ठित करता है। इनमें न्यूंख -निनादं नहीं होता, आधा आधा मन्त्र पढ़ा जाता है।

वह प्रतिष्ठाके लिए जनकल्प(अ २०.१२८.६-११) मन्त्र पढ़ता है। वह दिशाओंमें प्रजाकी रक्षा करता है। फिर इन्द्र-गाथा (अ २०.१२८.१२-१६) पढ़ता है। इनसे देवोंने असुरोंको गाकर हरादिया। ऐसे ही यजमान शत्रुओं को हरा देता है। इन में न्यूंख-निनादं नहीं होता,ऋचा आधी आधी करके पढ़तेहैं।

ऐतश -प्रलाप

खण्ड ३३-- ब्राह्मणाच्छंसी ऐतश-प्रलाप पढ़ता है। ऐतश मुनि था। वह 'अग्नेरायुः मन्त्रोंका द्रष्टा था। कहते हैं कि ये मन्त्र यज्ञकी सब कमियोंको दूर कर देते हैं। उसने पुत्रों से कहा— पुत्रो, मैंने जिन

अग्नेरायुः मन्त्रों का दर्शन किया है उनको तुमसे कहूंगा, अवहेलना न करना। उसने आरम्भकिया—

११५८— एता अश्वा आप्लवन्ते।

११५६— प्रतीपं प्राति सत्वनम्। (अ २०.१२९)

उसी समय उसके वंशका अभ्यग्नि नामक व्यक्ति उसके पास गया और उसका मुंह बन्द करके बोला 'हमारा पिता पागल होगया है'। पिता बोला—जा, कोढ़ी होजा। तूने मेरी वाणी मार दी, नहीं तो मैं गौ की आयु १०० वर्ष और मनुष्य की १००० वर्ष कर देता। तूने मुझे रोक दिया: मैं शाप देता हूं कि तेरी सन्तान पापी हो। कहते हैं कि और्वाण गोत्रके ऐतशायनों में अभ्यग्नि लोग बहुत पापी हैं।

कुछ लोग ऐतशप्रलापको बहुत बड़ा देते हैं। कोई इसका निषेध नहीं करे। चाहे जितने मन्त्र पढ़ें, क्योंकि यह जीवन है। इसको समझने वाला यजमान के जीवन को बढ़ा देता है।

यह छन्दों का रस भी है। जो इसको समझता है वह अपना यज्ञ सरस छन्दों से करता है।

यह यज्ञ की त्रुटि दूर कर उसे पूर्ण करने के लिए भी है। यह अक्षिति है। इसके पाठ में कहते हैं कि मेरे यज्ञ में कोई भूल न हो, मेरा यज्ञ अक्षय हो।

यह निविद् के समान प्रत्येक पदपर रुककर पढ़ा जाता है और अन्त के पद में ओ३म् कहते हैं।

प्रवह्लिका मन्त्र

अब वह प्रवह्लिका मन्त्रों (अ २०.१३३.१-३)को पढ़ता है। इनसे देवों ने असुरों को ठंडा करके हरा दिया। ऐसे ही इनसे यजमान शत्रु को हरा देते हैं।

वह आजज्ञासेन्या मन्त्रों (अ २०.१३४.१-४) को पढ़ता है, इनसे देवोंने असुरोंको पहचानकर पछाड़ दिया। इसी प्रकार यजमान शत्रु को पछाड़ देते हैं।

प्रतिराध मन्त्र

वह प्रतिराध मन्त्रों (अ २०.१३५.१-३)को पढ़ता है। इनसे देवों ने असुरोंको फूट डालकर हरा दिया इसी प्रकार यजमान शत्रु को परास्त कर देते हैं।

अतिवाद मंत्र

अब वह अतिवाद मन्त्र(अ २०.१३५.४)पढ़ता है इससे देवों ने अति शब्द करके असुरों को पराजित इसी प्रकार यजमान शत्रुओंको पराजित करता है।

वह प्रतिष्ठा के लिए उपर्युक्त मन्त्रों को आधा आधा करके पढ़ता है। ७(३३) [२२०]

देवनीथ मंत्र

खण्ड ३४— देवनीथ (अथर्व० २०.१३५.५-१७) मन्त्रों को पढ़ता है। आदित्य और अंगिरस लोग स्वर्ग में जाने के लिये लड़ पड़े कि हम पहले जायेंगे। अंगिरसों ने मालूम कर लिया कि कल जो हम सोम यज्ञ करने वाले हैं उससे हम स्वर्ग पहुंच जायेंगे। उन्होंने अपने में से एक अग्नि नामवाले को भेजा कि जाकर आदित्यों से कहदो कि जो हम सोमयज्ञ कल करनेवाले हैं उससे हम स्वर्ग में पहले पहुंच जायंगे।

आदित्यों ने अग्नि को देखते ही सोम यज्ञ को जान लिया जिससे वह स्वर्ग को जा सके। अग्नि ने उनके पास आकर कहा 'कल हम सोम याग करने वाले हैं जिससे हम स्वर्ग पहुंच जायंगे।' उन्होंने उत्तर दिया

'हम भी तुमसे कहते हैं कि हम अभी सोम यज्ञ करनेवाले हैं जिससे हम स्वर्ग लोक में पहुँच जायंगे। लेकिन तुमको होता बनाकर ही हम स्वर्ग लोक में पहुंच सकते हैं', वह अच्छा कहकर लौट आया। और अंगिरसों से यह बात कहकर फिर आदित्यों के पास लौट आया। उन्होंने पूछा तूने कहा? उसने कहा—हाँ मैंने कहा। ये कहने लगे कि क्या तूने हमको वचन दिया था। उसने कहा कि वचन तो दिया था लेकिन आदित्यों को इनकार न कर सका। क्योंकि जो यज्ञ को रोपता है वह यश पाता है और जो यज्ञ में विघ्न डालता है वह यश से वंचित रह जाता है इसलिए मैंने नहीं रोका। इसलिए यदि कोई यज्ञका होता बननेसे इनकार करे तो केवल दो कारणोंसे, एक यह कि किसी अन्य यज्ञ में संलग्न हो, दूसरे यह कि वह यज्ञके लिए अयोग्य हो। (८)

खण्ड ३५—इसलिये अंगिरसों ने आदित्यों को यज्ञ में मदद दी। आदित्यों ने अंगिरसों को दक्षिणा में पूर्ण पृथ्वी दी। परन्तु जब उन्होंने पृथ्वी ली तो उसने इन को तपाडाला। इसलिये उन्होंने इसे त्याग दिया। वह सिंहनी होकर मुंह खोल कर आदमियोंको खाने दौड़ी। जलती पृथ्वी पर दरारें हो गयीं। अतः कहते हैं कि त्यागी हुई दक्षिणा न ले कि शोकयुक्त वह शोकयुक्त न करदे। यदि ले तो शत्रुको दे दे जिससे वह हार जाय।

अब आदित्यों [गुरूओं] के ध्यान में श्वेत अश्व के समान सूर्य आया। वे बोले— इसे अंगिरसों [प्राणाभ्यासी शिष्यों]के लिये दे दें। अतः देवनीथ मन्त्र हैं।

११६०. [१] आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन्। [२] तां ह जरितर्न प्रत्यायन्। [३] तामु ह जरितः प्रत्यायन्॥ (अ २०-१३५-६)

अर्थ- १. हे स्तुत्य ईश्वर; गुरु शिष्यों से दक्षिणा को लेते हैं। २. वे उसको नहीं लेते। वापस कर देते हैं। [३] उसको वे अध्यात्म-शिक्षणके लिए ले लेते हैं।

११६१. [४]तां ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णन् [५] तामु ह जरितः प्रत्यगृभ्णन्।[६]अहा नेत सन्नविचेतनानि [७] जज्ञा नेत सन्नपुरोगवासः॥ (७)

[४] वे उसे नहीं लेते [५]वे उसे लेते हैं [६]अँधेरे दिनों में न जाओ। यह (ज्ञान-सूर्य) विशेष प्रकाशक है। [७] हे ज्ञानियो, नेताके विना न जाओ। दक्षिणा यज्ञों की नेत्री है। जैसे बैल-विना गाड़ी, वैसे दक्षिणा-विना यज्ञ नष्ट होता है। अतः कहते हैं कि यज्ञ में दक्षिणा देनी ही चाहिए चाहे वह कम ही हो।

११६२. [८] उत श्वेत आशुपत्वा [९] उतो पद्याभिर्जविष्ठः। [१०] उतेमामाशु मानं पिपर्ति॥ (८)

[८] तथा सात्त्विक शीघ्रगामी होता है, [९] तथा पद्यमयी ऋचाओं से वेगवान् होता है [१०] तथा शीघ्र मान को पाता है।

११६३. [११] आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेळते [१२] इदं राधः प्रतिगृभ्णीह्यंगिरः। [१३] इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु॥ (९)

[११] आदित्य, रुद्र, वसु तेरी स्तुति करते हैं। [१२] हे योगी, इस योग-धनको ग्रहण करो, अतः वे उस धन के लेने की इच्छा करते हैं। [१३] यह धन विभूतियुक्त, प्रभावशाली, बड़ा, विस्तृत है।

११६४. [१४] देवा ददत्वा वरं [१५] तद्वो अस्तु सुचेतनम्। [१६] युष्मे अस्तु दिवे दिवे [१७] प्रत्येव गृभायत॥ १०॥

[१४] देव इस श्रेष्ठ धन को दें, [१५] वह तुम्हें सु-चेतन करनेवाला हो [१६] वह तुम्हें प्रतिदिन मिले, [१७] उसको अवश्य लो।

इस देवनीथ को निविद के समान पद पर रुक कर पढ़ता है और अन्तिम पद के बाद ओ३म् कहता है।

खण्ड ३६– अब वह भूतेच्छद(अ२०.१३५.११-१३) पढ़ता है। इनसे देवों ने युद्ध–माया से ऐश्वर्यको ढ़ँक कर असुरों को हराया वैसे ही यजमान शत्रुको हराते हैं। इनको प्रतिष्ठाके लिए आधी आधी करके पढ़ताहै।

अब वह आहनस्या [अ २०.१३६] मन्त्र पढ़ता है। मिथुन से वीर्य, उससे सन्तान होती है। उसे यह यजमानके लिए धारण कराता है। यह दस मन्त्र = विराट् = अन्न है जिससे वीर्य बनता है। इन्हें न्यूंखसे पढ़े। वह अन्न है। उससे वीर्य और प्रजा से युक्त करता है।

अब दधिक्रावन् मन्त्र[अ २०.१३७.३; ऋ ४.४०.६] पढ़ता है जो देवों का शोधक है। इससे वह ऐसी–वैसी वाणी शुद्ध करता है। यह अनुष्टुप् छन्द है जो वाणी है वह उसी के छन्द से उसको पवित्र करता है।

अब वह ३ पावमानी मन्त्रों को पढ़ता है—

११६५– सुतासो मधुमत्तमा...(ऋ ९.१०१.४-६)

ये भी पवित्र करनेवाले अनुष्टुप् वाणी के छन्द हैं।

अब वह इन्द्र–बृहस्पति के ३ मन्त्र पढ़ता है—

११६६-६७— अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठद्...; विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाह (८.९६)

बृहस्पतिके साथ इन्द्र देव-विरोधियों को हराता है। ऐसे ही यजमान पाप को हरा दे।

प्रश्न– छटे दिन ये सूक्त पढ़े या नहीं?

उत्तर– (षष्ठ अध्याय के अन्तिम खंड के समान है) शस्त्रोंके साथ इन सूक्तोंको न पढ़े॥ १०(३६)[२२३]

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री एम. ए. द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की षष्ठ पञ्चिका का पञ्चम अध्याय समाप्त।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण, पञ्चिका ७ अध्याय १

अध्याय ३१

छात्र के अंगों का विभाग

अब पशु (विद्यार्थी छात्र) के अङ्गों के अध्ययन-निरीक्षण-हेतु विभाग करेंगे—

क्रम	अंग का नाम	अध्यापक-निरीक्षक
१	जिह्वासहित दो जबड़े	प्रस्तोता
२	श्येन-आकार वक्ष	उद्गाता
३	कण्ठ-तालु	प्रतिहर्ता
४	दक्षिण श्रोणि (ऊरुमूल)	होता
५	वायाँ ,,	ब्रह्मा
६	दक्षिण सक्थि (जाँघ)	मैत्रावरुण
७	बायाँ ,,	ब्राह्मणाच्छंसी
८	कन्धा-सहित दाहिना पार्श्व	अध्वर्यु
९	बायाँ पार्श्व (बगल)	उपगातृगण
१०	बायाँ कन्धा	प्रतिप्रस्थाता
११	दक्षिण बाहु	नेष्टा
१२	वाईं ,,	पोता
१३	दक्षिण ऊरु (जाँघ)	अच्छावाक
१४	बायाँ ,,	आग्नीध्र
१५	दक्षिण बाहु का निचला भाग	आत्रेय
१६	वायें ,, ,,	सदस्य
१७	अनूक [मूत्रबस्ति] और रीढ़	गृहपति
१८	दक्षिण पैर [ऊपर-नीचे]	व्रत,,[भोजप्रद]
१९	बायें ,,	,, ,, की भार्या
२०	ओष्ठ	पति-पत्नी का

उस को गृहपति ही प्रशिक्षित करे।

क्रम	अंग का नाम	अध्यापक-निरीक्षक
२१	जाघनी	पत्नी (वह ब्राह्मण को दे दे)
२२	कन्धेकी मणियाँ, ३ कीकस	ग्रावस्तुत्
२३	दूसरे ३ कीकस, आधी पीठ	उन्नेता
२४	पीठ का आधा और क्लोम	शमिता

यदि वह अब्राह्मण हो तो ब्राह्मण के लिए दे।

क्रम	अंग का नाम	अध्यापक-निरीक्षक
२५	शिर	सुब्रह्मण्या
२६	चर्म	आग्नीध्र
२७	इळा[अन्न]	सब अथवा होता

ये सब ३६ अंग हैं। इनमें प्रत्येक अक्षर यज्ञको वहन करते हैं। बृहती छन्द ३६ अक्षरका होता है। यह सुख देने वाला है। इस प्रकार वह सुख और प्राणों को दिलाता और उनमें प्रतिष्ठित होता है।

जिस पशु [छात्र] को इस प्रकार बाँटते हैं वह सुख देनेवाला होता है। जो अन्यथा बाँटते हैं वे बुरे और पापी हैं और उसे व्यर्थ सताते हैं।

इस प्रकार का बाँट श्रुत ऋषि के पुत्र देवभाग ने निकाला था। वह इसको बिना बताये इस लोक से चलागया। किसी अमनुष्य ने बभ्रु के पुत्र गिरिज को बताया। तब से मनुष्य इस का अध्ययन करते हैं। १[५२४]

सम्पादकीय टिप्पणी— यह अंश प्रक्षिप्त [बाद को मिलाया हुआ] है क्योंकि इसे 'अमनुष्य' (मनुष्यता-रहित, अनाम व्यक्ति ने बताया था। इसके अतिरिक्त इस में जन्मना जाति-विद्वेष की भावना भी छिपी हुई है।

यहं आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३१ (सप्तम पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।



ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय २

अध्याय ३२

९ ३ प्रायश्चित्त प्रश्नोत्तर

खण्ड २. प्रश्न १–यदि अग्नि स्थापित करनेके बाद यजमान मर जाय तो उसका यज्ञ कैसे हो?

उत्तर– वह यज्ञ न किया जाय क्योंकि वह उसको नहीं मिलता।

प्रश्न २–यदि कोई अग्नि स्थापित कर सान्नाय्य या अन्य हवियोंकी तैयारीके बाद मर जाय तो क्या करे?

उत्तर– सब वस्तुओं को एकत्र कर जला दे।

प्रश्न ३–हवि एकत्र करनेके बाद मरे तो क्या हो?

उत्तर–जिनके लिए हवि हो उनके लिए आहुति दे।

प्रश्न ४— यदि अग्निहोत्री घर से दूर विदेश में मर जाय तो उसके यज्ञ का क्या किया जाय?

उत्तर– ऐसी गाय के दूध की आहुति दे जिसमें अन्य का बछड़ा लगाया गया हो क्योंकि जैसा दूध वैसा यज्ञ या किसी अन्य गाय के दूध की आहुति दे।

या मृत के सम्बन्धी तीनों अग्नियाँ जलती रक्खें जब तक मृतक-अस्थि-संचय न हो। यदि शव न मिले तो ३६० पलाश-लकड़ियाँ लेकर पुरुष-रूप बनाये और उस की अन्त्येष्टि करे। इन बनावटी शरीरोंको अग्नियोंके पास लाकर उनको शान्त करदे। पुरुष ऐसे बनाये–१५० लकड़ियों का धड़, १४० की जाँघें, ५० के ऊरु, शेष २० का सिर। यही प्रायश्चित्त है। १(२) [२२५]

खण्ड ३.प्रश्नोत्तर ५-७ (देखो ५.५.२७, पृष्ठ ९२०)

खण्ड ४· प्रश्न ८– यदि सायंकाल को दुहा हुआ सान्नाय्य खराब होजाय या कोई ले ले तो क्या करे?

उत्तर–प्रातः के आधे दूधका दही बनाकर आहुति दे।

प्रश्न ९–यदि प्रातःका दूध बिगड़जाय तो क्या करे?

उत्तर-- इन्द्र-महेन्द्र के लिए पुरोडाशकी आहुति दे।

प्रश्न १०--यदि दोनों कालका दूध बिगड़ जाय तो?

उत्तर-- वही पूर्वोक्त करे, पुरोडाश की आहुति दे।

प्रश्न ११--यदि सभी हवियाँ बिगड़जायँ तो क्या हो?

उत्तर-- घी की आहुतियाँ दे और आज्य हवि से दूसरी इष्टि तैयार करे। दूसरा यज्ञ ही उपाय है।

प्रश्न १२–यदि दूधमें अनुचित वस्तु गिरे तो?

उत्तर– उसको स्रुच् में भरकर पूर्व में आहवनीय में डाल दे। उसके उत्तर भाग से गरम भस्म लेकर मन में अग्निहोत्र या प्रजापतिके मन्त्र पढ़कर आहुतियाँ दे दे। इस तरह आहुति हो भी जाती है और नहीं भी होती। दुष्ट पदार्थ फेंक कर श्रेष्ठ पदार्थ से आहुति देनी चाहिए। यही प्रायश्चित्त है।

प्रश्न १३– यदि दूध गिर या उबलकर निकल जाय तो क्या करे?

उत्तर– इस पर शान्ति के लिए जल छिड़क दे। जल ही शान्ति है। उसे सीधे हाथ से छूकर जपे-

दिवं तृतीयं देवान्यज्ञो गात् ततो मा द्रविणमाष्ट, अन्तरिक्षं तृतीयं पितॄन्यज्ञो गात्ततो मा द्रविणमाष्ट, पृथिवीं तृतीयं मनुष्यान्यज्ञो गात्ततो मा द्रविणमाष्ट।

इस हवि का हर तीसरा भाग-यज्ञ द्यौमें देवों के, अन्तरिक्षमें पितरों (किरणों) के, पृथिवी पर मनुष्यों के पास पहुंचे, वहाँ से मुझे धन मिले।

अब वह विष्णु-वरुण का मन्त्र पढ़े–

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि...(६६२)

यज्ञ में बुराई से विष्णु, भलाई के वरुण रक्षक हैं।

प्रश्न १४–जब अध्वर्यु हवि तैयारकर आहवनीय के पूर्व में ले जाता है तब यदि वह गिर या उछल जाय तो क्या करे?

उत्तर– यदि वह अपना मुख पीछे करे तो यजमान को मुख से विमुख कर दे। अतः कोई अन्य उसके लिए अन्य हवि लाये और वह यथाक्रम आहुति दे।

प्रश्न १५– यदि स्रुक् टूट जाय तो क्या करे?

उत्तर– दूसरा स्रुक् ले ले, उससे आहुति दे। टूटे स्रुच्को हत्था आगे प्याली पीछे कर अग्निमें छोड़े।

प्रश्न १६–यदि आहवनीय जलती हो और गार्हपत्य बुझ गई हो तो क्या करे?

उत्तर– यदि वह आहवनीय के पूर्व भाग को गार्हपत्य के लिए ले आये तो अपनी प्रतिष्ठाको खो देगा। यदि पश्चमी भाग को ले आये तो असुरोंके समान यज्ञ करेगा। यदि फिर अग्नि उत्पन्न करे तो यजमानके लिए शत्रु बनायेगा। यदि अग्निहोत्र को बुझाये तो यजमान के प्राण चले जायँ। अतः पूरी आहवनीय को लेकर गार्हपत्य की राख मिला कर गार्हपत्यमें रखे, फिर पूर्वभागको आहवनीयमें रखे।

खण्ड ३. प्रश्न १७– यदि आहवनीय के होनेपर भी गार्हपत्य से अग्नि ले ली जाय तो क्या करे?

उत्तर– यदि पास में अग्नि दिखाई दे तो उसको पहली के स्थान पर ही रख दे। यदि न दिखाई दे तो अग्निवत् अग्निके लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। इस के लिए याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

अग्निनाग्निः समिध्यते... (१०)

त्वं ह्यग्ने अग्निना... (११)

या केवल अग्नये अग्निवते स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न १८.यदि आहवनीय-गार्हपत्य मिलजायँ तो?

उत्तर– वह वीति अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। याज्या-अनुयाक्या ये हैं–

अग्न आ याहि वीतये...(२)

११६७. यो अग्निं देववीतये... [ऋ १.१२.९]

या केवल अग्नये वीतये स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न १९–यदि ३ अग्नियाँ मिलजायँ तो क्या हो?

उत्तर– वह विविचि अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश दे। याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११६८. स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि...ऋ ७.१०.२

त्वामग्ने मानुषीरीडते विशः... (ऋ ५.८.३)

या केवल अग्नये विविचये स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न २०– यदि किसी की अग्नियाँ दूसरे की अग्नियों से मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर–क्षामवत् अग्निके लिए ८ कपालोंका पुरोडाश बनाए, उसकी याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११७०.अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः...ऋ १०.४५.४

११७१. अधा यथा नः पितरः परासः(ऋ ४.२.१६)

या केवल अग्नये क्षामवते स्वाहा से आहुति दे।

खण्ड ७. प्रश्न २१– यदि किसी की अग्नियाँ गाँव की अग्नि के साथ जल उठें तो क्या करे?

उत्तर– तो संवर्ग अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाए, उसकी याज्या-अनुवाक्या ये हैं–

११७२-७३– कुवित् सु नो गविष्टये...

मा नो अस्मिन्महाधने...(ऋ ८.७५.११-१२)

या केवल अग्नये संवर्गाय स्वाहा से आहुति दे।

प्रश्न २२–यदि किसी की अग्नियाँ दिव्य अग्नि से मिल जायँ तो क्या करे?

उत्तर–वह अप्सुमत् अग्नि के लिये ८ कपाल का पुरोडाश बनावे। याज्य अनुवाक ये हैं —

११७४-७५. अप्स्वग्ने सधिष्टव ...ऋ० ८.४३.९

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो ... (ऋ० ६.१.३)

या केवल 'अग्नये अप्सुमते स्वाहा' से आहवनीय अग्नि में घी की आहुति दे दे।

प्रश्न २३— जब अग्निहोत्री की अग्नियाँ लाश की अग्नि से मिल जायँ तो क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर– अग्नि शुचि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाये। उसकी याज्या अनुवाक्या ये हैं —

११७६-७७.अग्निः शुचिव्रततमः...ऋ ८.४४.२१

उदग्ने शुचयस्तव... [ऋ० ८.४४.१७]

या केवल 'अग्नये शुचये स्वाहा' से आहवनीय में घी की आहुति करे।

प्रश्न २४– जिसकी अग्नियाँ अरण्य की अग्नि से मिल जायँ उसका क्या प्रायश्चित्त है?

उत्तर– वह अरणियों से उसको पकड़ ले। यदि संभव न हो तो आहवनीय या गार्हपत्य से एक जलती लकड़ी ले, और बचा रक्खे। यह भी संभव न हो तो संवर्ग अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश बनाकर ऊपर लिखी याज्याअनुवाक्याओं का प्रयोगकरे या अग्नये संवर्गाय स्वाहा से आहुति दे।

खण्ड ८, प्रश्न २५– यदि उपवास-दिवस यजमान हवि पर आंसू बहा दे तो क्या करे?

उत्तर– यह व्रतभृत् अग्नि के लिए ८ कपालोंका पुरोडाश बनाले। उसकी याज्यानुवाक्या ये हैं—

११७८-७९.त्वमग्नेव्रतभृत्,...व्रतानि बिभ्रद्...

आश्वलायन ३.११

या अग्नये व्रतभृते स्वाहा से घृताहुति दे।

प्रश्न २६–उपवास में व्रत-विरुद्ध करने पर क्या हो?

उत्तर— वही, पुरोडाश या घृताहुति। मन्त्र हैं —

११८०-८१-त्वमग्ने व्रतपा असि... ऋ ६.११.१
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि... ऋ १०.२.४
अग्नये व्रतपतये स्वाहा ।
प्रश्न २७- यदि दर्श-पूर्णमास छूटजाय तो क्या हो ?
उत्तर— वही, पुरोडाश वा घृताहुति । मन्त्र हैं—
११८२- वेत्था हि वेधो अध्वन:... ऋ ६ १६.३
आ देवानामपि पथा अगन्म... (८५)
अग्नये पथिकृते स्वाहा ।
प्रश्न २८. यदि तीनों अग्नियाँ बुझजायं तो क्या करे?
उत्तर— ८ कपालों का पुरोडाश बनावे, मन्त्र हैं—
११८३-८४.आयाहि तपसा; आ नो याहि (आ ३.११)
या 'अग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवते'; से आहुति ।
खंड९.प्रश्न २९. विना आग्रयणेष्टि नवान्न खाले तो?
उत्तर- वह दस कपालोंका पुरोडाश बनावे । मन्त्र-
वैश्वानरो अजीजनन्....
११८५.पृष्टो दिवि पृष्टो अग्नि: पृथिव्याम्[१.९८.२]
या अग्नये वैश्वानराय स्वाहा से घृताहुति दे ।
प्रश्न ३०. यदि पुरोडाश का कपाल टूट जाय तो ?
उत्तर.अश्विओं को दो कपालों में पुरोडाश । मन्त्र-
११८६. अश्विना वर्तिरस्मदा...[ऋ १.९२.१६]
आ गोमता नासत्या रथेन .... [६६१]
या अश्विभ्यां स्वाहा से आहवनीयमें घृताहुति दे ।
प्रश्न ३१ यदि पवित्रा कुश खो जायँ तो क्या करे ?
उत्तर. ८ कपालोंका पुरोडाश । याज्यानुवाक्या हैं-
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते... [२५५]
११८७. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे ... ऋ ९.८३.२
या अग्नये पवित्रवते स्वाहा से घृताहुति दे ।
प्रश्न ३२.यदि हिरण्य सोना खोजाय तो क्या करे ?
उत्तर. पुरोडाश बनावे । याज्या-अनुवाक्या यह हैं-
११८८-८९.हिरण्यकेशो, आ ते सुपर्णा, ऋ१.७९.१-२
या अग्नये हिरण्यवते स्वाहा से घृताहुति दे ।
प्रश्न ३३. यदि विना स्नान किए हवन करे तो ?
उत्तर.वह अग्नि-वरुणके लिए पुरोडाश बनावे,मन्त्र
११९०-९१.त्वं नो अग्ने, स त्वं नो...[ऋ ४.१.४-५]
या अग्नये वरुणाय स्वाहा से घृताहुति दे ।
प्रश्न ३४. यदि सूतका- अन्न खा ले तो क्या हो ?
उत्तर. तन्तुमन अग्नि के लिए पुरोडाश दे । मन्त्र-
तन्तुं तन्वन् रजसो...[६६६],
११९२. अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या ऋ १०.५३.७

या अग्नये तन्तुमते स्वाहा से घृताहुति दे ।
प्रश्न ३५. यदि अपने को मरा सुने तो क्या करे ?
उत्तर. ८ कपालोंका पुरोडाश बनावे । मन्त्र ये हैं-
११९३-९४. अग्निर्होतान्यसीदत् ...ऋ ५.१.६
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य... ऋ १०.५३.३
या अग्नये सुरभिमते स्वाहा से घृत आहुति दे ।
प्रश्न ३६-यदि स्त्री या गौ जुड़वाँ बच्चेदे तो क्याकरे?
उ०-वह १३ कपालों का पुरोडाश बनाये, मन्त्र ये हैं-
मरुतो यस्य हि क्षये ... (देखो १०८७)
११९५- अरा इवेदचरमा अहेव...[ऋ० ५.५८.५]
या केवल 'अग्नये मरुत्वते स्वाहा'से घीकी आहुति दे ।
प्रश्न ३७-अपत्नीक(स्त्रीरहित)आहुतियाँ दे या न दे?
उत्तर-उसे देनाचाहिए । न देगातो अनद्धा कहलायेगा ।
इस विषय में एक गाथा कही जाती है —
'माता पिता का ऋण चुकाने के लिये यज्ञ करे ।' ९.
खण्ड १० प्रश्न ३८- अपत्नीक अग्निहोत्र कैसेकरे?
उत्तर- एक मनुष्य के इस लोक में और उस लोकमें भी
पुत्र,पौत्र, नाती हैं उनसे कहे- यह लोक ही स्वर्गलोक
है 'इस स्वर्गसे मैं उस स्वर्गको पहुँचा ।'पत्नी की इच्छा
न होतो उसके लिए उसकी संतान यज्ञ स्थिर रखतीहै।
श्रद्धा पत्नी है । सत्य यजमान है । श्रद्धा और सत्य के
जोड़े से स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है । (१०)[२३२]
खण्ड ११ प्रश्न ३९— दर्शपूर्णमास यज्ञों के पहले
भाग में उपवास करे या बाद के भागमें करे ?
उत्तर. पिछले भागमें करे जो कुहू, राका कहाते हैं।
खण्ड १२. प्रश्न ४०. सूर्यके उदय या अस्त से पहले
यदि अग्नि न ला सके और बुझ जाय तो क्या करे ?
उत्तर. सायं स्वर्णको सामने रखकर और प्रातः नीचे
चाँदी रखकर अग्नि को अँधेरे से पहले निकाल ले ।
प्रश्न ४१. यदि अग्नि पर होकर गाड़ी, रथ या कुत्ता
निकल जाय तो क्या करे ?
उत्तर. इसकी चिन्ता न करे, या लगातार जल डाले
और यह मन्त्र बोले-- तन्तुं तन्वन्... (६६६)
प्रश्न ४२.अग्नियोंके आधानमें दक्षिणाग्नि कैसे जलाये?
उत्तर-अवश्य जलाये,अग्नयेऽन्नादायान्नपतये से आहुतिदे।
प्रश्न ४३--प्रवास में अग्नियों का उपस्थान कैसे करे ?
उत्तर- मनमें करे, या प्रतिदिन आकर यह मन्त्र कहे—
अभयं वो अभयं मे अस्तु ।। ११ (१२) [२३५]
❀ इति सप्तम पंचिकायां द्वितीयो अध्यायः समाप्तः ❀

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ७, अध्याय ३

अध्याय ३३, शुनःशेप का आख्यान

खण्ड १३ — इक्ष्वाकु वंशके राजा वेधस् का पुत्र हरिश्चन्द्र निस्सन्तान था। उसकी सैकड़ों पालित स्त्रियाँ थीं किन्तु पुत्र कोई न था। वहाँ पर्वत और नारद ऋषि रहते थे। उसने नारद से पूछा—

ज्ञानी-अज्ञानी सभी पुत्रको चाहते हैं। हे नारद बताओ कि उससे क्या लाभ है।

नारद ने इसका उत्तर दस श्लाकों में दिया—

१. यदि पिता जीते हुए, पुत्र का मुख देखले तो उसका ऋण छूट जाता है। वह अमर हो जाता है।

प्राणियों के जितने भोग पृथिवी-जल-अग्नि में हैं उनसे भी अधिक पिता के लिए पुत्र में हैं।

३. पिता पुत्र रूपी नाव से आपत्ति-नदियों को पार करते हैं। आत्मा से आत्मा पैदा होता है।

४. मलिन रहने, चर्म पहनने, दाढ़ी-मूंछ रखने से क्या लाभ? हे ब्रह्मणो, पुत्र की इच्छा करो।

५. अन्न प्राण देता, कपड़ा रक्षा करता, स्वर्ण रूप देता है। विवाह में पशु मिलते हैं। पत्नी सखा है। दुहिता कृपा-पात्री है। किन्तु पुत्र उस लोक में भी ज्योति है।

६. पति पत्नीमें गर्भके रूप में प्रविष्ट होता, तथा नया जन्म लेकर दसवें मास में उत्पन्न होता है।

७. स्त्री तभी जाया होती है जब पिता उसमें पुत्र होकर जन्मता है। बीज बढ़कर उपजता है।

८. देवों-ऋषियों ने पहले उसे तेजोयुक्त करदिया फिर कहा कि अब यह तुम्हारी जननी है।

९. जिसके पुत्र नहीं उसका लोक नहीं— इसको पशु भी जानते हैं, वे माँ-बहिनका ध्यान नहीं करते।

१०. जिनके पुत्र होते हैं वे शोक-रहित होकर विस्तृत मार्ग पर चलते हैं। पशु-पक्षी भी इस बात को जानते हैं। वे माँ-बहिनका ध्यान नहीं करते।१

खण्ड १४— फिर नारद बोले— राजा वरुण (आचार्य) के पास जाओ और कहो कि मुझे पुत्र (पालनार्थ) दो। मैं उससे यज्ञ(श्रेष्ठ कर्म) करूँगा।

अच्छा कहकर वह वरुण के पास जाकर बोला— मुझे सन्तान मिल जाय तो मैं तेरा यज्ञ करूँ।

उसने स्वीकार कर रोहित नामक शिशु दिया।

वरुण— तुझे पुत्र मिल गया। अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब दस दिन हो जायँ तो यज्ञ करूँ

दस दिन बाद वरुण— अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब दाँत निकल आते हैं तब वह श्रेष्ठ-कर्म-योग्य होता है। तभी मैं शिक्षित करूँगा।

दाँत निकल आने पर वरुण— अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब दाँत गिर जायें तब करूँगा।

दाँत गिर जाने पर वरुण— अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— दूसरे दाँत निकलने पर करूँगा।

दूसरे निकलने पर वरुण— अब यज्ञ कर।

हरिश्चन्द्र— जब क्षत्रिय शस्त्रधारी हो जाता है तब यज्ञके योग्य होता है। तभी मैं यज्ञ करूँगा।

रोहित के शस्त्रधारी होनेपर वरुण— अब यज्ञकर।

हरिश्चन्द्र ने रोहित को बुलाकर कहा—जिसने तुझको मुझे दिया उसके लिए मैं तुझे शिक्षा-यज्ञ में दूंगा। वह निषेध करके और धनुष लेकर वन में चला गया और एक वर्ष तक घूमता रहा। २(१४)

खण्ड १५...अब वरुण ने हरिश्चन्द्रको पकड़ा। उसका पेट फूल गया। यह सुनकर रोहित वन से आया। तब इन्द्र पुरुषके रूपमें आकर बोला—

हे रोहित, सुना है कि श्रम न करने वाले को श्री नहीं मिलती। मनुष्यों में रहते रहते अच्छा भी बुरा हो जाता है। इन्द्र भी चलते रहनेवाले का ही सखा है। अतः तू चलता ही रह, चलता ही रह।

तदनुसार वह दूसरे वर्ष भी घूमता रहकर लौटा तो गाँव में इन्द्र-ब्राह्मण फिर आकर बोला—

जो विचरता है उसके पैर फूल के समान होते हैं उसका आत्मा फल उगाता और पाता है। श्रम से उसके पाप छूट जाते हैं। अतः तू विचरता रह।

वह तीसरे वर्ष भी घूमता रहा। वापस आनेपर फिर इन्द्र-पुरुष आकर उससे बोला—

बैठे हुए का भाग्य बैठता है, खड़े हुए का खड़ा होता है, पड़े रहनेवाले का पड़ा रहता है और जो विचरता है उसका विचरता है, अतः विचरता रह।

वह चौथे वर्ष घूमता रहा, लौटनेपर इन्द्र बोला—

कलि सोता हुआ रहता है, द्वापर अँगड़ाई लेता रहता है, त्रेता खड़ा रहता है और सत् युग चलता रहता सम्पन्न होता है। अतः चलता रह।

वह ५म वर्ष घूमता रहा, लौटने पर इन्द्र बोला—

विचरता हुआ ही मधु और गूलर के फल पाता है। सूर्य के सौन्दर्य को देख, जो चलता हुआ तन्द्रा नहीं करता। अतः चलता ही रह, चलता ही रह।

तदनुसार वह छठे वर्ष भी वन में घूमता रहा। वहाँ वह सुयवस् ऋषि के पुत्र अजीगर्त से मिला जो भूखा रहरहा था। उससे रोहित बोला—हे ऋषि, मैं तुमको सौ गायें दूंगा, तुम मुझे ३ पुत्रों में से १ दे दो। मैं उसके द्वारा स्वयं को बचा सकूं।

अजीगर्त बोला— बड़े को मत लो। माता छोटे के लिए यही बोली। मध्यम शुनःशेप के लिए दोनों तैयार हो गये। सौ गायें देकर उसे लेकर वह घर आया और पितासे बोला— इसके द्वारा स्वयं कोष बचाऊँगा। वह वरुण के पासजाकर बोला —मैं इसे यज्ञ के लिए तुझे दूंगा। वरुण बोला— क्षत्रिय से ब्राह्मण अधिक अच्छा। तब वरुण ने उसे राजसूय यज्ञ की विधि बताई। इसीप्रकार अभिषेक के दिन शुनःशेप को अधिकृत किया। ३ (१५) [२३८]

खण्ड १६— इस यज्ञ में विश्वामित्र होता, था जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा अयास्य उद्गाता थे। आरम्भ में कोई ऐसा न मिला जो उसे अनुशासन में बाँधता। अजीगर्त बोला— मुझे सौ गाएँ और दो, मैं इसे अनुशासन में बाँधूंगा। उसको सौ गायें और दीं। उसने पुत्र को अनुशासनमें रक्खा।

आप्रि मन्त्रों का पाठ तथा अग्नि-परिक्रमा भी हो गयी' किन्तु कसको शिक्षामें गति देनेवाला कोई न मिला। तब अजीगर्त बोला—मुझे सौ गायें और दो, मैं इसको प्रगति दूँगा। उसको सौ गायें और दी गयीं। वह प्रगति देनेके लिये भयभीत करने ो शासन तेज करने लगा। अब शुनःशेप ने सोचा कि वह मुझे ऐसे दण्ड दे रहा है मानों मैं मनुष्य ही नहीं हूँ। मैं देवताओं के पास दौड़ूं। सबसे पहले उसने (१) प्रजापति के ध्यान में यह ऋचा पढ़ी—

१. कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरम् च॥ (ऋ. १.२४.१)

अर्थ— अमरों में सुखस्वरूप, निश्चय ही सर्वाधिक सुखमय ईश्वर के सुन्दर नाम ओ३म् को हम जानें। वह मुझे पृथिवी के लिए फिर देता है कि मैं पिता-माता को देखूँ।

इस प्रकार ध्यान में उसे ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि अग्नि देवों में सबसे निकट हैं, तू उसके पास जा।

तब उसने (२) अग्नि आचार्य का ध्यान किया—

२. अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयम् मातरम् च॥ ऋ १.२४.२

अग्नि ने कहा— प्राणियों का स्वामी सविता है, तू उसका ज्ञान प्राप्त कर। तब उसने (६) सविता (सूर्य) का निम्नलिखित ३मन्त्रोंसे गुणवर्णन किया—

३. अभि त्वा देवं सवितः... [देखो १६५]

४. यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे॥

५. भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा।
मूर्धानं राय आरभे॥ ऋ. १.२४.३-५

अर्थ—जो कुछ भी तेरा ऐसा ऐश्वर्य निन्दित के भी सामने लेकर मैं अद्वेषी होकर हाथों में देता हूं। तुझ ऐश्वर्य-दाता के तेरे ज्ञान से हम ऐश्वर्य का उच्च पद-प्राप्ति के लिए ऊँचे उठें।

सविता ने प्रेरणा दी— तू वरुण के लिए प्रतिबद्ध है; उसी से विद्या ग्रहण कर। तब उसने निम्न लिखित ३१ऋचाओं १.२४.६-१५ और १.२५.१-२१ से वरुण का गुण-वर्णन किया—

वरुण के ३१ मन्त्र

[वरुण का अर्थ दुःख-दोष-निवारक, वरणीय ईश्वर, गुरु, जल, जलसेनापति, सूर्य, चन्द्र, आक्सीजन, पुलिस न्यायाधीश आदि होते हैं। यहाँ जल और गुरु हैं।]

६.नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्च नामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम्॥

अर्थ–ये पक्षी, लोक, आपः, वायु तेरा बल नहीं पाते।

७. अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्युरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥

अर्थ— वरुण ऊपर आकाश में तेजःसमूह को धारण करता है। उसकी किरणें नीचे आती हैं, इनका मूल ऊपर रहता है। वे हमारे अन्दर निहित हों।

८. उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्॥

अर्थ—वरुण सूर्य के अनुकूल चलने के लिए विशाल पथ बनादेता है, आकाशमें किरणोंके लिए स्थान देताहै

९. शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टेऽस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥

अर्थ—तेरी असंख्य औषधियाँ हैं, तेरी विशाल बुद्धि हमें मिले। कष्ट दूर कर, हमसे पाप को दूर हटा।

१०. अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति॥

अर्थ—ये ऊँचे स्थापित नक्षत्र रात में दिखाई देते हैं दिन में कहाँ गये? वरुण के नियम अटल हैं। चन्द्रमा रातमें विशेष चमकता हुआ गति करता है।

११.तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥

अर्थ–हे वरुण, मैं वन्दना करता हुआ तुझसे याचना करता हूं जिसे यज्ञकर्ता हवियों से आशा करता है। तू तिरस्कार न करता हुआ बोध करा, आयु नष्ट न कर।

१२. तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे। शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥

अर्थ–विद्वान् जिस ज्ञानका उपदेश मुझे रातदिन करें वह मेरे हृदय को प्रकाशित करे। प्रकृति के बन्धन में बँधा शुनःशेप (सुखार्थी जिज्ञासु) जिसको पुकारता है, वह राजा वरुण हमको मुक्ति प्रदान करे।

१३. शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान्॥

अर्थ— प्रकृति के तीन [सत्त्व, रजस्, तमस्] गुणों से बँधा हुआ शुनःशेप [विषयी, सुखार्थी जिज्ञासु] जीवात्मा ईश्वर और आचार्य को पुकारता है। विद्वान् राजा वरुण उसकी रक्षा करे और बन्धनों को खोल दे।

१४. अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः। क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥

अर्थ— हे वरुण, तेरे प्रति अपराध को हम यज्ञादि से दूर करें। हे विद्वान्, आप हमारे पाश शिथिल करें।

१५. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥

अर्थ— हे वरुण, आप हमारे उत्तम, मध्यम, अधम बन्धनों को शिथिल कीजिए। और हे आदित्य, हम आपके व्रतमें रहकर अखण्ड मोक्षके लिए निष्पाप हों।
ऋ १.२४.६–१५

१६. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यवि द्यवि॥

हे वरुण देव, हम आपके व्रत को साधारण जन के समान प्रति दिन तोड़ा ही करते हैं।

१७. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे॥

हे वरुण, अनादर करने वाले के बध और लज्जित पर क्रोध करने के लिए मत प्रेरित कर।

१८. वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि॥

हे वरुण, जैसे वीर सुख के लिए अश्व को बाँधता है वैसे ही हम आपके ज्ञानको वाणीसे धारण करते हैं।

१९. परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये।
वयो न वसतीरुप॥

जैसे पक्षी अपने निवास स्थान को जाते हैं वैसे ही मेरी विशेष स्तुतियाँ आप तक पहुंचें।

२०. कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृळीकायोरुचक्षसम्॥

हम सुख के लिए बल से शोभित विद्वान् बड़ा, द्रष्टा वरुण अपना नेता कब बनायेंगे और राज्य-लक्ष्मी को कब स्थित करेंगे।

२१. तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः।
धृतव्रताय दाशुषे ॥

२१. व्रतधारी, दानी पुरुष के लिए जैसे गायक-वादक दोनों समान रूप से प्रसन्न करते है वैसेही मित्र वरुण—वायु सूर्य उस विमानादि में प्रयुक्त होकर कार्य सिद्ध करें [हाइड्रोजन-आक्सीजन गैस प्रयुक्त हों]।

२२. वेदा यो वीना पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः ॥

जो अन्तरिक्ष में जानेवाले पक्षियों और विमानों का मार्ग तथा समुद्र के जहाजों को जानता है।

२३. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते ॥

वह व्रती प्रजावाले १२ मासों तथा १३ वें मास को जानता है जो तीसरे वर्ष में अधिक होता है।

२४. वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य वृहतः।
वेदा ये अध्यासते ॥

वह वायुकी गतियों व उसके अध्यक्षोंको जानताहै।

२५. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥

व्रती वरुण साम्राज्य के लिए उत्तम कार्य वाला प्रजाओं में निश्चित रूप से रहता है।

२६. अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभिपश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा ॥

अतः वह सब अद्भुत कर्मों को देखता है।

२७. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

वह सुकर्मी अखण्डित होकर सुन्दर पथ बनाए और हमारी आयुओं को बढ़ाए।

२८. विभ्रद् द्रापि हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परिस्पशो नि षेदिरे ॥

वरुण सोने का कवच और शुद्ध वस्त्र पहन कर आसन पर बैठताहै, उसके गुप्तचर घूमा करते हैं।

२९. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः ॥

हिंसक, द्रोही, अभिमानी उसे हरा नहीं सकते।

३०. उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा ॥

जो मनुष्यों में यश और उदरों में अन्न देता है।

३१. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥

जैसे गौएँ स्वस्थानमें जाती हैं वैसे मेरी बुद्धियाँ उसकी इच्छा करती हुई दूर तक जाती हैं।

३२. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥

जहाँ से मुझे मधुर ज्ञान मिलता है उस विषय में बोला करें। होता के समान तू उसे प्राप्त करा।

३३. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः ॥

सबके दर्शनीय रथको पृथिवी पर देखनेके लिए मेरी वेद-वाणियों का सेवन करो।

३४. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युराचके ॥

हे वरुण, मेरी इस पुकार को सदा सुनिए और सदा सुख दीजिए। ज्ञानेच्छु मैं कामना करता हूं।

३५. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥

हे मेधावी, तू समस्त द्यौ और पृथिवी पर प्रकाशित है। तू प्रति प्रहर हमारी प्रार्थना को सुन।

३६. उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥ ऋ १.२५.१-२१

जीवनके लिए उत्तम-मध्यम-अधम पाशों को छुड़ा।

अग्नि का वर्णन

वरुण के कहने से शुनःशेप ने अग्नि-दर्शन किया-

३७. वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जाम्पते।
सेमं नो अध्वरं यज ॥

हे पवित्र ऊर्जा-पति, आप उचित वस्त्र धारणकर हमारे इस विज्ञान-यज्ञ को आगे बढ़ाइये।

३८. नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥

हे श्रेष्ठ बलिष्ठ अग्नि विद्वान्, तू गुणों और तेज से युक्त होकर हमें उपदेश कर।

३९. आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥

तू पिता होकर पुत्र को, आचार्य होकर शिष्य को, सखा होकर सखा को सुख देता है।

४०. आ नो बर्हीं रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
सीदन्तु मनुषो यथा ॥

हमारे यज्ञ में वरुण-मित्र-अर्यमा आकर बैठें ।

४१. पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च ।
इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥

हे श्रेष्ठ होता, आप हमारे इस कार्य से प्रसन्न हों, मित्र बनें और हमारी इन वाणियों को सुनें ।

४२. यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इद्धूयते हविः ॥

जो कुछ भी हम ज्ञान द्वारा अनेक देवों से मेल करते हैं वह मानो अग्नि में आहुति दी जाती है ।

४३. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रिया स्वग्नयो वयम् ॥

सुखद नेता प्रसन्न हों, हम अग्निवाले प्रिय हों ।

४४. स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः ।
स्वग्नयो मनामहे ॥

उत्तम अग्निवाले देव हमें सुख और ज्ञान दें ।

४५. अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् ।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥

हे अमृत, हम शिष्य-आचार्य परस्पर बात करें ।

४६. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥ [ऋ १.२६.१-१०]

हे बल के रक्षक अग्नि, आप सब ३ प्रकार की अग्नियोंसे इस यज्ञ और वायु-बलसे अन्न को दें ।

४७. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥

हम यज्ञों में प्रकाशमान, अश्वके समान बलवान् अग्नि को विविध सत्कारों से वन्दना करें ।

४८. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥

वह निश्चय ही पुत्रवत् प्रेरक, बलयुक्त नेता, सुख देनेवाला अग्नि वर्षा द्वारा सुख से सींचनेवाला हो ।

४९. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥

वह पूरी आयु का हेतु होकर दूर-पासके पापी शत्रु से हमारे सदन-शिल्प-शरीर की रक्षा करे ।

५०. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥

हे आचार्य, आप सुखद ज्ञान का उपदेश करें ।

५१. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥

आप हमें परम-मध्यम-अन्तिम ऐश्वर्य प्रदानकरें ।

५२. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥

हे अद्भुत ज्ञान-प्रकाशक, आप समुद्र की लहरों के समान विज्ञानके विभाग करनेवाले और दानी पर शीघ्र कृपा करनेवाले हैं ।

५३. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥

हे अग्रणी, आप जिसको सेनाओंमें बचाते और प्रेरित करते हैं वही स्थिर प्रजाओंका नेता होताहै ।

५४. नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥

हे सहनशील, इस पराक्रमीका मुकाबला करने वाला कोई नहीं । इसका बल प्रशंसनीय है ।

५५. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥

वह सबका द्रष्टा अश्वों के द्वारा युद्धको जिताने वाला और बुद्धिमानों द्वारा ज्ञान का दाता है ।

५६. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥

हे स्तुति से पहचाने जाने वाले, आप यज्ञकर्ता, सेनापति के लिए दर्शनीय सत्य गुण दीजिए ।

५७. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥

वह महान्, अग्नि के समान, बहुतों को प्रसन्न करने वाला अग्रणी अन्न-बल के लिए प्रेरित करे ।

५८. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥

वह प्रजापति अग्नि हमारे प्रशंसनीय वचन सुने ।

अब अग्निके कहनेसे उसने विश्वेदेवोंकी स्तुतिकी—

विश्वेदेवाः की स्तुति

५९. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ ऋ १.२७.१-१३

बड़ों, छोटों, जवानों, वृद्धों को नमस्ते । यदि कर सकें तो देवोंका यज्ञ करें, मैं बड़ों का यश न बिगाड़ूं ।

इन्द्र के २२ मन्त्र

विश्वेदेवों के कहने से उसने इन्द्रका वर्णन किया—

६०. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आतू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ।

हे संसार के सच्चे पालक, हम असमर्थवत् हैं। अधिक ऐश्वर्यवान् इन्द्र, हमें गौओं, अश्वों, हजारों ऐश्वर्यों में सम्पन्न कर। (यह वाक्य ६६मन्त्र तक है)

६१. शिप्रिन्वाजानाम्पते शचीवस्तव दंसना । आ०

हे सुखद, अन्नपति, शक्तिमान्, यह सामर्थ्य तेरी है।

६२. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने । आ०

आप मिथ्यादर्शी, सोये मूर्खों को जगा दीजिए।

६३. ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः।आ.

हे शूर, आपके शत्रु सो जायँ, दानी बोधयुक्त हों।

६४. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । आ.

हे इन्द्र, आप पाप से निन्दित, गधे के समान नीच को दण्ड दें ।

६५. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि। आ०

कुटिलगतिवाला दूर गिरता है जैसे वन से हवा ।

६६. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् । आ०

सब दुष्टोंको नष्ट और हिंसकको विनष्ट करो।

ऋ १.२९.१–७

६७. आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ।।

जैसे अन्न के इच्छुक कुएँ का वैसे ही तुम इन्द्र का आश्रय लेकर ऐश्वर्य–जल से सींचो ।

६८. शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
एदु निम्नं न रीयते ।।

जो पवित्र–आश्रयणीय सैकड़ों-हजारों के आगे झुकता है वह जल के समान शान्त होता है ।

६९. सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे ।
समुद्रो न व्यचो दधे ।।

जिस बलवान् के हर्ष के लिए इन पदार्थों को ही इसके वश में समुद्र के समान धारण कराता हूं।

७०. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ।।

यह संसार आपके ही वशमें होरहा है जैसे जल पोत बन्दरगाह में । वैसे ही हमारे वचन को सुनें।

७१. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ।।

हे धनोंके पति वीर, यह तेरी सच्ची विभूति है।

७२. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ।।

हे शतक्रतु, आप युद्धमें रक्षार्थ ऊँचे होकर रहिए।

७३. योगेयोगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।।

हम मित्र योग–अवसरों में बली इन्द्र को बुलावें ।

७४. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ।।

यदि वह सुनले तो हजारों रक्षा-साधनों से आजाये।

७५. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ।

जिसे तुझसे पहले पालक बुलाता है उस आकाश के भी पूर्व विद्यमान ईश्वर की मैं स्तुति करता हूं।

७६. तं त्वा वयं विश्ववाराऽऽशास्महे पुरुहूत ।
सखे वसो जरितृभ्यः ।।

हें सब के वरणीय, बहुतों से स्तुत, बसानेवाले, मित्र, आप को हम स्तोताओं का हितकारी मानें।

७७. अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् ।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ।।

हे सोमके पालक, शस्त्र–धारक, आप विदुषियों तथा सोम-रक्षक हम सब के हितकारी हैं।

७८. तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु ।
यथा त उश्मसीष्टये ।।

हे राष्ट्रपालक, बलवान् मित्र, आप वैसा कीजिए कि वह वैसा हो जैसा हम अभीष्ट फल चाहते हैं।

७९. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।।

समृद्ध हम जिनसे हर्षित हों— ऐसी ऐश्वर्य-युक्त, अन्न-बलयुक्त क्रियाएँ आप इन्द्रके आश्रय में हों।

८०. आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः।
अक्षणोरक्षं न चक्र्योः ।।

हे बलवान्, आप पहियोंके धुरा के समान स्वयं स्थित होकर स्तोताओं के लिए सुख देते हैं ।

८१. आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ।। (ऋ० १.३०.१-१५)

जैसे पहियोंका धुरा क्रियाओं से कामनाको पूर्ण करता है वैसे ही हे सैकड़ों कर्मों में कुशल, आपकी सेवा स्तोताओं की कामना पूर्ण करती हैं ।

इन्द्र राजा ने प्रसन्न होकर उसे एक रथ दिया जिसको स्वीकार करते हुए उसने वह मन्त्र पढ़ा—

८२. शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि। स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥

इन्द्र श्रेष्ठ घोड़ों से सदा धन को जीते, कर्मशील वह हमें सुवर्ण-युक्त रथ देवे। दानी वह दान दे।

इन्द्रके कहने से उसने अश्विओंका वर्णन किया—

अश्वि - उषा का वर्णन

८३. आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥

८४. समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
समुद्रे अश्विनेयते ॥

८५. न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते ॥

हे सूर्य-चन्द्रके समान सभासेना-पति, आप वीर सेनाके साथ प्रयाण करें तथा गौ-सुवर्ण-युक्त हों

हे दुःखनाशक, यह आपका एकसमान बना रथ। मनुष्य के बिना समुद्र में जाता है।

आप अविनाशी रथ के ऊपर चक्र लगाते हैं जो उसको आकाश में ले जाता है।

तब उससे अश्विओं ने कहा— तू उषा का गुण वर्णन कर, उसमें योग कर, तू मुक्त होजायगा।

तदनुसार उसने ३मन्त्रोंसे उषा-वर्णन किया—

८६. कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि ॥

८७. वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥

८८. त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः।
अस्मे रयिं नि धारय ॥ ऋ १.३०.१६-२२

हे ज्ञान-कथा से प्रिय, अमर उषा, कौन मनुष्य तेरे सुख-भोगमें है, हे प्रकाशयुक्त, तू किसे मिलती है?

हे व्यापक-विचित्र-दीप्तिमय, पास और दूर से भी तुझे नहीं जान पाते।

हे सूर्यकी पुत्री, तू उन ज्ञान-बलों से हमें प्राप्त हो और ऐश्वर्य प्रदान कर।

इसके बाद वह मुक्त हो गया और हरिश्चन्द्र भी स्वस्थ होगया। ४ (१६) [२३६]

खण्ड १७—तब ऋत्विज शुनःशेपसे बोले—अब तू हम में से ही है। तब उसने अंजः-सव (सोमरस निकालनेका विशेष विधान) करते हुए ये मंत्र पढ़े—

८९. यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥

हे ऊखल (विद्वान्), क्योंकि तू घर घर में प्रयुक्त है अतः जेताओं के नगाड़ेके समान अच्छे शब्द कर।

९०. उत स्म ते वनस्पते.....

९१. आयजी वाजसातमा.....

९२. ता नो अद्य वनस्पती...... ऋ १.२८.५-८

सोम को द्रोण-कलश में इस मन्त्र से रक्खा—

९३. उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आसृज।
नि धेहि गोरधि त्वचि॥ ऋ १-२८.९

इन ऋचाओंमें स्वाहा लगाकर सोमयज्ञ किया—

९४. यत्र ग्रावा ...... ९५. यत्र द्वाविव जघना...

९६. यत्र नार्यपच्यवम्...९७. यत्रमन्थां विबध्नते...

अब वह अवभृथ के लिए सामग्री लाया और इन दो ऋचाओं से आहुतियाँ दीं—

९८. त्वं नो अग्ने वरुणस्य... ९९. स त्वं नो अग्ने...
ऋ ४.१.४-५ (११९०-९१)

तब शुनःशेपने हरिश्चन्द्रको बुलाकर यह पढ़ा—

१००. शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः। एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ऋ ५.२.७ (१२९२)

हे अग्नि (ईश्वर और विद्वान्), हजारों बन्धनों से निन्दित सुखेच्छु को भी छोड़ो जिससे वह शान्त हो। हे बुद्धिमान् होता, आप यहाँ स्थित हो कर हमारे बन्धनों को काटिए।

अब शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में बैठ गया।

अजीगर्त— हे ऋषि, मेरे पुत्र को मुझे दो।

विश्वामित्र– नहीं, इसे मुझे देवोंने दिया है अतः यह देवरात वैश्वामित्र हुआ, उसके कापिलेय और बाभ्रव बान्धव हैं।

अजीगर्त— तू मेरे पास आ, तुझे माता-पिता बुलाते हैं। तू अंगिरा गोत्रका है, पितृ-गृह न छोड़।

शुनःशेप—मैंने तेरे हाथ में वह वस्तु देखी जो शूद्र

भी नहीं लेता। तूने तीन सौ गायें मुझसे अधिक मानीं।

अजीगर्त– हे तात, मैं अपने किये पर दुःखी हूं। मैं उसके निवारणार्थ तुझको सौ गायें देता हूं।

शुनःशेप– जो एकबार पाप करसकता है वह दूसरी बारभी करसकता है। तू उससे निवृत्त नहीं होसकता।

विश्वामित्र — हाँ,निवृत्त नहीं हो सकता। वह जब दण्ड देने को तय्यार था तो बड़ा भयानक लगता था। तू उसका पुत्र मत बन, मेरा पुत्र हो जा।

शुनःशेप– बताओ आपके गोत्रमें कैसे आ सकता हूं?

विश्वामित्र– तू मेरे पुत्रों में ज्येष्ठ हो, तेरी सन्तान श्रेष्ठ हो, दाय-भागी हो, मैं मन्त्रोंसे तुझे पुत्र बनाताहूं।

शुनःशेप– आप पुत्रों से कह दें कि वे मुझे प्रेम से स्वीकार करें तब मैं आपका पुत्र बन जाऊँगा।

विश्वामित्र– हे मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु, अष्टक, तुम और तुम्हारे भाई सुनें– इसको ज्येष्ठ समझो। ५

खण्ड १८. विश्वामित्रके १०१ पुत्रथे, मधुच्छन्दा से ५० बड़े और ५० छोटे। बड़ोंको अच्छा न लगा। तब विश्वामित्र ने शाप दिया– तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यवाली होगी। अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब दस्यु ये ही हैं। मधुच्छन्दा और छोटे ५० भाइयों ने कहा—पिता जो कहेंगे हम मानेंगे। विश्वामित्र ने उनकी प्रशंसाकी।

हे पुत्रो, तुम सन्तानों-पशुओं से बढ़ो। मेरा कहना मानकर तुमने मुझको पुत्रवान् बनाया। हे गाधिपौत्रो, तुम पुत्रवान् होओ। देवरात के संरक्षण में बढ़ोगे, वह तुम्हें सत्य मार्ग पर ले चलेगा उसके अनुचर बनो, वह पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्याका अधिकारी होगा।

इन पुत्रों को धन, यश, कीर्ति मिली। देवरात दो ऋषियों का दायभागी हुआ– जह्नु के वंशके धनका, गाधि के वंश की विद्या का।

यह सौ ऋचाओं में शुनःशेप का आख्यान है।

इसका वाचन होता स्वर्णासनपर बैठकर करता है। अध्वर्यु का भी स्वर्णासन है, क्योंकि स्वर्ण यश है, जो राजा को मिलता है। अध्वर्यु होता के ऋचा पढ़ने पर ओ३म् और गाथाके बाद तथा कहताहै जो क्रमशः दैवी और मानुषीहैं जिनसे वह राजा के पाप-दोष छुड़ाता है। अतः विजयी चाहे यज्ञ न करे,शुनःशेप-कथा अवश्य सुने, वह आख्याता को हजार और अध्वर्यु को सौ गायें और स्वर्णासन दे, होता को खच्चरों-सहित चाँदी का रथ भी दे। सन्तान की कामना वाले भी इसे सुनें, उनको सन्तान की प्राप्ति होगी। ६(१८) [२४१]

यहां आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३३ (सप्तम पञ्चिका का तृतीय अध्याय) समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय ४

अध्याय ३४

प्रजापति का यज्ञ

ब्रह्म और क्षत्र

खण्ड १९. प्रजापति ने यज्ञ [संसार] रचा। उससे ब्रह्म और क्षत्र हुए। उसके बाद दो प्रकारकी जनता हुई एक हुताद [यज्ञ-शेष खानेवाले ब्राह्मण] दूसरी अहुताद [यज्ञ-शेष न खानेवाले क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र]।

यज्ञ उनसे छूट गया, ब्रह्म–क्षत्र ने उसका अनुसरण किया। ब्रह्म अपने यज्ञ के आयुध लेकर चला और क्षत्र अपने शस्त्र—घोड़ा रथ-कवच-बाण-धनुष। परन्तु वह पीछा न कर सका। ब्रह्म यज्ञ को घेरकर खड़ा होगया उसके हाथ में अपने ही आयुध देखकर यज्ञ लौट आया और ब्राह्मण के ही साथ रहा।

अब क्षत्र ने ब्रह्म का पीछा कर कहा–मुझे इसको दे। उसने कहा—अपने शस्त्र अलग रखकर यज्ञ के आयुध लो। उसने ऐसा करके यज्ञ को पा लिया और उसका अधिकारी हो गया॥ १ (१९) [२४२]

राजसूय यज्ञ में दीक्षा

खण्ड २०— राजा को देवयज्ञ करने की याचना करनी चाहिए।

प्रश्न—जिस ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य को दीक्षा लेनी हो वह देवयज्ञका स्थान राजासे माँगता है यदि राजा यज्ञ करे तो वह किससे स्थान माँगे ?

उत्तर—दिव्य क्षत्रों के अधिपति आदित्यसे माँगे। राजा दीक्षाके दिन प्रातः सूर्यके सामने खड़ा हो पढ़े—

१२९३. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ... ॥
ऋ १०।१७०.३

देव सवितर्देवयजनं मे देहि देवयज्यायै ॥

आदित्य उत्तर को चलता जाता है मानो कहता है हाँ मैं देता हूं। इस प्रकार जिसको आदित्य स्थान दे देता हैं उसका कोई अहित नहीं कर सकता।

जिसको इन मन्त्रों का पाठ करके स्थान मिल गया उसकी श्री दिन प्रतिदिन बढ़ेगी और एश्वर्य मिलेगा।

खण्ड २१— अब इष्टा-पूर्ति अपरिज्यानि (हानि न करनेवाली)दो आहुतियाँ दे। ये दीक्षा से पहले ही देनी चाहिए। ये ४ बार लियेहुए घी की आहुतियाँ ये मन्त्र पढ़ कर आहवनीय अग्नि में दी जाती हैं—

पुनर्न इन्द्रो मघवा ददातु। ब्रह्म पुनरिष्टं पूर्तं दाद् स्वाहा ॥

मघवा इन्द्र और ब्रह्म इस आहुति का पूरा फल दे।

अब पशु को बाँधने के लिए ३ समिष्ट यजु मन्त्रों को पढ़ने के पश्चात् यह मन्त्र पढ़े—

पुनर्नो अग्निर्जातवेदा ददातु क्षत्रं पुनरिष्टंपूर्तं दात्स्वाहा।

ये दोनों आहुतियाँ दीक्षा पानेवाले क्षत्रिय को देनी चाहिये। ३ (२१) [२४४]

खण्ड २२— आराह्ळ के पुत्र सौजात का कहना है कि कामना की पूर्ति के लिए अजीत पुनर्वण्य की ये दो आहुतियाँ इन दो मन्त्रों से दे—

ब्रह्म प्रपद्ये ब्रह्म मा क्षत्राद् गोपायतु ब्रह्मणे स्वाहा।

अर्थ— ब्रह्म मुझे क्षत्र से बचाए। यज्ञ करने वाला मैं ब्रह्मको प्राप्त करता हूं। उसके लिए उत्तम वचन हैं।

जो दीक्षा लेता है वह यज्ञ से फिर जन्म लेता है। ब्रह्म-प्रपन्न को क्षत्र नहीं सताता।

अब वह पशु के बाँधने के समिष्ट यजु पढ़ कर यह मन्त्र पढ़ता है—

क्षत्रं प्रपद्ये क्षत्रं मा ब्रह्मणो गोपायतु क्षत्राय स्वाहा।

ऐसा ही है कि जो क्षत्र को पाता है वह राष्ट्र को पाता है। क्षत्र ही राष्ट्र है। उस से प्रपन्न को ब्रह्म नहीं सताता, प्रसन्न हुआ क्षत्र ब्रह्म से रक्षा करता है।

ये दोनों आहुतियाँ इष्टा-पूर्त की हानि से बचने के लिए हैं। पूर्वोक्त के स्थान पर इन दोनों को ही देना चाहिए। ४ (२२) [२४५]

❀ पूर्वहोम के पश्चात् उपस्थान ❀

खण्ड २३— क्षत्र का देवता इन्द्र; छन्द त्रिष्टुप्, स्तोम पंचदश है। राज्य के अनुसार यह सोम है और सम्बन्ध से राजन्य। जब मृग चर्म धारण मरके दीक्षा व्रत लेता है और ब्राह्मण उसके चारों ओर रहते हैं तब वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है। उससे इन्द्र इन्द्रिय को. त्रिष्टुप् वीर्य को. पंचदश स्तोम आयु को. सोम राज्य को. पितर यश-कीर्ति को ले लेते हैं। क्यों कि वे कहते हैं कि यह हमसे अलग होगया।

अब वह दीक्षा के बाद आहुतियाँ देकर आहवनीय के पास आकर कहता है—

मैं इन्द्र-त्रिष्टुप्-पंचदश स्तोम-सोम राजा-पितरों को नहीं छोड़ता। ये अपनी शक्तियों को मुझसे न लें। मैं उनसे युक्त होकर अग्नि देवताको प्राप्त करता हूं। मैं गायत्री-त्रिवृत् स्तोम सोम-ब्रह्म को प्राप्त होता हूं। मैं ब्राह्मण हो गया हूं।

जब वह यह कहता है तो वे उससे अपनी शक्तियों को नहीं लेते। ५ (२३) [२४६]

❀ उत्तर-होम के पश्चात् उपस्थान ❀

खण्ड २४— क्षत्रिय अग्नि-गायत्री-त्रिवृत् स्तोम-ब्राह्मण के सम्बन्ध से दीक्षित होता है। यज्ञके समाप्त होने पर जब वह फिर क्षत्रिय हो जाता है तो वे अपनी शक्तियों को यह कह कर ले लेते हैं कि वह हमसे भिन्न क्षत्रिय हो गया।

पशु-बन्धन सम्बन्धी समिष्ट यजु की आहुतियों के पश्चात् वह आहवनीय के पास आकर कहे— मैं अग्नि-गायत्री-त्रिवृत् स्तोम-ब्रह्म के सम्बन्ध को छोड़कर नहीं जा रहा। वे मुझसे अपनी शक्तियाँ न लें। मैं उनके साथ इन्द्र-त्रिष्टुप् पंचदश स्तोम-सोम के पास आता हूं।

और क्षत्रिय हुआ जाता हूं। हे देव-पितरो हे पितर-देवो, जो मैं हूं उसी रूप में यज्ञ करता हूं। जो मैंने इष्टि की वह मेरी है। मैंने अपनी ही वस्तुकी पूर्ति की है। जो तप किया है वह मेरा ही है। अपनी ही वस्तुकी आहुति दी है इसका अग्नि उपद्रष्टा, वायु उपश्रोता और आदित्य अनुख्याता है। मैं जो हूं वही हूं। ऐसा कहने पर और क्षत्रिय बनकर आहवनीयमें आहुति देनेपर उससे अग्नि आदि अपनी शक्तियाँ वापस नहीं लेते। ६(२४)[२४७]

खण्ड २५. प्रश्न—जब ब्राह्मण की दीक्षा होती है तो कहा जाता है ब्राह्मण की दीक्षा हुई। यदि क्षत्रिय की दीक्षा हो तो क्या कहना चाहिए ?

उत्तर— कहा तो यही जायगा कि ब्राह्मण की दीक्षा हुई किन्तु क्षत्रियके पुरोहितके ऋषिका नाम ले तथा उसी का प्रवर कहे क्योंकि उसने ब्राह्मण होकर यज्ञ किया। ७ (२५)[२४८]

खण्ड २६. प्रश्न— क्षत्रिय यजमान-भाग को खाए या नहीं ? यदि खाए तो पापी हो क्योंकि वह अहुताद है। यदि न खाए तो यज्ञ से पृथक् होजाय क्योंकि यह यजमान का भाग है।

उत्तर—इसे ब्रह्माको दे देना चाहिए क्योंकि वह क्षत्रियके स्थान पर है। वह उसका आधा है। उस का खाया हुआ अपने खायेके समान हो जाता है। वह साक्षात् यज्ञ है यज्ञ उसमें प्रतिष्ठित है। यजमान यज्ञमें प्रतिष्ठित है। अतः वह यज्ञमें यज्ञको डालता है जैसे जल में जल या अग्नि में अग्नि डाली जाती है। इसमें न नियम-विरोध है न यजमान को हानि अतः यजमान-भाग ब्रह्मा को दे देना चाहिए।

कुछ ऋत्विज यह पढ़कर इसे अग्निमें छोड़तेहैं—

प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिंस्त्वा दधामि सह यजमानेन स्वाहा ॥

किन्तु ऐसा न करना चाहिए। यजमानभाग को अग्नि में डालना यजमान को अग्नि में डालना है। ऐसा करनेवाले से कहे—तूने यजमान को अग्नि में जला दिया। उसके प्राण जल जायेंगे और वह मर जायगा। सदा ऐसा ही होता है। ऐसा न करे। ८

यह आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३४ (सप्तम पञ्चिका का चतुर्थ अध्याय) समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ७ अध्याय ५

अध्याय ३५

श्यापर्णों को यज्ञाधिकार

खण्ड ३७– सुषद्मा के पुत्र विश्वन्तर ने श्यापर्णों को यज्ञ के अधिकारसे वंचित कर दिया। उन्होंने जब यह सुना तो उसके यज्ञमें जाकर वेदिके भीतर बैठगये। उनको देखकर विश्वन्तर बोला—ये पापी यहाँ बैठे हैं। इनको निकाल दो। वेदि के भीतर मत बैठने दो जब नौकर उन्हें निकालने लगे तो वे उठकर चिल्लाने लगे— परिक्षित के पुत्र जनमेजय ने जब कश्यपों के बिना यज्ञ करना प्रारम्भ किया तो कश्यपों में से असितमृग लोगों ने उन भूतवीरों को यज्ञ से हटा दिया (जो कश्यपों के स्थानमें यज्ञ के लिए बुलाये गये थे)। क्या हममें भी कोई ऐसा वीर है जो सोम-पान को जीत ले ?

मृगवु के पुत्र राम ने उत्तर दिया—वह वीर मैं हूँ। यह राम मार्गवेय श्यापर्ण था जिसने वेदों को पढ़ा था। वह राजा से बोला— हे राजन् क्या तुम मुझ जैसे वेदपाठी को भी वेदिसे निकालोगे ?

राजा ने पूछा-- हे ब्रह्मबन्धु, तू जो कोई हो यह तो बता कि तूने यह ज्ञान कहां प्राप्त किया? १(२७)

खण्ड २८- राम ने उत्तर दिया- जब इन्द्रने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का अपमान किया; वृत्र को मारा, यतियों को शृगालों के सामने फेंक दिया, अरुर्मघों को मारडाला व बृहस्पति को धिक्कारा तो देवोंने इन्द्रको निकाल दिया और सोमपान से वंचित कर दिया। तब अन्य सब क्षत्रिय भी सोमपान से वंचित हो गये। जब इन्द्र ने त्वष्टा से सोम ले लिया तो उसे भी फिर भाग मिलगया किन्तु क्षत्रिय अब भी वंचित हैं। यहाँ केवल एक जानता है कि वह अधिकार कैसे मिल सकता है।

राजा—क्या तू इस विधिको जानताहै? मुझे बता।

राम— हाँ मैं जानता हूं। तुझे बताऊँगा। २

क्षत्रिय के अभक्ष्य

खण्ड २९— ऋत्विज इन तीन भक्ष्यों में से किसी एक को देंगे— सोम, दही या जल। यदि सोम दें तो तू ब्राह्मणों को प्रसन्न करेगा क्योंकि यह उनका भक्ष्य है। तेरी सन्तान उनके समान बन जायगी। वह दान सोम-पान और भोजन की इच्छुक होगी और यथेच्छ विचरेगी। क्षत्रियत्व में कमी होगी। दूसरी या तीसरी पीढ़ीमें वह ब्राह्मण हो जायगी और उनके साथ रहेगी।

यदि वैश्योंका भक्ष्य दही लेंगे तो तू वैश्योंको प्रसन्न करेगा। तेरी सन्तानमें वैश्यत्व आयेगा। वे दूसरों को कर देंगे जो उनको यथेच्छ चलायेंगे, क्षत्रियत्वकी कमीसे वैश्यत्व आ जायगा तो सन्तान दो-तीन पीढ़ियोंमें पूरी वैश्य हो जायगी और उनमें रहना पसन्द करेगी।

यदि शूद्रों का भक्ष्य जल लेंगे तो तू शूद्रों को प्रसन्न करेगा। सन्तान में शूद्रत्व आयेगा। वह दूसरों की सेवा करेगी। दूसरे उनकी यथेच्छ ताडना करेंगे। क्षत्रियत्व में कमी आने पर सन्तान शूद्र होगी। दो तीन पीढ़ियों में पूरी शूद्र होजायगी और उनके साथ रहने लगेगी।३

क्षत्रिय के भक्ष्य

खण्ड ३०— हे राजन् न्यग्रोध[वट]वृक्ष की नीचे लटकने वाली जड़ें, उदुम्बर [गूलर]; अश्वत्थ[पीपल] और प्लक्ष [पिलखन] के फल---ये क्षत्रिय के हैं। इन का रस निकालकर पिये। यह उसीका भाग है।

जब देवता यज्ञ करके स्वर्ग गये तो सोम का चमचा टेढ़ा होने से सोम की बूँदों के फैलने से न्यग्रोध हुआ। यह पहले कुरुक्षेत्र में फिर अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अब तक उसे न्युब्ज कहते हैं। जो नीचे की ओर बढ़े वह न्यग्रोह और फिर न्यग्रोध कहाया। ४

खण्ड ३१— इस सोमरस में से जो नीचे गिरा उस की नीचे जाने वाली शाखायें और फल हो गये। इसलिए जो क्षत्रिय न्यग्रोध की नीचे जानेवाली जड़ों और उसके फलको खाता है वह अपने निज भक्ष्य से वंचित नहीं होता। इसके अतिरिक्त वह प्रतिनिधि रूप में सोमपान भी कर लेता है क्योंकि न्यग्रोध सोमका रूपान्तर है। वह परोक्षरूप से ही ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। क्षात्र शक्ति (न्यग्रोध की भाँति) सृष्टि में फैलती है। उन्हीं का राष्ट्र होता है। न्यग्रोध भूमि में गड़ा भी होता है अपनी शाखायें नीचे फैलाकर बढ़ता जाता है। जो क्षत्रिय यज्ञ में न्यग्रोध की जड़ों और फलोंका रस पान करता है वह राष्ट्र में न्यग्रोध की प्रतिष्ठा पाता है। उसका राष्ट्र सुदृढ़ हो जाताहै। अपनी शक्ति की स्थापना करता है और उसका राज्य नष्ट नहीं होने पाता है। [५]

खण्ड३२--- यह जो उदुम्बर के फल हैं यह अन्न ऊर्ज और रससे उत्पन्न हुए हैं और वनस्पतियों में सब से अधिक रस वाले हैं। इनसे राजा क्षत्रियत्व को सम्पन्न कर देता है।

अश्वत्थ वनस्पतियों के तेज से उत्पन्न हुआ है वनस्पतियों का राजा और तेज है। यह क्षत्रियमें साम्राज्य और तेज धारण करता है।

प्लाक्ष वनस्पतियों के यश से उत्पन्न हुआ है। इस में वनस्पतियों का स्वाराज्य और वैराज्य है उन्हें वह इस प्रकार क्षत्रिय यश धारण करा देता है।

जब ये वस्तुएँ उपस्थित हो जाती हैं तो सोमराजा को खरीदते हैं और उपवास का कृत्य करते हैं। उसी प्रकार जैसे असली सोम यज्ञ में किया जाता है।

उपवास के दिन अध्वर्यु के पास सोम निचोड़ने के सभी सामान आजाने चाहिए जैसे चर्म, दो तख्ते, द्रोण कलश, दशापवित्र [छन्ना], पत्थर, पूतभृत्-चमचा, आधवनीय, स्थाली, [घड़ा] और उदंचन। यह जो रस निचोड़ागया इसका एक भाग प्रातःसवनके लिए दूसरा दोपहरके सवन के लिये करना चाहिए। [६]

खण्ड ३३—जब आहुतिके लिए चमचोंको उठाते हैं तब यजमानके चमचेको भी उठाते हैं। उसमें दो तरुण दर्भ डाल कर परिधि-समिधाओं के अन्दर डालते हैं, एक दर्भ डालकर स्वाहा के साथ पढ़ते हैं

१२६४—दधिक्राव्णो अकारिषम्... ऋ ४.३९.६

और दूसरा दर्भ डालकर यह मन्त्र पढ़ते हैं—

१२६५—आ दधिक्राः शवसा पंच कृष्टीः... ऋ ४.३८.१०

जब ऋत्विज अपने चमसों को पीनेके लिए उठावें तभी यजमान भी अपने चमचे को उठाये।

जब होता इडा कहे तो यजमान भी यह कहता हुआ अपने चमचे से पिये—

यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः। इदन्तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥

यह सोम प्रसन्न चित्त से पिया हुआ हितकर होता है। उसका राष्ट्र व्यथा-रहित होता है।

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर हृदय-स्पर्श करना है—

शं न एधि हृदे पीतः प्रण आयुर्जीवसे सोम तारीः।

यदि हृदय-स्पर्श न करे तो आयु कम होगी।

नीचे लिखे दो मन्त्रों से चमचा को भरता है—

आ प्यायस्व समेतु... (देखो २०२)

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः...(देखो १२४)

रूप-समृद्ध होने से ये मन्त्र सफल हैं। ७(३३)

खण्ड ३४—जब ऋत्विज चमसों को रख दें तो यजमान भी अपने चमस को रखदे। जब वे उठायें तो उठाये और प्रातःसवनमें यह मन्त्र पढ़कर पिये—

नराशंस-पीतस्य देव सोम ते मतिविदः ऊमैः पितृभिर्भक्षितस्य भक्षयामि ॥

मध्यसवन में ऊमैः के स्थानमें ऊर्वैः और तीसरे सवन में काव्यैः कहता है। क्योंकि पितर प्रातः के ऊम, मध्य के ऊर्व और सायं के काव्य कहाते हैं।

सोमपा प्रियव्रत ने कहा था—जो सोम पीता है उसके पितर अमर हो जाते हैं और राज्य दृढ़।

प्रत्यभिमर्श व आप्यायन तीनों सवनों में समान है। सब सोमरस निकालने के समान की जाती है। इस विधिको राम मार्गवेयने सुषद्माके पुत्र विश्वन्तर को बताया। तब राजाने कहा—हम तुझे एक हजार गौएं देते हैं। मेरे यज्ञमें श्यापर्ण लोग आयें।

इसी विधि का कथन कवष के पुत्र तुर ने परिक्षित के पुत्र जनमेजय से किया और पर्वत-नारद ने सहदेव-पुत्र सोमक से। फिर उसने सहदेव सार्जय से। फिर बाभ्रव दैवावृध से फिर भीम वैदर्भ से फिर नग्नजित् गान्धार से। इसका कथन अग्नि ने सनश्रुत से उसने अरिन्दम से उसने क्रतुविद् से उसने जानकि से और वशिष्ठ ने सुदास से किया।

वे सब इस प्रकार पान करके बड़े होगये। सब महाराजा थे। जो क्षत्रिय इस प्रकार पान करता है उसकी श्री सूर्य के समान चमकती है। वह सब दिशाओं से बलि (कर) लेता है और उसका राज्य व्यथा-रहित हो जाता है। ८(३३) [२५७]

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद पञ्चिका ७ का अध्याय ५ समाप्त हुआ।

—❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ८, अध्याय १

अध्याय ३६

राजसूय के स्तोत्र-शस्त्र

खण्ड १—राजसूय यज्ञ के प्रातः और तृतीय सवन के स्तोत्र और शस्त्र सोमयाग के ऐकाहिकों के ही समान होते हैं क्योंकि वे शान्ति और प्रतिष्ठा के देने वाले हैं। परन्तु मध्य सवन में भेद है। उसके पवमानका वर्णन हो चुका जिसके पृष्ठस्तोत्रमें दोनों साम बृहत्सहित होते हैं और गाये जाते हैं।

रथन्तर साम का पहला मन्त्र यह है—

३५४ आ त्वा रथं यथोतये.... (१) (५९४)

१८६२ तुविशुष्म तुविक्रतो... (२) (७४८)

राजसूय यज्ञ के स्तोत्र और शस्त्र

यस्य ते महिना... १६६३ (३) [देखो ७४९]

रथन्तर के मन्त्र ये हैं—

इदं वसो सुतमन्धः [देखो ५८७]

नृभिर्धूतः सुतो [,, ७५०]

तं ते यवं यथा [,, ७५१]

पवमान उक्थ मरुत्वतीय शस्त्र है जिसमें रथन्तर साम है।

(मध्य सवन में) पवमान स्तोत्र को रथन्तर की रीति से गाते हैं। सहारा देने के लिए बृहत् पृष्ठ है। पहले और पिछले स्तुति के मन्त्रों को रथन्तर से गाते हैं। रथन्तर ब्राह्मण है बृहत् क्षत्रिय। ब्राह्मण क्षत्रियसे पहले होता है। राजा को समझना चाहिए कि जब ब्राह्मण मेरे आगे है तो मेरा राष्ट्र सुदृढ़ और विघ्न-रहित होगा। रथन्तर अन्न है। पहले रखने से वह राजा को भोजन प्राप्त कराता है, रथन्तर यह पृथिवी है, यह प्रतिष्ठा है। पहले रखने से यह राजा को प्रतिष्ठा देता है।

इन्द्र को बुलाने का प्रगाथ बिना किसी परिवर्तन के वही है जो कि अन्य सोम-दिनों का है। ब्रह्मण-स्पति का प्रगाथ दोनों सामों में एक सा है। उसकी विशेषता 'उत्' है। धाय्या भी वही है। मरुत्वतीय प्रगाथ एकाहिकों का विशेष है। [१]

खण्ड २— पवमान उक्थ्य का निविद सूक्त यह है —

जनिष्ठा उग्रः [देखो ५९९]

इसमें 'उग्र' भी है और 'सह' भी। यह क्षत्र का रूप है! ओजिष्ठ भी क्षात्र रूप है। बहुलाभिमानः में अभि शब्द है जो पराजित करने का रूप है। इस सूक्त में ग्यारह ऋचाएँ हैं। त्रिष्टुप् में ग्यारह अक्षर होते हैं। इसका रूप क्षत्रिय है। ओज इन्द्र का बल है। यह त्रिष्टुप् है। ओज क्षत्रिय का वीर्य है। इस प्रकार वह राजा को ओज-क्षत्र-वीर्य से सम्पन्न करता है।

यह गौरिवीत-सूक्त है जिससे मरुत्वतीय शस्त्र समृद्ध होता है। इसका ब्राह्मण कहा जा चुका है।

त्वामिद्धि हवामहे— [देखो ७८३]

स त्वं नश्चित्र [देखो ७८४]

यह बृहत् पृष्ठ है। बृहत् साम क्षत्र है, ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ है। इससे राजा समृद्ध होता है।

अभि त्वा शूर नोनुमः— यह रथन्तर बृहत् साम का अनुरूप है। यह लोक रथन्तर है वह लोक बृहत् है। इस लोक का वह लोक अनुरूप है और उस लोक का यह लोक अनुरूप है। इस प्रकार रथन्तरको बृहत् का अनुरूप बना लेते हैं तथा दोनों लोकों का भोग यजमान पा लेता है।

ब्रह्म रथन्तर है क्षत्र बृहत्। ब्रह्म में क्षत्र प्रतिष्ठित है तथा क्षत्र में ब्रह्म। इस प्रकार दोनों सामों का समन्वय प्राप्त होता है।

धाय्या वहीं है— यद् वावान—(देखो ६०७) इसका ब्राह्मण पहले कहा जा चुका है।

साम प्रगाथ ये हैं—

उभयं शृणवच्च नः [देखो ७८७]

तं हि स्वराजम् [,, ७८८]

ये दोनों सामों के रूप हैं जो गाये जाते हैं। [२]

खंड ३— १२९६. तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजसा (ऋग्वेद ६.१८.)

इसमें अभिभूति में अभि है। अषाह्लम्-उग्रम्-सहमानम् क्षत्र के भी रूप हैं। इसमें पन्द्रह ऋचाएँ हैं। ओज-क्षत्र-वीर्य पञ्चदश स्तोम वाले हैं। इनसे राजा सम्पन्न होता है। यह भरद्वाज का सूक्त है। बृहत् साम को भी भरद्वाज ने ही निकाला था। यह आर्ष है। वह राजसूय समृद्ध हो जाता है जिस में बृहत् होता है। जब कोई क्षत्रिय यज्ञ करे तो बृहत् पृष्ठ को काम में लाये। क्योंकि इससे यज्ञ समृद्ध हो जाते हैं।

खण्ड ४— राजसूय यज्ञ के होत्रों [मैत्रावरुण-ब्राह्मणाच्छंसी-अच्छावाक] के कार्य वे ही हैं जो ऐकाहिक यज्ञों में होते हैं। ये शान्ति तथा प्रतिष्ठा केलिए होते हैं। ये यज्ञ को पूरा करते हैं और त्रुटि नहीं रहने देते। ये सर्व-रूप तथा सर्व-समृद्ध होते हैं। इनसे यज्ञ सर्व-रूप और सर्व-समृद्ध हो जाता है। जो क्षत्रिय इनको करता है वह समझता है कि

इन होत्रों के सर्व रूप और समृद्ध कृत्यों से मेरी कामनाएँ पूर्ण हों। इसलिए जहाँ कहीं एकाहों में स्तोम अथवा पृष्ठ पूरे नहीं होते वहाँ होत्रकों के ऐहिक कृत्यों से उनको समृद्ध बना देते हैं।

कहते हैं कि उक्थ्य को पंचदश स्तोम और शस्त्र-वाला होना चाहिए,क्योंकि इन्द्रियोंकी तीव्रता शक्ति है और ओज पंचदश स्तोमवाला है। क्षत्र वीर्य, बल है। इसप्रकार वह ओज-क्षत्र-वीर्य से युक्त होता है।

इसके स्तोम और शस्त्रतीस(पन्द्रह-पन्द्रह)होते हैं। विराट् छन्दमें तीस अक्षर होते हैं। विराट् अन्न है। विराट्में स्थापना करने का अर्थ यह है कि वह इसे अन्न में स्थापित करता है। अतः वह उक्थ पंचदश स्तोम वाला होना चाहिए।

अग्निष्टोम,जो ज्योतिष्टोमका भाग है,यहाँ ठीक होगा। त्रिवृत स्तोम ब्रह्म है और पञ्चदश स्तोम क्षत्रिय। ब्रह्म क्षत्र से पहले है। राजा को सोचना चाहिए कि यदि ब्रह्म प्रथम हो जायगा तो हमारा राज्य सुदृढ़ हो जायगा। सप्तदश स्तोम वैश्यों का है और एकविंश शूद्रों का। स्तोमों में त्रिवृत तेज है, पञ्चदश वीर्य, सप्तदश सन्तान और एकविंश प्रतिष्ठा है। इस प्रकार वह उसे इन चारों से सम्पन्न करता है, अतः यहाँ ज्योतिष्टोम करना चाहिए जिसमें २४ स्तोम-शस्त्र हैं। २४ अर्धमास संवत्सर में हैं जिसमें सब अन्न होते हैं। इस प्रकार वह यजमान-क्षत्रिय को सब प्रकार के अन्न से संयुक्त करता है। अतः ज्योतिष्टोमका अग्निष्टोम होना चाहिए। ४[२६१]

यह आचार्य वीरेन्द्रमुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अध्याय ३६ (अष्टम पञ्चिका का प्रथम अध्याय) समाप्त हुआ।



ऐतरेय ब्राह्मण पंचिका ८, अध्याय २

अध्याय ३७

राजसूय में अभिषेक

खण्ड ५—अब दीक्षा लेनेवाले क्षत्रिय के अभिषेकका प्रश्न है जो अवभृथ स्नानके पश्चात् अन्तिम इष्टि की समाप्ति पर होता है। सामान पहले से तय्यार रहता है। गूलर की लकड़ी की चौकी के पाये प्रादेश मात्र और शीर्ष आधे हाथ के तथा बन्धन मूंज के हों। बिछाने के लिए व्याघ्र का चर्म, गूलर की शाखा और चमचा हो जिसमें ८ वस्तुएँ हों—दही-शहद-घी-धूपमें बरसा हुआ जल-शष्प-यवांकुर-औषधिरस-दूब। स्फ्य से रेखा खींच कर दक्षिण में चौकी को रखते हैं। उसका अगला भाग पूर्व में होता है। उसके दो पाये वेदि के भीतर, दो बाहर होते हैं जो भू-लक्ष्मी के कामना-पूरक मित-अमित रूप हैं।

खण्ड ६—व्याघ्र के चर्म के लोम ऊपर और गरदन पूर्वमें रहे। वह वनके पशुओंमें क्षत्र है और राजा भी क्षत्र है। इससे समृद्धि होती है। राजा उसपर बैठने के लिए पीछे से आकर घुटने टेककर इस प्रकार बैठता है कि दाहिनी जाँघ भूमि से छू जाय और दोनों हाथों से चौकी पकड़कर इस मन्त्र का पाठ करता है—

१२९७. अग्निष्ट्वा गायत्र्या सयुक् छन्दसारोहतु सवितोष्णिहा सोमोऽनुष्टुभा बृहस्पतिर्बृहत्या मित्रा-वरुणौ पंक्त्या इन्द्रस्त्रिष्टुभा विश्वेदेवा जगत्या तान् अहमनुराज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्याय आ-धिपत्याय स्वावश्याय आतिष्ठाय आरोहामि।

इसे पढ़कर राजा पहले दायाँ फिर बायाँ घुटना रखता है। ऐसा ही होता है यह लोगोंका कथन है।

देव इस तरह छन्दोंके साथ आरोहण करते हैं कि अगला छन्द पिछले से चार अक्षर अधिक हो। अब ये दो मन्त्र पढ़े जाते हैं—

१२९८-९९— अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वो ...
विराडिमत्रावरुणयो.... ऋ १०. १३०. ४-५

जो राजा इन देवोंके पीछे चौकीपर चढ़ता है उस का उत्तरोतर योग-क्षेम होता है, वह श्री, प्रजा के ऐश्वर्य और आधिपत्य को प्राप्त करता है।

पुरोहित जलकी शान्तिके लिए मन्त्र बुलवाता है–

१३००— शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे। सर्वां अग्नीँ रप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त॥

यदि यह न किया जाय तो जल अशान्त होकर उससे वीर्य को छीन लेता है। [६]

खण्ड ७— अब गूलर की शाखा से उसका सिर ढाँककर ये ४ मन्त्र पढ़ते हुए जल छिड़कते हैं—

१३०१. इमा आपः शिवतमा इमा सर्वस्य भेषजीः।
इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमृताः॥

याभिरिन्द्रमभ्यषिंचत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुम्। ताभिरद्भिरभिषिंचामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह॥

महान्तं त्वा महीनाम् सम्राजं चर्षणीनाम्।
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनन्॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम् अग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसा इन्द्रियेणा–भिषिचामि बलाय श्रियै यशसेऽन्नाद्याय भू र्भुवःस्व॥

यदि पुरोहित केवल राजाके बल आदि की प्राप्ति चाहे तो भूः, यदि दो (पुत्र-सहित) की तो भूर्भुवः, यदि ३ (पुत्र-पौत्र सहित) की तो भूर्भुवः स्वः कहे।

कुछ का कथन है कि व्याहृतियोंसे दूसरोंके लिए ही कार्य होता है अपनेलिए नहीं, अतः इन्हें न कहे।

कुछ का कथन है कि इन्हें छोड़ने से केवल अगले जन्म पर अधिकार होता है, इस जन्म पर नहीं।

सत्यकामं जाबाल का कथन है कि यदि इन्हें न बोलकर अभिषेक कियाजाय तो वह मर सकता है

उद्दालक आरुणि कहते हैं कि यदि व्याहृतियोंके सहित अभिषेक होताहै तो राजा विजय पाकर सभी वस्तुएँ पा लेता है अतः भूर्भुवः स्वः कहे।

अभिषेक का अंग होम

अभिषेक के पश्चात् ये वस्तुएँ निकल जाती हैं–

ब्रह्मत्व–क्षत्रियत्व–ऊर्ज-अन्नाद्य–जल-औषधिरस-ब्रह्मवर्चस-अन्न की पुष्टि–सन्तति। क्षत्र औषधियों की प्रतिष्ठा है। निम्नलिखित आहुतियों से वह इन को पुनः स्थापित करता है—

ब्रह्म प्रपद्ये स्वाहा॥
क्षत्रम् प्रपद्ये स्वाहा॥ (७)

खण्ड ८. चौकी, चमस, शाखा गूलर की क्यों हो? क्योंकि वह ऊर्ज-अन्न है जिसे धारण कराता है।

दही–मधु–घी जल और औषधियों के रस हैं। वह इनको धारण कराता है।

धूप में प्राप्त वर्षा-जल से वह तेज और ब्रह्मवर्चस को राजा में स्थापित करता है।

शष्प-यवांकुर से पुष्टि-प्रजा स्थापित करता है।

औषधि–अन्न–रस क्षत्र हैं। ये दोनों उसमें स्थापित किये जाते हैं।

दूब औषधियों का राजा है। यह राजा का चिह्न है। इससे राज्य का विस्तार और प्रतिष्ठा होती है।

जो वस्तुएँ राजा में से कम हो गयीं थीं वे सब उसमें फिर आ जाती हैं। वह सफल हो जाता है।

अब पुरोहित सोम-रस का प्याला राजा के हाथ में देता हुआ यह मन्त्र पढ़ता है—

१३०२. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥ (ऋ. ९ १.१)

हे सोम, तू स्वादिष्ठ और हर्षप्रद धारासे पवित्र कर। तू इन्द्र के लिए रक्षार्थ निचोड़ा गया है।

अब वह शान्ति का मन्त्र बोलता है—

१३०३— नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा सं सृक्षाथां परमे व्योमनि। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मैनं हिंसिष्टं स्वां यानिमाविशन्तौ॥
(यजु १९.७)

तुम दोनों का देव-हितकारी स्थान भिन्न है, तुम परम व्योम में मत मिलो। हे औषधि, तू बलवाली है। यह सोम राजा है। अपने स्थान को जाते हुए तुम इसकी हिंसा मत करो।

सोम और औषधि में भिन्नता है। पीते समय मित्र ऋत्विज का भी ध्यान रखकर उसे भी दे। ४ (८)

खण्ड ९—अब गूलर की शाखा को देते हुए चौकी से नीचे उतरने की घोषणा करता है—

१३०४–प्रतितिष्ठामि द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि प्राणापानयोः प्रति तिष्ठाम्यहोरात्रयोः प्रतितिष्ठाम्यन्नपानयोः प्रति ब्रह्मन् प्रति क्षत्रे प्रत्येषु त्रिपु लोकेपु तिष्ठामि।

अन्तमें वह पूर्णतया खड़ा होता है सबमें प्रतिष्ठित होता है,उत्तरोत्तरश्री और आधिपत्यको पाता है।

अरिष्ट विजय, प्रपदपाठ

उतर कर पूर्वाभिमुख बैठकर तीन वार नमो ब्रह्मणे कहकर कहता है—वरं ददामि जित्या अभिजित्यै विजित्यै संजित्यै [मैं जय अभिजय विजय संजय के लिए वर देता हूं]। इस प्रकार जब क्षत्र ब्राह्मण के वश में आ गया तो राष्ट्र समृद्ध होता,वीरोंको पैदा करता है।

वह वाणी को वशमें करके उठकर आहवनीयमें यह पढ़कर समिधा रखता और वीर्य सम्पन्न करता है।—

समिदसि सम्नेद्ध्य इन्द्रियेण वीर्येण स्वाहा।

समिधा रखकर पूर्वोत्तर की ओर ३ पग बढ़ाता है—

बल्हिरसि दिशां मयि देवेभ्यः कल्पत। कल्पतां मे योगक्षेमो अभयं मे अस्तु।

अब वह पराजय हटाने के लिए विपरीत दिशा में चलता है। ऐसा कहते हैं। ५[९] (२६)

खण्ड दस—देव असुर लड़ते थे। असुर पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर में जीत गये। जब देव पूर्वोत्तर दिशा में लड़े तो जीत गये। अतः राजा जब युद्ध के लिए चले तो इसी दिशामें चले ,पुरोहित रथका ऊपरीभाग छुए।

१३०५. वनपस्ते वीड्वङ्गो हि भूयाः [ऋ ६.४७.२६]

इस सूक्त को पढ़कर रथ को घुमाये—

१३०६.— अभीवर्तेन हविषा...[ऋ दस. १७४]

और इन सूक्तों को पढ़कर रथ की ओर देखे—

१३०७–आशुःशिशानो [अप्रतिरथ सूक्त ऋ१०.१०३]

१३०८—शास इत्था...[शास सूक्त ऋ १०।१५२]

तेरह सौ ९— प्र धारा यन्तु मधुनः [सौपर्ण सूक्त]

वह युद्धमें जाते समय कहता है–तथा मे कुरु यथाहमिमं संग्राम संजयानि। वह पूर्वोत्तरमें जीत जायगा।

यदि वह अपने देश से निकाला गया हो तो कहे—मैं स्वराष्ट्र को लौटूं। पूर्वोत्तरमें जानेसे लौट आताहै।

वह यह मन्त्र पढ़ता है मानो शत्रु को हरा चुका—अप प्राच इन्द्र... (देखो ११४९)

ऐसा करने से वह शत्रु रहित हो जाता है।

महल में आकर वह गार्हपत्य के पास बैठता है तब ऋत्विज ४ वार घी भरकर इन्द्र के लिए ३ आहुति देता और प्रपद (मन्त्र के बीचमें कुछ जोड़ने) की रीति से मन्त्र पढ़ता है जिससे रोग-हानि-रहित अभय हो।६

खण्ड ग्यारह–ये ३ मन्त्र ऋ ९।११०।१-३ के हैं—

१३१०-१२– पर्यू षु प्र घ धन्व वाजसातये परि वृत्रा (भूर्ब्रह्म प्राणममृतं प्रपद्यतेऽयमसौ शर्म वर्माभयं स्वस्तये सह प्रजया पशुभिः) णि सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे (स्वाहा)॥

अनु हि त्वा सुतं सोममेदामसि महे सम(भुवो ब्रह्म-(पशुभिः)र्यराज्ये वाजाँ अभि पवमान प्रगाहसे स्वाहा॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे श(स्वर्ब्रह्म-पशुभिः)क्मना पयः। गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या (स्वाहा)॥

[टि. कोष्ठक का भाग मन्त्रों में जोड़ा गया है।]

इन आहुतियोंको देनेवाला अरिष्टोंपर विजय पाता, शत्रु-रहित होता, त्रयी विद्या द्वारा सुरक्षित रहता, सब दिशाओंमें विचरता और इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा पाता है।

अब गौ–अश्व–सन्तानों के लिए प्रार्थना है—

१३१३. इह गावः प्रजायध्वम् इहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणो वीरस्त्राता निषीदतु॥

ऐसी प्रार्थना करने वाले के बहुत सन्तान और पशु उत्पन्न होंगे। इसको समझते हुए पुरोहित जिस क्षत्रिय के लिए यज्ञ करते-कराते हैं उसकी प्रतिष्ठा होती है।

जो इसे न समझ कर क्षत्रिय के लिए यज्ञ कराते हैं वे उसे घसीटते और धन छीन लेते हैं जैसे कोई वन में जा रहा हो उसे चोर–डाकू पकड़ कर धन छीन लें।

परिक्षित् के पुत्र जनमेजय ने कहा है—'रहस्य-ज्ञाता ऋत्विजों ने मेरा यज्ञ कराया अतः मैं विजयी हुआ। मैं शत्रु को शीघ्र जीतता हूं, वाण मुझे नहीं लग सकते, मैं पूर्णायु होकर पृथ्वी का स्वामी होऊँगा'। इसे जान कर यज्ञकर्ता पूर्णायु तथा सब भूमिका स्वामी होता है॥

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण की पञ्चिका ८ का अध्याय २ समाप्त हुआ॥

ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थ, पंचिका ८, अध्याय ३

अध्याय ३८

इन्द्र का महाभिषेक

खण्ड बारह— अब इन्द्र के महाभिषेक का वर्णन किया जाता है। प्रजापति सहित देवों ने कहा– 'यह देवों में सबसे अधिक ओजवाला, साहसी, सत्तावाला और कामों को अच्छी तरह करनेवाला है। इसी का अभिषेक करें। वे उसके लिए ऋचाओं से बने सिंहासन को लाये। उन्होंने बृहत् और रथन्तर सामों को सिंहासन के अगले दो पाये बनाया और वैरूप तथा वैराज को पिछले दो पाये। शाक्वर और रैवत को ऊपर का पट्टा, नौधस और कालेय को उसके बगल के तख्ते। उन्होंने ऋचाओंका ताना, सामों का बाना यजुओं का बीच का भाग, यश को बिछौना, श्री को तकिया बनाया। बृहस्पति ने उसके अगले पाये, वायु और पूषा ने पिछले, मित्र और वरुण ने ऊपर के तख्ते तथा अश्विनौ ने दो बगल के तख्ते पकड़े।

तब इन्द्र सिंहासन को इस प्रकार संबोधन करके उस पर चढ़ा– वसु तुझपर गायत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम रथन्तर साम द्वारा चढ़ें। उनके पीछे साम्राज्य के लिये मैं चढ़ूं। रुद्र तुझ पर त्रिष्टुप् छन्द से पंचदश स्तोम और बृहत् सामसे चढ़ें। आदित्य तुझपर जगती छन्द, सप्तदश स्तोम और वैरूप साम से चढ़ें। विश्वेदेवा तुझपर अनुष्टुप्छन्द एकविंश स्तोम और वैराज साम से चढ़ें। साध्य और आप्त्य तुझपर पंक्ति छन्द, त्रिणव स्तोम और शाक्वर साम से चढ़ें। मरुत और अंगिरा तुझपर अतिछन्दस छन्द से और त्रयस्त्रिंश स्तोम और रैवतसामसे चढ़ें और मैं इनके पीछे तुझ पर भौज्य स्वराज्य वैराज्य राज्य महाराज्य स्वावश्य और अधिक जीवन के लिए चढ़ूं। इन शब्दों को कह कर सिंहासन पर बैठे।

जब इन्द्र इस प्रकार सिंहासन पर बैठ गया तो विश्वेदेवों ने उससे कहा" जब तक इन्द्र की घोषणा न की जायगी वह पराक्रम से कार्य न कर सकेगा। किन्तु यदि ऐसी घोषणा की जायगी तो वह कर सकता है।' तब उन्होंने ऐसा करना अंगीकार कर लिया और इन्द्रके सामने मुँह करके जोरसे कहा।

देवों ने उसको साम्राज्य का सम्राट् भोगों का भोक्ता, [illegible] का स्वराट् राजाओंका पिता परमेष्ठी बना दिया। उन्होंने कहा आज क्षत्र पैदा हुआ आज क्षत्रिय पैदा हुआ, विश्व का अधिपति हुआ, विश्व और भोगों का भोगनेवाला उत्पन्न हुआ, पुरों का नाश करनेवाला हुआ। असुरों का घातक हुआ ब्राह्मणों का रक्षक उत्पन्न हुआ, धर्म का रक्षक पैदा हुआ। जब घोषणा हो चुकी तो प्रजापति ने अभिषेक करके इन मन्त्रों को पढ़ा—

खण्ड तेरह–निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय(भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्याय आधिपत्याय स्वावश्याय आतिष्ठाय) सुक्रतुः ॥ (ऋ० देखो १४६)

धृतव्रत वरुण साम्राज्य आदि के लिए बैठा।

इन्द्र गद्दी पर बैठा था। प्रजापति इन्द्रके सामने खड़ा हुआ और पश्चिम मुँह करके गूलर-पलाशकी भीगी शाखा से निम्न मन्त्रों से अभिषेक किया—

इमा आपः शिवतमाः [३ मन्त्र। पृ० १५६]

देवस्य त्वा सवितुः [यजु]

भूः भुवः स्वः। [तेरह]

खण्ड चौदह– इन्हीं मन्त्रों से इकतीस दिनों में वसुओं ने पूर्वमें साम्राज्य के लिए, रुद्रों ने दक्षिण में भौज्य केलिए, आदित्योंने पश्चिममें स्वराज्य केलिए, विश्वेदेवों ने उत्तरमें वैराज्य के लिए, साध्य आप्तों ने ध्रुवा में राज्य केलिए, ऊर्ध्व में मरुतों अंगिरसों ने पारमेष्ट्य, महाराज्य; आधिपत्य और स्वावश्य के लिए इन्द्रका अभिषेक किया। अतः उसके अनुसार सब दिशाओं में राजा अभिषेक करके सम्राट्, भोज, स्वराट्, विराट्, राजा और परमेष्ठी महाराजा अधिपति कहाते हैं। इन्द्र इस महाभिषेकसे सर्वश्रेष्ठ दोनों लोकों में सर्व-कामना पूरक होगया ॥ ३।४

—ॐ— यह पञ्चिका ८ में अध्याय ३ समाप्त हुआ ॥ —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण, पंचिका ८ अध्याय ४

अध्याय ३९

क्षत्रिय का महाभिषेक

खण्ड १५— इस रहस्य को समझता हुआ जो ऋत्विज चाहे कि यजमान क्षत्रिय सब को जीत ले, सब लोकों को ले ले, सब राजाओं में श्रेष्ठ हो जाय, साम्राज्य- भौज्य -स्वाराज्य-वैराज्य-पारमेष्ठ्य-राज्य-महाराज्य-आधिपत्य प्राप्त करले, सर्वत्र उस की पहुँच हो, वह सब भूमि का स्वामी पूर्णायु हो, पृथ्वी पर समुद्र तक राज्य करे और संशयरहित हो तो उसे चाहिए कि उस क्षत्रिय का इन्द्रके अभिषेक की रीति से अभिषेक करे और उससे यह शपथ ले कि यदि तू ने मुझ से द्रोह किया तो तेरे जन्म की रात से लेकर मरण की रात तक किये हुए सुकृत, प्राप्त आयु और प्रजा को मैं ले लूँगा।

इसे जाननेवाला क्षत्रिय यदि चाहे कि मैं सबको जीत जाऊँ तो वह शंकाके बिना ऐसी शपथ ले ले।

खण्ड १६ — ऋत्विज कहे— वट-गूलर-पीपल-प्लक्ष की चार लकड़ियाँ लाओ। वट क्षत्रिय, गूलर भोज, पीपल सम्राट, प्लक्ष स्वराट्-विराट् हैं इन को लानेवाले उसमें क्षत्र-भौज्य-साम्राज्य-स्वाराज्य-वैराज्य धारण कराते हैं।

अब उससे कहे— चावल-महाव्रीहि-कंगुनी-जौ-इन चार अन्नों को लाओ। ये क्रमशः क्षत्रिय-सम्राट्-भोज-सेनानी हैं। इन्हें लानेवाले उसमें क्रमशः क्षत्र-साम्राज्य-भौज्य-सेनानित्व को धारण कराते हैं।

अब वह गूलर की चौकी लाता है। गूलर के पात्र में इन अन्नों और दही-शहद-घी-वर्षाजल आदि को रखते हैं और सिंहासन के प्रति कहते हैं—

बृहद्-रथन्तर तेरे अगले पाये और वैरूप-वैराज पिछले पाये हैं। (इत्यादि देखो पिछला पृष्ठ)

(खण्ड १८-१९ खण्ड १२-१३ के समान है)

खण्ड २०— दही-शहद-घी-जल से सींचकर वह इन्द्रिय-औषधरस-तेज-अमृतत्व धारण कराता है। दक्षिणा में सोना-हजार गौएँ-चौकोर खेत दे।

यह भी कहते हैं कि अपरिमित दे क्योंकि वह अपरिमित है। अपरिमित का अपरिमित फल होगा

अब वह राजा के हाथ में सोम-पात्र देता है—

स्वादिष्ठया... (देखो १३०२)

अब शेष बचा इन दो मन्त्रों को पढ़कर पिए—

यदत्रशिष्टं रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः
इदंतदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि

अभि त्वा वृषभा सुते... (ऋ ८.४५.२२)

महाभिषेक करके राजा इन मन्त्रोंसे सोम पिए-

अपाम सोममृता अभूम... (ऋ ८.४८.३)

शन्नो भव चक्षसा....(ऋ. १०.३७.१०)

जिस प्रकार पिता पुत्र का आलिङ्गन करके आनन्दित होता है उसी प्रकार राजा सोम पीकर और अन्नाद्य खाकर अपने को भूल जाता है। [२०]

खण्ड २१—कवष के पुत्र तुर ने परिक्षित् के पुत्र जनमेजय का वैसा ही राज्याभिषेक किया था जैसा कि इन्द्र का हुआ था। अतः वह विजयी हुआ और उसने अश्वमेध किया जिसकी यह गाथा है—

'जनमेजय ने देवों (सैनिकों) के लिए सिंहासन के पास अन्न खानेवाले, माथे पर चिह्न वाले और हरी माला वाले अश्व को बाँधा'।

इसी रीति से भृगु के पुत्र च्यवन ने मनु के पुत्र शर्यात का अभिषेक किया जिससे उसने पृथिवी को जीता, अश्वमेध किया, देवों के यज्ञमें गृहपति बना।

इसी प्रकार वाजरत्न के पुत्र सोमशुष्मा ने सत्राजित् के पुत्र शतानीक का, पर्वत-नारद ने आम्बाष्ठ्य और उग्रसेन-पुत्र युधांश्रौष्टि का अभिषेक किया। इन्होंने और कश्यप ने तथा भुवन के पुत्र विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण पृथ्वी जीती तथा अश्वमेध किया। कहते हैं कि विश्वकर्मा की प्रशंसा में पृथ्वी ने यह गाया—

हे विश्वकर्मा, कोई मेरा दान नहीं कर सकता। तूने मुझे दान करदिया। मैं पानी में डूब जाऊँगी। तेरा कश्यप को देने की प्रतिज्ञा करना व्यर्थ है। ऐसेही वसिष्ठने पैजवन सुदास का अभिषेक किया।

इन्द्र के इसी राज्याभिषेक से अंगिरस् के पुत्र संवर्त ने अविक्षित के पुत्र मरुत्त का अभिषेक किया और वह सारी पृथ्वी पर घूमा और उसने विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया। श्लोक यह है–

मरुत् लोग मरुत्त के घर में अन्न बांटने वाले रहे। इसकी सब कामनायें पूरी हुईं और विश्वेदेव (विद्वान्) वहाँ मौजूद थे। (७)

खण्ड २२ — इसी इन्द्र के अभिषेक से अत्रि के लड़के उदमय ने अंग का अभिषेक किया। उससे अंग ने पृथ्वी की विजय की और अश्वमेध यज्ञ किया। उस अलोपांग ने एकबार कहाथा– ब्राह्मण, मैं तुझे दस हजार हाथी और दस हजार दासियां देता हूं, तू मुझे अपने यज्ञ में बुलाना। इसके सम्बन्ध में पाँच श्लोक कहे जाते हैं —

१– प्रियमेध के लड़कों ने उदमय को जिन जिन गायों को देने के लिये कहा अत्रि के लड़के उदमय ने मध्य सवन में बद्वा (सौ करोड़ गायों) में से दो दो हजार गायें दीं।

२– विरोचन के पुत्र ने ८८ हजार सफेद घोड़ों की रस्सियाँ खोल दीं और यजमान पुरोहित को दान कर दिया।

३– अत्रि के लड़के ने देश देश से जमा हुई दस हजार लड़कियों का जिनकी गर्दन में आभूषण पड़े थे, कन्यादान कर दिया।

४– वचत्नुक देश में अत्रि के लड़के ने दसहजार हाथी दिये। थके हुए ब्राह्मण ने अंग के दान को लेने के लिए नौकरों से कहा।

५– सौ तुझको, सौ तुझको ऐसा कहता कहता वह थक गया। तब उसने कहा हजार तुझको, हजार तुझको फिर भी थककर सांस लेने ठहर गया (क्योंकि दान के लिए बहुत शेष था)। ८

खण्ड २३— इन्द्र के इसी महाभिषेक से ममता के लड़के दीर्घतमा ने दुष्यन्त के लड़के भरत का अभिषेक किया। इससे भरत ने सब पृथ्वी की परिक्रमाकी और अश्वमेध यज्ञ किया इसके विषय में श्लोक है —

१– भरत ने मष्णार देश में १०७ काले और सफेद दांतों वाले सोने से आभूषित हाथी दिये।

२– जब दुष्यन्त के पुत्र भरतने साचीगुणनामी नगर में अग्नि स्थापित की तो हजारों गायों के गल्ले ब्राह्मणों को दान दिये।

३– जब दुष्यन्तके पुत्र भरत ने ७८ घोड़े यमुना के किनारेऔर ५५ गंगाकेकिनारे इन्द्रके लियेबांधे।

४– दुष्यन्त के पुत्र भरत ने ३३०० मेध्य घोड़ों को बाँधा और अपनी प्रबल माया के द्वारा माया वाले शत्रु को पराजित कर दिया।

५– जैसे पाँच प्रकार के आदमियों में से कोई अपने हाथों से आकाश नहीं छू सकता इसी प्रकार भरतके महाकर्म को न कोई न पा सका न पायेगा।

इसी इन्द्र के महाभिषेक का उपदेश बृहदुक्थ ऋषि ने दुर्मुख पांचालको किया। इसीसे दुर्मुखने राजा बनकर पृथ्वी भर को घूम कर जीत लिया।

वसिष्ठ गोत्री सत्यहव्य के पुत्र ने जनन्तप के लड़के अत्यराति को इसका उपदेश किया। इससे अत्यराति ने इस विद्याको ग्रहण करके पृथ्वी भर का भ्रमण किया और उसे जीतकर राजा बना।

वसिष्ठगोत्री सत्यहव्य के पुत्र ने राजा से कहा– तूने समुद्र के तट तक सम्पूर्ण पृथ्वी जीत ली। तू अब मुझे भी दक्षिणा देकर बड़ा बना। अत्यराति ने उत्तर दिया हे ब्राह्मण जब मैं उत्तर कुरुओं को जीत लूंगा तब तू पृथ्वी का राजा होगा और मैं तेरा सेनापति होऊंगा।

सत्यहव्य के पुत्र ने कहा– यह देवक्षेत्र है। इसको कोई नहीं जीत सकता। तूने मुझे धोखा दिया इसलिये इसको मैं तुझसे लिये लेता हूं। जब अत्यराति से यह सब छीन लिया गया और वह निः–शुक्र होगया तो शिवियके पुत्र शुष्मिण ने उसे मार डाला। इसलिये जो क्षत्रिय इस रहस्य को समझे और जिसका अभिषेक हो जाय उसको चाहिए कि ब्राह्मण से छल न करे। नहीं तो उसकी सम्पत्ति छिन जायगी और वह मार डाला जायगा। (९)

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में पंचिका ८का अध्याय ४ समाप्त हुआ। —❀—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, पञ्चिका ८, अध्याय ५

अध्याय ४०

पुरोहित के द्वारा राष्ट्र की रक्षा

खण्ड २४— अब पुरोहितके विषय में कहते हैं। जिसके पुरोहित न हो उस राजा का अन्न देव नहीं खाते। अतः यज्ञका इच्छुक राजा उसे नियुक्त करे।

देव मेरा अन्न खायें—यह विचारकर राजा उसे नियुक्त करके स्वर्ग दिलानेवाली अग्नियोंकी स्थापना करे। पुरोहित उसका आहवनीय है, पत्नी गार्हपत्य है और पुत्र अन्वाहार्य पचन (दक्षिणाग्नि) है। वह इनके लिए जो कुछ करता है मानो तीनों अग्नियों में यज्ञ करता है। ये पुरोहित के द्वारा शान्त-तनु व प्रसन्न होकर उसे स्वर्गलोक में लेजाती हैं तथा क्षत्र-बल-राष्ट्र-प्रजा को देनेवाली होती हैं। यदि अर्चित नहीं तो ये उनसे च्युत कर देती हैं।

पुरोहित, जो वैश्वानर अग्नि है; ५ विघ्नकारक शक्तियां भी वाणी-पैर-त्वक्-हृदय-उपस्थ में रखताहै। इनके साथ वह राजा के पास आता है, जो उसकी वाणी को यह कहकर शान्त करता है—

भगवन्; आप अब तक कहाँ रहे? सेवको, इनके लिए आसन लाओ।

उसके पैरों और त्वचा की विघ्नकारी शक्ति को राजा उसके पैर धोकर और अलङ्कार देकर तथा हृदय और उपस्थ को तर्पण और स्वच्छन्द निवास करा कर शान्त करता है।

इस प्रकार शान्त होकर वह उसे स्वर्गादि प्राप्त कराता है, अन्यथा उनसे वंचित करदेता है।१(२४)

खण्ड २५— जैसे समुद्र भूमि को घेरकर वैसे ही पुरोहित राजा को सुरक्षित रखता है। इसे समझ कर राष्ट्र-रक्षक पुरोहित नियुक्त करने वाले का राष्ट्र सुरक्षित रहता है,वह आयुसे पहले नहीं मरता और बुढ़ापे तक पूरी आयु पाता है तथा फिर कभी नहीं मरता; प्रजा उस क्षत्रबलीकी आज्ञा मानती है।

खण्ड २६—इस पर ऋषि (ईश्वर) का कथन है—

१३१९— स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा
शुष्मेण तस्थौ अभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति
वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्॥ ऋ ४.५०.७

अर्थ— वही राजा शत्रुओं को बल और वीर्य से, जीतता है जो देवों के पुरोहित बृहस्पति के समान जिसका अनुकरण मनुष्य करते हैं, अपने उत्तम पोषक पुरोहित का पोषण करता है और पहला भाग रखने वाले उसको सम्मान-सहित नमस्कार करता तथा चुनता है।

१३२०— स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे
तस्या इळा पिवन्ते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते
यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति॥ ऋ ४.५०.८

अर्थ—वही पुरोहित अपने राजा के उत्तम हित-कारी घर में प्रसन्न रहता है, उसे सदा अन्न मिला करता है। उस राजा को लोग स्वयं नमस्कार करते हैं जिसके राज्यमें ब्रह्मा पुरोहित प्रतिष्ठित होताहै।

यह उसका अभिवादन है। ३ (२६) [२८३]

खण्ड २७— उसी को पुरोहित बनाना चाहिए जो ३ पुरोहितों और पुरोधाताओं को जानता हो। उनमें एक अग्नि है जिसकी पुरोधाता पृथिवी है। दूसरा पुरोहित वायु है जिसका पुरोधाता अन्तरिक्ष है। तीसरा पुरोहित आदित्य है जिसका पुरोधाता द्यौ है। जो इसे समझता है वही पुरोहित है, जो इसे नहीं समझता वह पुरोहित नहीं है।

जिसका ऐसा पुरोहित हो उसके दूसरे राजा मित्र हो जाते हैं और वह शत्रुओं को क्षत्र-बल से जीत लेता है तथा प्रजा उसे एक मन से मानती है।

पुरोहित के गुण-धर्म

पुरोहित बनाने के मन्त्र ये हैं, राजा कहता है—

भूर्भुवः स्वः ओम् । अमोऽहमस्मि स त्वम् स त्वमस्यमोऽहम् द्यौरहम् पृथिवी त्वम् सामाहम् ऋक् त्वम् तावेह संवहावहै पुराण्यस्मान्महाभयात् तनूरसि तन्वम् मे पाहि ॥ १ ॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
ता मह्यमस्मिन्नासने अच्छिद्रं शर्म यच्छत ॥२॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
ता मह्यमस्मिन्नासने अच्छिद्रं शर्म यच्छत ॥३॥

अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेशयामि अतो देवीः प्रति पश्यामि आपः । दक्षिणस्पादमवनेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे इन्द्रियं दधामि । सव्यं पादम् अवनेनिजे अस्मिन् राष्ट्रे इन्द्रियं वर्धयामि ॥ ४ ॥

पूर्वम् अन्यम् अपरम् अन्यम् पादौ अवनेनिजे देवा राष्ट्रस्य गुप्त्या अभयस्यावरुध्यै । आपः पादावनेजनीर्द्विषन्तं निर्दहन्तु मे ॥ ५ ॥

अर्थ—भूर्भुवः स्वः ओ३म् । यह मैं हूं वह तू है । वह तू है यह मैं हूं । मैं द्यौ हूं तू पृथिवी है । मैं साम हूं तू ऋक् है । हम दोनों एक दूसरे को बढ़ायें । हमें इस बड़े भय से बचा । तू शरीर है, मेरे शरीर की रक्षा कर ॥ १ ॥

सोम राजा वाली जो सैकड़ों विशेष लाभकारी औषधियाँ हैं वे मेरेलिए इस आसन पर सुख दें ॥२

जो दीप्त सोम सहित औषधियाँ पृथिवी के अनुकूल विशेष रूपसे स्थित हैं वे मुझे इस आसन पर निर्विघ्न सुख प्रदान करें ॥ ३ ॥

मैं इस राष्ट्र में श्री को स्थापित करता हूँ अतः दिव्य जल की ओर देखता हूं । पुरोहितके दाहिने बाएँ पैर को धोकर मैं इस राष्ट्र में इन्द्र की शक्ति को धारण करता और बढ़ाता हूं ॥ ४ ॥

हे देवो (विद्वानो), मैं राष्ट्रकी रक्षा और अभय की प्राप्ति के लिए पहले और दूसरे पैर को धोता हूँ । पैरों को धोनेवाला जल मेरे द्वेषीको भस्म करें ॥५॥

४ (२७) [२८४]

ब्रह्म-परिमर क्रिया

खण्ड २८— अब ब्रह्म-परिमर क्रिया कही जाती है । जो इसे जानता है उसके सब शत्रु मर जाते हैं । बहने वाला वायु बड़ा है ! उसके चारों ओर पांच देवता मरते हैं— विद्युत्, वृष्टि, चन्द्रमा, आदित्य, अग्नि । जब पानी नहीं बरसता तो विद्युत् विद्युत्में प्रविष्ट होकर छिप जाती है । जब मनुष्य शत्रुको न देखें तो राजा कहे—विद्युत् समाप्त होने से मेरे शत्रु भी मर और छिप जायेंगे । वे फिर कभी न दिखाई दें । शत्रु शीघ्रही मर जाता है, वे उसे नहीं देखते ।

वृष्टि बरस कर चन्द्रमा में प्रविष्ट होजाती और छिप जाती है । जब वह अन्तर्धान हो जाती है तो नहीं दिखाई देती । जब वे इसे न देखें तो राजा कहे— वृष्टि के समाप्त होने से मेरे शत्रु मर जायँ और फिर न दिखाई देँ । शत्रु तत्काल मर जाता है और फिर दिखाई नहीं देता ।

अमावस को चन्द्रमा आदित्य में प्रविष्ट होता है और छिप जाता है तथा दिखाई नहीं देता । जब न दिखाई दे तो राजा कहे—चन्द्रमा के छिपते ही मेरे शत्रु मर जायँ और अन्तर्धान हो जायँ तथा वे उसे न देख सकें । वे तत्काल मर जायेंगे और उसको न देख सकेंगे ।

आदित्य अस्त होकर अग्नि में प्रविष्ट होता है । वह छिप जाता है और दिखाई नहीं देता । जब न दिखाई दे तो राजा कहे—सूर्यके छिपने से मेरे शत्रु भी लुप्त होजायँ मनुष्य उन्हें कभी न देख सकें । वे शत्रु को न देख सकेंगे क्योंकि वह मर जायगा ।

अग्नि बुझकर वायु में प्रविष्ट होती है वह बुझ जाय और वे उसे न देखें तो राजा कहे—अग्निके बुझने सेमेरे शत्रु भी मर जायें, लुप्त हो जायें और मनुष्य उन्हें कभी न देख सकें । बस उसके शत्रु तत्काल मर जायेंगे और कोई उसे न देख सकेगा ।

अब इन पाँचों देवताओं का पुनर्जन्म होता है— पहले वायु से अग्निका । क्योंकि प्राणवायु रूप बल के मथने से अग्नि उत्पन्न होती है । उसको देखकर राजा कहे—अग्नि फिर उत्पन्न हो, मेरा शत्रु नहीं,

वह दूर भाग जाय। इससे वह दूर भाग जाता है।

अग्नि से आदित्य उत्पन्न होता है। उसको देख कर राजा कहे— आदित्य उत्पन्न हो, मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाय। इससे वह दूर भाग जायेगा।

आदित्यसे चन्द्रमा उत्पन्न होता है। उसको देख कर राजा कहे — चन्द्रमा उत्पन्न हो किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर भाग जाये। इससे वह दूर भाग जायेगा।

चन्द्रमा से वृष्टि होती है। उसको देख कर राजा कहे— वृष्टि उत्पन्न हो किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर चला जाय। इससे वह दूर चला जायगा।

वृष्टि से विद्युत् होती है। उसको देखकर राजा कहे— विद्युत् उत्पन्न हो, किन्तु मेरा शत्रु उत्पन्न न हो। वह दूर चला जाय। इससे वह दूर चला जायेगा। इसको ब्रह्म-परिमर कहते हैं।

इसको कुषारवके पुत्र मैत्रेय ने भृगुगोत्रके किरिष के पुत्र राजा सत्वन् से कहा था। उसके पाँच शत्रु राजा मर गये और वह बड़ा हो गया।

उसका व्रत यह है—

शत्रु के पहले न बैठे। जब समझ ले कि वह खड़ा हुआ है तब खड़ा हो। अपने शत्रु के लेटने के पहले न लेटे। जब समझ ले कि वह बैठा है तभी बैठे। जब तक शत्रु न सो जाय वह न सोए। जब यह समझ ले कि वह जाग गया है तो अवश्य जाग जाय।

ऐसा करने से यदि शत्रु अश्म-मूर्धा (पत्थर के समान दृढ़ सिर वाला) भी हो तो भी वह शीघ्र ही चूर-चूर हो जायेगा॥ ५ (२६) [८५]

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री द्वारा सम्पादित ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद की

पंचिका ८ का अध्याय ५ समाप्त हुआ।

यह सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण समाप्त हुआ॥



पारिभाषिक शब्द

अग्नीध्र— अग्नि रखने का स्थान । कुण्ड ।
अतिजगती– १३-१३के ४पादों(५२ अक्षरों)का छंद
अध्रिगु—पशु (अशिक्षित) को शान्त करनेवाला ।
अनद्धा —किसी को आहुति न देनेवाला (७.६)
अनीजान— जिसने अभी तक यज्ञ नहीं किया ।
अनुचर—शस्त्र का पिछला भाग ।
अनुमति— अमावस्या का उत्तरार्ध ।
अनुष्टुप्—८-८ के ४ चरणों ३२ अक्षरोंका छन्द ।
अनुस्तरणी —मृत्यु के समय दान दी गयी गौ ।
अन्तर्याम— अन्तर्याम और उपांशु २ घड़े होते हैं ।
इन पर प्याला (ग्रह) रक्खा जाता है । (२.२१)
अभ्यावर्ति—बार-बार आनेवाले षडह आदि दिन ।
अवभृथ— यज्ञ का अन्तिम कार्य, स्नान ।
अविहृत पाठ—जिसमें मन्त्रके पद दूसरे से न मिलें
अव्यूह्ल— छन्दों का क्रम टूट जाना, जैसे प्रातरनुवाक में गायत्री-अ-त्रि-बृ-उ-ज-पंक्ति ।
अहीन—कई दिन तक चलने वाला सोम याग ।
आगू—अध्वर्यु का कथन– होता यक्षत' या होतर्यज
आग्रन्थन— सादी गाँठ देना । (५.१५)
आज्य—देवों के लिए पिघला घी । होता का शस्त्र
आयुत—पितरों के लिए आधा पिघला हुआ घी ।
आरम्भणीय— वर्ष के आरम्भ में किया जाने वाला कृत्य जिसे चतुर्विंश भी कहते हैं । (४.१२)
आहाव– आज्य शस्त्रमें होताका कथन– 'शंसावोम्'
आहुति = आहूति—यज्ञका बुलावा, यज्ञमें हवि-त्याग
इष्टि—जिसके द्वारा यज्ञ खोजा जाय । (१.२)
इडादधि—दही से किया जाने वाला क्रतु (३.४०)
ईजान—जिसने पहले यज्ञ किया हो ।
उदयनीय— सोम-याग की अन्तिम इष्टि ,
उपगाता— साम-गायकों के साथ गायक (७.१)
उपनयमनी—दूध पीने का लकड़ीका चमसा ।
उपवसथ—सोमयाग से एक दिन पहले का उपवास ।
उपसद— घेरा, याग का विशेष कृत्य ।
उपसर्ग —षोडशीमें मिलाये गये महानाम्नीके ५ अंश
उपस्तरण—यज्ञ में चमचे से घी डालना ।
उपांशु— उपांशु और अंतर्याम दो घड़े होते हैं । इनके ऊपर रखे प्यालों को ग्रह कहते हैं ।
उष्णिक्–७-७-७-७ अक्षरोंसे बना २८अक्षरका छंद
सोमयाग के १६ ऋत्विज— ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता उद्गाता और इनके३-३सहायक–१ ब्राह्मणाच्छंसी २. अग्नीध्र ३. पोता । ४. प्रशास्ता ५. अच्छावाक ६. ग्रावस्तोता । ७. प्रतिप्रस्थाता ८. नेष्टा ९. उन्नेता १०. प्रस्तोता ११. प्रतिहर्ता १२. सुब्रह्मण्य ।
एकधन = एकधना–वह जल जो यज्ञ के दिन प्रातःकाल लाया जाता है ।
एकाह —एक दिनमें पूर्ण होनेवाला सोमयज्ञ ।
किशारू—चावल की भूसी (२.६) [चावलके अंग-किशारू तृषा एवं कसार] ।
कुहू — अमावस्या का पूर्वार्ध ।
खर— यज्ञ पात्र रखने की चबूतरी [१.२२]
गायत्री–८-८-८ क्रम से३ पादवाले२४ अक्षरकाछंद
गोष्ठ– जहाँ पशु शाम को बाँधे जाते हैं
घृत– देवों का घृत आज्य,मनुष्यों का घृत, पितरों का आयुत एवं गर्भस्थ जीवोंका घी नवनीत कहलाता है पिघला घी आज्य, जमा हुआ घृत,आधा पिघला आयुत एवं मक्खन नवनीत कहलाता है
चरु या ओदन —दूध घी मिला उबला चावल ।
चितैध— चिता का ईंधन
जगती–१२-१२ १२-१२ अक्षरोंका४८ अक्षरकाछंद
जातवेद–अग्नि (उत्पन्न हुये को पाया) –व्युत्पत्ति
जुष्टि— प्रियायती आहुति (१.३०)
ज्योतिष्टोम—सोमयागका प्रथम विभागहै इसकी ४ संस्थाएँ अग्निष्टोम,उक्थ्य,षोडशी,अतिरात्र हैं
तूष्णीशंस—चुपचाप जाप या प्रार्थना
तृच— तीन ऋचाओं से मिलकर बने सूक्त
दीक्षणीय इष्टि– यह यज्ञकी तैयारी (भूमिका) है
दूरोहण –स्वर्ग या सूर्य ,व्युत्पत्ति (४.२०)
त्रिष्टुप्–११-११-११-११ अक्षर[४४ अक्षरका छंद]
द्वादशाह– बारह दिनों का कृत्य (४.२३)
धाय्य–सामिधेनियों के बीचमें पढ़े जानेवाले मन्त्र

नभाक— खोदने का कुदाल (६.२४)
नवनीत— गर्भस्थ जीवों के लिये घी (देखो घृत)
निनृति—पदोंके अंतके स्वरोंकी आवृति को कहते है
निग्रन्थन— लपेट कर गाँठ देना (५।१५)
निविद—सोमपानके लिये देवताओं के आवाहन मन्त्र
न्यूंख—स्वर को उदात्त कर पढ़ने की विशेष विधि
न्यून— दस से एक कम =९ [६,९]
पंक्ति-१०-१०-१०-१० अक्षरोंवाला ४० अक्षर का छंद
परांचि दिन— अकेले दिन [६.१८]
पांचजन्य—पाँच-देव,मनुष्य,गन्धर्व-अप्सरा, सर्प,पितर
पुरोगव— नेता [१।३०]
पुरोडाश–इष्टियोंमें दीगई चावलके आटेकी प्रधानहवि
पुरोरुक्—उच्च स्वर से कहे जाने वाला पद
पृष्ठ—सामवेद के दो तृच मिलकर पृष्ठ कहाते हैं
प्रग्राह- पाठकी वहविधिजिसमें २-३पदोंकेबाद रुकतेहैं
प्रणयन- अग्नि को उत्तर वेदी से ले जाना
प्रतिपद— शस्त्र का पहला भाग
प्रतिष्ठा— पशु ठहरने का स्थान, [३.२४]
प्रपदरीति–ऋचाओंके बीचमें कुछपद मिलाकर पढ़ना
प्रस्तर— कुशों का बंडल
प्रातरनुवाक्य-प्रातःकाल बोले जानेवाले अनुवाक्य
प्रायणीय इष्टि— यज्ञ की प्रारम्भिक इष्टि
बृहती- ६-६-९-९अक्षरों से बने ३६ अक्षर का छंद
महानाम्नी—जिसके द्वारा इन्द्र ने महान् बनाया ।
मानुष—मादुष—जो दोष के योग्य न हो
यज्ञदोष—जग्ध, गीर्ण, वात (३।३४)
यूप—यज्ञ शाला का खम्भा जिसमें पशु बाँधते है
योनि— बीच में पढ़े जाने वाले मन्त्र
रराटी- हविर्धान के खम्भों पर लटकी दर्भ की माला
राका— पूर्णिमा का पहला आधा भाग
रूपसमृद्ध- जिनमें की जानेवाली क्रिया का संकेत हो
रोहित— जिस छन्द से स्वर्ग पर चढ़ा जाय
वर—देव-यजन, यज्ञ-स्थान (१-१३)
वषट्कार—३ प्रकार के वज्र, धामच्छद-रिक्त (३-७)
वसतीवरि- यज्ञ के १ दिन पूर्व लाया गया जल
वहतु— अतिथि को भेंट में दी जानेवाली वस्तु, दहेज
वह्नि— वहन करनेवाला, नेता, अगुआ (३-१७)
वाण—तीर- इसके ३ भाग हैं- अनीक, शल्य, तेजन

वावाता—राजा की बीच की पत्नी । पहली महिषी, दूसरी वावाता, तीसरी परिवृक्ता
विहृत पाठ- जिसमें मन्त्र के पद दूसरे से मिलजायँ
व्यूळ्ह—छन्दों के क्रमशः ४-४ अक्षर बढ़ना । क्रम- गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगती
व्यूळ्हछन्दस्— छन्दों का तितर वितर हो जाना
शक्वरी- १४-१४ के ४चरण =५६ अक्षरोंका छन्द व्युत्पत्ति ५.७ में
शस्त्र—होता द्वारा ऋचाओंका विशेष पाठ, १२ हैं आज्य; प्रउग, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि, अच्छावाक, (५ प्रातःसवन के), मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसि, अच्छावाक् (५ मध्यसवनके), वैश्वदेव, अग्नि-मारुत (२ सायंसवनके) इनके साथ ही सामवेदके १२ स्तोत्रहोते हैं(३.३६)
षडह— ६ दिन का यज्ञ-कृत्य (४.१५)
शुक्र— व्याहृति (५.३२)
संसव-दोष—दो या अधिक पुरुषों के एक ही समय पास पास सोमयाग करने से उत्पन्न गड़बड़ी
संगविनी- जहाँ पशु दोपहर को धूप से बचने के लिए बाँधे जाते हैं ।
सदस्- उत्तर वेदी के दक्षिण-पूर्व में विशेष स्थान
सम्पात— व्युत्पत्ति (४.३०)
समानोदर्क- समान-वाक्य पर समाप्त सूक्त (५.१)
साम— दुःख का अन्त करने वाला, न्याय वाला वेद-गीत (व्युत्पत्ति ३.२३) । इसके ५ भाग हैं- आहाव(हिंकार), प्रस्ताव,उद्गीथ, प्रतिहार, निधन
सामिधेनी—अग्नि प्रज्वलित करते समय समिधाएँ अग्नि में डालने पर पढ़ी जानेवाली ऋचाएँ
सिमा- जो सीमा से बाहर हुए (व्युत्पत्ति ५.७)
सिनीवाली— पूर्णिमा का दूसरा भाग, उत्तरार्ध
स्वर-साम— व्युत्पत्ति ४.१९
हविर्धान— वह गाड़ी जिस पर सोम या अन्य हवि उत्तर वेदि में लायी जाती है ।
हविष्पङ्क्ति- यज्ञ में डाली जानेवाली ५ प्रकार की वस्तुएँ- धान, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और पयस्या (दही-मट्ठा) -दूध-घी आदि ।
होता- जो देवों का आवाहन करे (१.२)

—❀—

मन्त्र-सूची

मन्त्र पृष्ठ संख्या मन्त्र पृष्ठसंख्या

कोष्ठक के अन्दर संख्या पङ्क्तिका तथा खण्ड की है।

ऐतरेय ब्राह्मण के ऐतिहासिक व्यक्ति

—※—

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ की अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ऊ

ऋ

ए

ऐ

...द्धि-पत्रम्

पृष्ठ	स्तम्भ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२	११	मन्त्रा	
	२	२८	हाइड्री	हाइ...
			ग्रन्थ में	
		१	ओश्म्	ओ३म्
		२	ऐतरेय	ऐतरेय
५	१	१६	दूम	दूभि
		२४	दिव्यसे	दिध्यते
८	१	३०	पज्ञ:	यज्ञ:
		३७	अन्य	अन्न
१०	२	२	यज्ञो	यज्ञो
११	२	२२	विद्वान्	विद्वान्
		२६	होत	होता
१५	१	३०	को	को
१८	१	२६	प्रका	प्रकार
२७	२	१९	३.२५	४.२५
३५	१	२३	इसे	उसे
३९	२	७	श्रुता	श्रुति
		९	मकरता	करता
४३	१	१३	धिधि	विधि
६४	२	८	अग्नि	अग्नि
६६	१	२	४३४	५३५
७४	२	६	८ ।	त्वा
७५	१	१	६०	६०७
७६	१	५	भसमो	इसको
		६	आखान	आख्यान
	२	२३	आ	आदित्ता
७७	१	१६	गंड	खंड
		३६	३२२	६२२
७८	१	३२	उन्हु	उन्हें
		३३	भूर	भूत
		३४	तशुमथ	नाम पशु

पृष्ठ	स्तम्भ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७८	१	३४	होक	होता
८९	२	४	सढ़े	पढ़े- प्रत्येक
		१३	पुपसु	उपोपु
		२०	इयन्ते	अयन्ते
९४	२	३१	लन्त	मन्त
९९	२	२१	७६६	७६७
१०८	१	२९	तुध्ये	तुभ्ये
	२	१०	रिस्था	दिस्था
		२०	त्वमृषु	त्यमूषु
१०९	१	२२	द्वाद	द्वाद
११०	२	३६	(छूटा)	पिन्वन्त्यपो...
१११	१	३३	सौत	श्रौत
	२	७	यज्ञं	यज्ञं
१११	२	२५	मनानां	मनाना
		२६	रिश्त	रिस्था
११५	२	६	दृन्द्रो	इन्द्रो
१२८	१	३०	त्रिष्टुप्	त्रिष्टुप
१३५	१	११	३१	६१
		१३	तह तरीं	वह तरीं
१३७	१	४	प्रतापं	प्रतीपं
		२८	आ जज्ञा	आजिज्ञ:
१४१	१	२८	—	११६६
१४२	१	७	पथा	पन्थाम्
	२	२५	—	कौषीतकि के अनुसार
१४४	१	२०	अजागर्त	अजीगर्त
		२७	कोप	को
१५२	२	२०	अध्याय	अन्याय
१५३	१	४	अवमान	अपमान

---*---